TIGHT BINDING BOOK

TEXT PROBLEM WITHIN THE BOOK ONLY

UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182713

UNIVERSAL
LIBRARY

Osmania University

183 Accession No. G. H. 2042
553Ra
श्रीराम शर्मा, राम,
रास्ते का और
ook should be returned on or before the date
ked below.

रास्ते का मोड़

श्रीराम शर्मा 'राम'

भारती साहित्य मन्दिर,
फव्वारा — दिल्ली.

प्रकाशक :
गौरीशंकर शर्मा,
भारती-साहित्य-मन्दिर,
फव्वारा : दिल्ली.

एस - चाँद एण्ड कम्पनी
फव्वारा—दिल्ली
लालबाग—लखनऊ
माई हीराँ गेट—जालन्धर
मूल्य ५॥)

मुद्रक :
हकूमतलाल,
विश्व-भारती प्रेस,
पहाड़गंज, नई दिल्ली.

पुनीत-स्मृति में

जिन्होंने भारतीय-स्वातन्त्र्य-यज्ञ में
अपनी आहुति
प्रदान की

मेरी बात

प्रस्तुत उपन्यास की कथा एक व्यक्ति की नहीं, अपितु एक समाज और देश की कथा है। इस पुस्तक में सत्यता अधिक है औपन्यासिकता कम। यद्यपि, जिन पात्रों ने इस कथा के अन्तर्पट में अपना अभिनय प्रदर्शित किया, उनमें से अधिकांश आज नहीं रहे; परन्तु उनकी लाशों की बुनियाद पर खड़ा हुआ स्वतन्त्र-भारत का महल आज जगमगा रहा है। बलिदानों का वह इतिहास प्रेरणा देता है और जागरण का मन्त्र प्रदान करता है। वह खून, जो एक दिन इस धरती की छाती पर बहा, वह क्या सहज में मिटाया जा सकता है!

अपनी सफलता के विषय में,—लेखक के रूप में—कुछ कहना मैं आवश्यक नहीं समझता। मैं ऐसी भी सम्भावना नहीं करता कि कथा का उद्देश्य सभी के लिए प्रिय हो और पात्रों के चरित्र-चित्रण से सहमति हो। परन्तु इतना मैं कहूँगा कि यह उपन्यास भारतीय-भूमि में खड़े होकर लिखा गया है; इसलिए अपने प्यारे देश की धार्मिक, नैतिक और सामाजिक रीति-नीति का निर्वाह करने के साथ, मानव की दरिद्रता और स्वातन्त्र्य-प्रियता को इसलिए प्रमुख स्थान दिया गया कि आज के इन्सान का संघर्ष ही यह है,—यही है उसके लिए जीवन और मृत्यु का प्रश्न!

इन पंक्तियों के लेखक ने सदा अनुभव किया है कि साहित्य के पाठक को रोटी मिलेगी, तो वह कला और संस्कृति के प्रति उपासक बनेगा; अन्यथा, वह इस प्रकार के सभी तत्वों को भाड़ में झोंक देगा। इसलिए, प्रस्तुत पुस्तक में आदर्श, ज्ञान के जिन उपदेशों को जगह-जगह लिखा गया है अथवा पात्रों से कहलाया गया है, उनका भी केवल एक ही ध्येय है कि मनुष्य, केवल मनुष्य हो;—इस धरती पर चलने वाला जीव हो और मनुष्यता का उपासक हो। इन्सान त्रस्त-समाज के प्रति

सहानुभूति से भरा हो। इस विज्ञान के युग में, ऐसी कल्पनाएँ सार्थक नहीं बन सकतीं कि जो इन्सान को हवा में उड़ाती हों और उसको आकाश की सैर कराती हों। अतएव, संघर्षों के इस जीवन में, पीड़ाओं से भरा यह मनुष्य-समाज जब आग उगलता है, तो वह अपनी परम्प-राओं को ही नहीं, बड़े-से-बड़े साम्राज्य को भी जला देता है। पिछले दिनों भारत में यही हुआ। इस देश के युवकों ने यही किया। इस पुस्तक में उसी का एक धुँधला चित्र-मात्र अंकित किया गया है।

पाठक यदि इस पुस्तक को पढ़कर, कुछ प्रसन्न हों, समाज और देश के प्रति भी सहानुभूतिपूर्ण हों, तो लेखक अपना परिश्रम सफल मानेगा।

काशगरी कूचा,
बाजार सीताराम, दिल्ली
चैत्र सुदी पञ्चमी, संवत् २०१३

श्रीराम शर्मा 'राम'

*

: १ :

कुछ वर्ष पूर्व की कथा है कि जब देश परतन्त्र था :

कॉलेज से दशहरे की छुट्टी पर घर आने की सूचना आत्माराम ने जब माँ को दी, तो तभी, एकाएक माँ के समक्ष पुत्र के विवाह की बात उठ आई। देर से, आत्माराम की माँ के सामने यह प्रश्न था। यही उस घर के जीवन का अभाव था। अतएव, उसने निश्चय किया कि आज ही रजनी की माँ के पास जायेगी और इसी दशहरे पर सगाई करने के लिये कहेगी।

वैसे, आत्माराम की माँ जानती थी कि उसका आत्माराम अभी विवाह करने के लिये उत्सुक नहीं। किन्तु माँ की तो इच्छा थी कि विवाह जल्दी हो। अब अवश्य हो। क्योंकि वह वृद्धा हो गई। मृत्यु के किनारे पर पहुँच गई। अपना घर वह पुत्र की बहू को सौंप देना चाहती थी। निश्चिन्त होना चाहती थी। फलस्वरूप, वह माँ अपनी उस इच्छा के समक्ष, पुत्र की बात को मानने के लिये प्रस्तुत नहीं थी। कई वर्ष हुए, गाँव में आकर बसे नये जमींदार की पुत्री रजनी को आत्माराम ने जैसे पसन्द कर लिया था। अथवा, माँ की दृष्टि में ही उस रजनी का रूप-गुण आ गया था। इसलिए, जब दोनों ओर से इस प्रसंग में बात चली, तो रजनी की माँ ने भी पुत्री के इस सम्बन्ध को पसन्द किया। आत्माराम सरीखा होनहार और प्रतिभावान वर कदाचित् उसकी रजनी को मिलना आसान नहीं था। आत्माराम उस परिवार को पसन्द था। इसलिए कन्या-पक्ष की ओर से ही, जब यह प्रस्ताव आत्माराम की माँ के समक्ष आया, तो उसने पसन्द कर लिया। किन्तु जब आत्माराम का पत्र आया और उसने दशहरे की छुट्टियों में घर आना लिखा, तो तब, उसकी माँ को यह अच्छा नहीं लगा कि

रजनी के माता-पिता विवाह को आगे ले जा रहे हैं। वे अपनी सुविधा देखते हैं। इस घर की अवस्था नहीं देखते। यह नहीं समझते कि मैं बूढ़ी हूँ······कभी भी इस जिन्दगी से नाता तोड़कर, पंछी के समान किसी और डाल पर जाकर बैठने वाली हूँ·········!

उसने मन में कहा, मैं आज अन्तिम निर्णय करूँगी। रजनी की माँ से साफ कह दूँगी। उनकी ओर से ढील हुई तो जो और लड़की वाले आते हैं, उनमें से किसी को चुन लूँगी। उसने कहा, मेरा क्या है, आज हूँ कल नहीं! मेरे मन-पंछी का पिंजरा पुराना हुआ······ प्राण-पंछी आज है, कल नहीं!

लेकिन आत्माराम और रजनी के विवाह के पक्ष-विपक्ष में यद्यपि मतभेद के लिये गुन्जायश नहीं थी, किन्तु रजनी के पिता में जिस महत्त्वाकांक्षा की पुट लगी थी, सच्चाई यह कि वही विवाह को आगे खींच रही थी। रजनी के पिता के मन में बात थी कि यदि कुछ विलम्ब करके आत्माराम से अधिक योग्य और सम्पन्न वर उनकी लड़की को मिल जाय तो यह उन्हें पसन्द था। क्योंकि उनकी रजनी जहाँ रूपवती थी, शिक्षित भी कम नहीं थी। उन्होंने हजारों रुपया उसकी पढ़ाई पर व्यय किया था। वह रुपया तो अब आ नहीं सकता, परन्तु यदि ताल्लुकदार या राजा उनकी लड़की को मिल जाये, तो बड़े घराने से सम्बन्ध बनाकर उन्हें और अधिक यश मिल सकता था। यही लालच उस व्यक्ति के मन में था। वह उसे उद्वेलित कर रहा था। इसलिये आत्माराम की माँ के मन में जो सन्देह पैदा हुआ, वह निरर्थक भी नहीं था। वह सत्य था। उसने आत्माराम का पत्र पाकर जमींदारी का काम देखने वाले मुख्तार को घर में बुलाया। उसके आते ही आत्माराम की माँ ने कहा—'मुख्तार जी, मैं आज रजनी की माँ के पास जाती हूँ। जाकर उससे कहती हूँ, यदि वह दशहरे पर सगाई करने के लिये तैयार हो, तो सम्बन्ध रहेगा, अन्यथा, वह जो मलिकपुर का चौधरी आया था, उसकी लड़की से मैं अपने आत्मा का

विवाह सम्बन्ध पक्का कर दूँगी। क्यों, ठीक है ना ? तुम देखते हो, मैं जाने कब पैर फैला जाऊँ ! जाने कब यहाँ से चली जाऊँ ! ढलती धूप और उतरती उम्र का भला क्या ठीक ! मैं बुढ़िया हुई ! मैं······!'

मुख्तार ने कहा—'विवाह तो करना ही है, अम्माजी ! आत्मा बाबू भी अब सयाने हुए। वकालत पास कर कुछ दिनों में वकील भी बन जायेंगे। विवाह की यही तो अवस्था है। इस घर में बहू आनी चाहिये। वह तुम्हारी सेवा करे। घर सँभाले।'

'हाँ, मुख्तार जी !' आत्माराम की माँ ने आतुर भाव में कहा—'कल आत्माराम के लिये ताँगा जायगा, तो सगाई का सामान भी आ जायगा। तुम साथ जाना। आत्माराम के लिये कुछ साग-सब्जी भी ले आना।' वह बोली—'उसने पत्र में लिखा है, उसका कोई मित्र भी साथ आयेगा। हाँ, तुम शहर जाना। जाने कौन है उसका मित्र ? कोई शहरी और बड़े घर का ही होगा। यहाँ आकर उसे खाने-पीने को ठीक प्रकार न मिला, तो क्या ठीक होगा ! वह कहेगा, भली है आत्मा की माँ, कोरी गाँव की गँवारिन ! सो, देखकर लाना। कुछ मिठाई भी लेते आना।'

मुख्तार ने कहा—'कोई विपिनबाबू है, जो आ रहे हैं। वह आत्माराम भैया के पुराने साथी हैं।'

'अच्छा, अच्छा, तो बस, मैं रजनी की माँ से मिल आऊँ। बात इधर कर आऊँ या उधर !' यह कहते हुए आत्माराम की माँ उठी। वह रजनी की माँ के पास चल पड़ी। जब वह वहाँ पहुँची, रजनी की माँ छूटते ही बोली—'आज अच्छी आईं, अम्माजी ! मेरे बड़े भाग्य !'

आत्माराम की माँ ने कहा—'कई दिन से मिलने की बात सोचती थी। आज आ पाई। कल आत्मा भी आ रहा है।'

रजनी की माँ ने कहा—'आत्मा बाबू आ रहे हैं !'

हाँ, दशहरा आ रहा है। उसकी छुट्टियाँ हैं।'

'तो सुनो, अम्माजी ! वह कल यहीं खाना खायें, पीछे वहाँ। वैसे तो वह आते नहीं। बुलाने पर भी नहीं आते।' तभी उसने आवाज दी—'अरी, रजनी !'

आवाज सुनते ही रजनी आई। वह आत्माराम की माँ को देख कुछ सकुचाई। तब नमस्ते करके माँ के पास बैठ गई।

उसी समय रजनी की माँ ने कहा—'इस दशहरे पर सगाई भी ले लो, अम्माजी ! लड़की सयानी हुई। मेरी चिन्ता को अब मिटा दो। मैं कब तक इस बोझ को उठाये रखूँगी।'

'मैं भी यही कहने आई थी। उस दिन मलिकपुर का चौधरी बहुत जोर देता रहा। अब मेरा भी तो अन्त समय आ गया।' आत्माराम की माँ ने कहा।

रजनी की माँ ने कहा—'मैं तैयार हूँ, अम्माजी ! रजनी तुम्हारी है। चाहे आज ले जाओ। लड़की तो इस घर से जानी है, चाहे आज, चाहे कल। कल किस समय आयेंगे, आत्माराम ?'

'शाम को !'—आत्माराम की माँ ने कहा—'इस बार उसका कोई मित्र भी साथ आ रहा है।'

'तब कल शाम का भोजन यहीं। दोनों का।'

'अच्छी बात है !' आत्माराम की माँ ने स्वीकार कर लिया।

उसी बीच में रजनी उठकर दूसरी ओर चली गई थी। वह अपने कमरे में जाकर आत्माराम के आने की बात लिये-लिये एकबारगी प्रसन्नता से पुलकित हो गई। जिस आत्माराम के चिन्तन में लीन हुई, वह उसके आने की प्रतीक्षा लिये थी, उसी को आता देख, वह एक अपूर्व उद्वेलन से भर, मानो थिरक-थिरक गयी। बरबस ही, वह अपने-आप में खो गयी। वह तभी अपनी भाभी के पास गयी और उसे झिझोरती हुई अपने-आप गाने लगी।

रजनी के उस आकस्मिक अभिनय को देख, भाभी को कुछ आश्चर्य हुआ। किन्तु वह स्वयं आत्माराम के आने की बात सुन चुकी थी

और सगाई की बात भी, इसीलिए रजनी की ओर देख, एकाएक मुस्कराती हुई बोली—'मैं समझी ! इस खुशी का मर्म पहचानी ! आत्माबाबू आ रहे हैं न ! हाँ, नंनदजी, इसीका नाम है इन्तजार ! इसीको कहते हैं, नया प्रेम !' और वह तब खिलखिल करती हुई हँस पड़ी।

किंतु रजनी ने तुनककर कहा—'देखो, भाभी ! तुम हँसी करोगी तो मैं भाग जाऊँगी।'

भाभी ने प्यार से रजनी को पकड़ लिया। उसने कहा—'इतना तो मैं भी समझती हूँ कि तुम रुकोगी नहीं······इस घर से जरूर भाग जाओगी। विवाह के बाद आत्माबाबू फिर क्या आने देंगे। न, वह नहीं छोड़ेंगे। शहर में रखेंगे, हमारी इस रानी को !'

'अच्छा, अच्छा, तुम चुप नहीं रहोगी, भाभी ! तुम्हें यही सूझता है !' यह कहते हुए रजनी उठी और अपने कमरे में चली गयी।

और जब दूसरे दिन संध्या होते-होते अपने मित्र को साथ लिए आत्माराम घर आया, तो उसी की प्रतीक्षा में लीन, माँ का मन खिल उठा। आत्माराम के चरण-स्पर्श करने पर उसने आशीष दिया। उसी समय उसने बताया कि तुम्हारा आज का भोजन रजनी के यहाँ है। तुम्हें वहाँ जाना है।'

उसी समय आत्माराम का मित्र वहाँ आया। उसने माँ को प्रणाम किया।

आत्माराम ने कहा—'यह मेरे मित्र विपिनबाबू हैं, माँ ! पुराने साथी हैं।'

माँ ने कहा—'पुराने साथी हैं और आज आए हैं।' माँ ने विपिन को आशीष दिया और कहा—'तुम पहले क्यों नहीं आए, बेटा !'

विपिन ने कहा—'अम्माजी, अनेक बार विचार किया, पर आना नहीं हो सका। भैया आत्माराम ने भी नहीं लाना पसन्द किया।'

'नहीं माँ !'—आत्माराम ने कहा—'बिलकुल झूठ ! सफेद झूठ !

यह बड़े घर का है। लाड़ला है। पूछ तो इससे, इसने भी कभी चाहा गाँव में आना !'

'आप सुनती हैं, अम्माजी !' तपाक से विपिन बोला—'किसी के घूँसा मार दो और पुचकार दो, बस, ऐसा ही है किसी को बड़े घर का लाड़ला कहना। अम्माजी, मैं भी आपका सेवक हूँ, आज जाने कैसे आपके दर्शन कर पाया हूँ।'

माँ ने स्नेह-सिक्त भाव में भरकर कहा—'हाँ, हाँ, बेटा ! अच्छा हुआ तुम आए। आज तुम आत्माराम की ससुराल में जाओगे। खाना वहीं खाओगे। इसकी बहू को भी देख आओगे।'

विपिन ने कहा—'तो यों कहो, अच्छी मुहूर्त्त में शहर से चला।' आज खाना भी अच्छा मिलेगा। भाभी का मुखड़ा ....'आम-के-आम, गुठलियों के दाम ! सुन्दर खाना भी और भाभी का देख लेना भी !'

यह सुन, माँ के साथ, आत्माराम हँस दिया। विपिन ने फिर कहा—'और देखो अम्माजी, आत्मा भाई ने अपने विवाह की बात को आज तक नहीं बताया। देखा, ऐसा है तुम्हारा आत्मा—आत्माराम—जो दोस्तों से छुपाता है,—यह विवाह की बात भी छुपाता है !'

माँ ने कहा—'अभी तो सगाई भी नहीं हुई, बेटा ! आए हो, तो देखना, इसकी बहू पढ़ी-लिखी है। गाना-बजाना जानती है। वह भी अब तक शहर में रही है।'

विपिन ने हर्षित होकर कहा—'बस, अम्माजी, मुझे सहारा मिल जायगा। समझो, सगाई हो गयी। वह लड़की हमारी भाभी बन गयी।'

माँ ने कहा—'तू बड़ा हँसोड़ है रे ! दिखता है बड़ा नटखट है। तू रजनी से जरूर कुछ कहेगा। तू जरूर उसे वहीं पर 'भाभी' कहकर आएगा।'

आत्माराम ने कहा—'माँ, यह हजरत अभी तो आए हैं—जरा आकर बैठे हैं ! यह तुम्हारी नाक में दम न कर दे, तो कहना ! एक

ही हँसोड़ और चंचल ! कालेज में प्रसिद्ध !'

उसी समय, रजनी के घर से आदमी आया। उसने आत्माराम से चलने के लिए कहा।

माँ ने कहा—'हाँ, बेटा ! हाथ-मुँह धो लो। चाहो तो कपड़े बदल लो।'

आत्माराम ने आदमी से आने के लिए कह दिया और स्वयं विपिन को साथ ले जाकर हाथ-मुँह धोने लगा। कुछ देर बाद जब वह विपिन सहित रजनी के घर की ओर चला, तो रास्ते में वह नई और अनूठी कल्पनाओं से भर गया था। वह इधर कई मास में रजनी के घर जा रहा था। विशेषकर जबसे उसका रजनी के साथ विवाह-सम्बन्ध का प्रसंग चला, तो वह तब से प्रथम बार जा रहा था। आत्माराम उस समय रजनी और अपने सम्बन्ध के उस समय को भी देख रहा था, जो अकस्मात ही उन दोनों को समीप ले आया। और वह ब्राह्म-मुहूर्त उसे अब भी याद था कि जब जंगल के एकान्त में —प्रकृति के उस विराट् रूप के समक्ष—रजनी और वह समीप आकर मिले थे। परस्पर परिचय कर सके थे। रजनी ने पिछले दिनों अपने पत्र में साफ लिखा, तुम मेरे हो—जीवन देवता ! और आत्माराम रजनी की उसी भावना में खोया हुआ विपिन के साथ रजनी के द्वार पर पहुँच गया। वह प्रसन्न और सन्तुष्ट बना, उस घर में प्रवेश कर गया।

: २ :

रजनी के माता-पिता में आत्माराम के प्रति जो एकमत नहीं बना तो इसका भी एक कारण था। रजनी के पिता आत्माराम की

शिक्षा-दीक्षा देखकर तो उसे अपनी पुत्री के योग्य समझते, विवाह करना भी पसन्द करते, किन्तु उस पुरुष म जो महत्वाकांक्षा थी, उसके समक्ष, अपने को दुर्बल पाते। उसे आत्माराम पूरी नहीं कर सकता था। कदाचित् यह उस घर की परम्परा के भी विरुद्ध था। लेकिन आश्चर्य की बात तो यह कि रजनी की माँ स्वयं अपने पति की इच्छा के विरुद्ध थी। और वह इच्छा थी—पैसा! उस ठाकुर परिवार में देर से लड़की के विवाह पर पैसा लेने की प्रथा थी! रजनी के पिता ने जब अपनी पुत्री की शिक्षा पर काफी व्यय किया, तो उनकी इच्छा थी वह विवाह पर वसूल कर लिया जाय। यद्यपि उनके परिवार की यह हीन प्रथा थी, जो प्रायः मिट भी गयी थी; परन्तु उन ठाकुर साहब सरीखे बहु-व्यसनी व्यक्ति को वह हीनता नहीं खटकी। इसलिए क्रय-विक्रय की वह परिपाटी रजनी की माँ को पसन्द नहीं थी। वह इसका निरन्तर विरोध कर रही थी।

निदान, जब आत्माराम और विपिन उस घर भोजन करने के लिए पहुँचे, तो रजनी के पिता की दृष्टि पहले विपिन पर पड़ी, बाद में आत्माराम पर। आत्माराम ने विपिन का परिचय दिया और कहा कि इनके पिता नगर के एक बड़े जमींदार हैं। साहूकार हैं। हमारी जाति के हैं।

रजनी के पिता ने प्रसन्न होकर कहा—'शायद यहाँ पहली बार आए हैं!'

आत्माराम ने कहा—'जी हाँ, पहली बार। आज भी जाने किस प्रकार आ गए।'

ठाकुर ने विपिन को लक्ष्य करके कहा—'अन्न-जल की बात है भाई! अपना घर और बाल-बच्चे छोड़कर भी कौन बाहर जाता है।'

यह सुनते ही आत्माराम ने हँसकर कहा—'जी, अभी हजरत अविवाहित हैं। तभी तो कहता हूँ, जब अभी से यह हाल है तो आगे का ईश्वर ही मालिक है!'

तब ठाकुर ने विपिन की ओर देखकर कहा—'बाबू, ऐसी अवस्था में तो अवश्य घूमना-फिरना चाहिए। और विवाह तो देर में ही करते हैं आजकल के लड़के ! वह भी देख-भाल कर। जब कोई लड़की अपने अनुरूप पाते हैं, तो विवाह करने की बात सोचते हैं।' इतना कहते हुए ठाकुर ने हँसा। उसने अपनी कमर को पीछे कुर्सी से लगाया और दृष्टि को छत की कड़ियों की ओर उठा दिया। इसी बीच में उन्होंने आत्माराम और विपिन की तुलना की। मन में कहा, विपिन सुन्दर है, धनिक है। इस आत्माराम में कुछ भी नहीं है। मामूली जमींदार है। कल को वकील भी बना, तो जरूर, यह अच्छा वकील भी न बन पाएगा। तब भी रुपया उपार्जित न कर सकेगा। कोरा बुद्धू रहेगा !

उसी समय नौकर ने भोजन तैयार होने की सूचना दी, तो ठाकुर की भावना को बखेर दिया। उसे चौंका भी दिया। जब वह सब भोजन करने के लिये बैठे, तो ठाकुर ने सभी को सुनाकर कहा—'खाने वाले अपरिचित या बाहरी नहीं हैं, इसलिए रजनी परोसे। यह उसी का काम है। नौकर का नहीं।' किन्तु यह प्रथा गाँव की तो थी नहीं, शहर की थी; इसलिए रजनी एकाएक नहीं आई।

यही देखकर, ठाकुर ने हँसते हुए विपिन को सुनाया—'देखिये न, कैसी बेहूदा प्रथा है कि मेहमान खाने बैठे हैं और नौकर परोसने आया है ! यह काम तो औरतों का है—घर की बहू-बेटियों का ! क्यों बाबू ?'

विपिन ने कहा—'जी, ठीक है। पर यह गाँव में नहीं चलता। शहरों में भी कहीं-कहीं नहीं दीखता। जहाँ पर्दा है, वहाँ इस प्रथा को स्वीकार नहीं किया जाता।'

किन्तु ठाकुर ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'मैं नहीं मानता। मैं इस प्रथा को स्वीकार नहीं कर सकता।' और तभी उन्होंने देखा कि रजनी एक थाल में गरम और फूली-फूली पूरियाँ लाई है। देखते ही ठाकुर ने कहा—'वाह-वाह, शाबाश बेटी ! पढ़ाई का यही तो अर्थ

है। नौकर क्या हर बात को समझता है! दो, बाबू लोगों को!'

और जब आत्माराम के बाद विपिन को पूरी दी गयी, तो उसने न, न, किया। पर पूरी तो डाल दी गयी। यही देखकर विपिन बोला—'अधिक हो गया! पेट भर गया!'

ठाकुर ने कहा—'दिखता है, आप बहुत कम खाते हैं। अभी तो जवान हैं।' यह सुनकर आत्माराम के साथ विपिन हँस दिया।

उसी समय ठाकुर ने अभिनय के ढंग पर रजनी से प्रश्न किया—'तुम्हारे थाल में कितनी पूरियाँ और हैं बेटी ?'

रजनी ने चकित भाव में कह दिया—'चार।'

ठाकुर ने आत्माराम से कहा—'एक आप लीजिये और एक आप विपिनबाबू। दो मैं ले लूँगा।'

यह सुनते ही विपिन ने कहा—'जी नहीं! बस, अब नहीं!'

'तो मैं अकेला खाता क्या अच्छा लगूँगा, बेटी!' ठाकुर ने कहा—'यह बाबू लोग तो बस जैसे खाना देखकर ही पेट भर लेते हैं। यह जवान इस बूढ़े के साथ-साथ भी नहीं खा पाते!'

तब रजनी ने किसीसे कुछ कहे बिना एक पूरी आत्माराम के सामने और एक विपिन के थाल में डाल दी। जो दो बाकी रह गयीं, वे पिता के सामने। उसी समय विपिन ने रजनी की ओर देखा। उसने रजनी को आँखों से हँसता हुआ पाया। निःसंदेह, समय के अनुरूप, उस समय रजनी का वेश-विन्यास अच्छा था। जिस साड़ी को वह पहने हुए थी, उस रात के समय, उससे रजनी का रूप द्विगुणित चमक रहा था। खाना अधिक खाकर और फिर भी, अपने सामने एक पूरी और पाकर, विपिन ने कुछ कहना तो चाहा, परन्तु रजनी की आँखों में जिस प्रकार की मुस्कराहट थी, वह याचनामयी थी, प्रेरणात्मक भी, उससे कुछ नहीं कहा गया।

इस प्रकार हँसी-खुशी में भोजन समाप्त हो गया। पान भी आ गये और खा लिये गये। जिस समय पान दिये गये, तो स्वभाव से

हँसोड़ और बातूनी विपिन ने पान लेते समय रजनी की ओर देखा और नमस्ते कहा। उत्तर में रजनी ने क्या कहा, यह उसके कानों तक नहीं आ पाया।

इसके बाद ही दोनों ने ठाकुर से विदा ली। विदा देते हुए ठाकुर ने विपिन से कहा—'आपको शिकार का शौक हो, तो कल चलिये। आत्मा बाबू तो शिकार नहीं खेलते। यह किसी को मारना भी पसन्द नहीं करते।'

विपिन ने कहा—'जी, मैं इन सरीखा साधु नही हूँ। मैं शिकार करता हूँ और खाता हूँ। मै आत्मा बाबू के समान केवल शाकाहारी नहीं हूँ।'

'तो कल चलिये ! जरूर चलिये !' ठाकुर ने कहा—'आपको पास के ही जंगल में ले चलूँगा। हिरण, खरगोश और जंगली सूअर······ यहाँ क्या-कुछ नहीं है। सभी कुछ है। कभी-कभी शेर और बघेरा भी आ जाता है।'

विपिन ने कहा—'मै अवश्य चलूँगा। जब आपके साथ खाना खाया है, तो शिकार खेलना भी स्वीकार करूँगा।'

'तो ठीक ! कल चलिये। वहीं बात होगी। जिन्दगी की दिल्लगी और मौज भी दिखायी देगी।' ठाकुर ने कहा—'और ये आत्मा बाबू हैं, न कभी आते है न कहीं जाते हैं। मुझे बड़ी शिकायत है इनसे !'

यह सुनकर आत्माराम हँसा। विपिन भी हँस दिया।

विपिन ने कहा—'अच्छा, नमस्ते !'

ठाकुर ने कहा—'नमस्ते !'

जब दोनों लौट चले तो रास्ते में विपिन ने कहा—'अरे, बाप रे ! बूढ़ा एक ही है, अपने-आप में मस्त और जीवटदार ! यह जरूर सूअर मारता होगा और अकेला ही उसको अपने पेट में उतार लेता होगा !'

यह सुनकर, आत्माराम ने कुछ नहीं कहा। वह हँसता और विपिन

की बात पर मुस्कराता हुआ रास्ता पार करता गया। वह अपने घर की ओर बढ़ता गया।

किन्तु इन दोनों के पीछे ही, जब ठाकुर ने दोनों को विदा कर दिया, तो रजनी की माँ परदे से बाहर आई। उसे देखकर, छूटते ही, ठाकुर ने कहा—'रजनी की माँ, दिखता है मुझे घर बैठे शिकार मिल गया। रजनी के लिए अच्छा लड़का हाथ आ गया। तुमने आत्माराम का दोस्त देखा ? देखा, कितना सुन्दर और नेक ! अमीर और हमारी जाति का ठाकुर······!'

पत्नी ने जिज्ञासा के साथ कहा—'तो···?'

'तो,'—ठाकुर ने रुककर कहा—'मैं उसे रजनी के लिए उपयुक्त समझता हूँ। मैं अपनी बेटी को गाँव में नहीं, शहर में ब्याहना चाहता हूँ।'

किन्तु पत्नी ने तुरन्त ही कह दिया—'अब कुछ नहीं होगा। दशहरे का दिन सगाई के लिए रख दिया है। मैंने यही आत्माराम की माँ से कहा है।'

पत्नी की बात सुनते ही, ठाकुर ने गम्भीर तथा संयत स्वर में कहा—'यह हमारी लड़की के ब्याह की बात है, रजनी की माँ। जाने कितनी बातें होती हैं कि जो आती और जाती हैं।

यह सुनते ही, पत्नी लाल बन गयी। वह उसी भाव में पति की ओर देखने लगी। तत्क्षण ही वह कमरे से जाती हुई बोली—'अब कुछ नहीं हो सकता – कुछ भी नहीं !'

'रजनी की माँ !' कुछ कठोर और भारी स्वर में ठाकुर ने पुकारा। किंतु पत्नी नहीं आई। बेटी आई, जो ठाकुर के पास आकर कुछ अधीर और काँपते हुए स्वर में बोली—'पिताजी·········!'

तब स्त्री की बात छोड़कर ठाकुर बेटी की ओर बढ़ गया। वह उसी क्रोध-मिश्रित स्वर में बोला—'क्या है, रजनी बेटी ! बताओ, तुम्हें रोना कैसे आया ?' कहते हुए ठाकुर ने रजनी के शरीर पर हाथ

रखा। उसने प्यार भरे स्वर में कहा—'रोया नहीं करते बेटी! मैं तुम्हारा पिता हूँ। जो कुछ करूँगा, वह तुम्हारे ही हित की बात करूँगा।'

किंतु रजनी तो अधीर थी। उद्वेलित भी बन रही थी। वह अपनी उन भरी आँखों से पिता की ओर देखने लगी। कुर्सी का सहारा लिए खड़ी-की-खड़ी रह गयी। वह उसी अवस्था में एकाएक रो पड़ी। बोली—'मुझे मार दीजिए, पिताजी! हाँ, मेरा अन्त कर दीजिए!' कहते हुए उसने अपना मुँह उठाया और उन लाल हो आईं पीड़ित आँखों को पिता की ओर उठा दिया।

पिता ने तब और अधिक कुण्ठित और कुपित बनकर कहा—'रजनी······पागल कहीं की!'

रजनी ने कहा—'आखिर अब क्या शेष रहा? इस रजनी के लिए अब आपको और क्या करना है? निश्चय ही, यह ऐसे तो जीवित नहीं रह सकेगी! यह मर जायगी! आप इसको खिलौना बना रहे हैं! पत्थर पर पटक रहे हैं! इसे तोड़ देना चाहते हैं!'

ठाकुर ने झुँझलाकर कहा—'निर्लज्ज कहीं की! तू बाप से भी नहीं शरमाती! तू नहीं लजाती······लड़की!'

किन्तु रजनी ने तब भी जाने कितनी याचनापूर्ण और आतुर अवस्था में पिता की ओर देखा और कहा—'मुझे जो कुछ कहना है, वह आपसे नहीं तो क्या दीवारों से कहूँगी? मै आपकी पुत्री हूँ। मैं अधिकार रखती हूँ।'

हाँ, हाँ, मेरी बच्ची! मेरी भोली बेटी! मै तेरे हित की ही बात करूँगा, रजनी!' दुलार भरे और नम्र स्वर में ठाकुर ने कहा—'अब तू जा। मैंने कल विपिनबाबू बुलाए हैं। आयें तो बैठाना। उनसे बात करना। दिखता है कि वह बड़ा सरल है। हँसमुख है।'

यह सुनने के साथ रजनी अपनी साँस रोके, भरी आँखें लिए, घर में चली गयी। वह अपने कमरे में जाकर, कटे धड़ के समान बिस्तर

पर गिर गयी। उस क्षण उसके अन्तर में जैसा हा-हाकार उठ आया था, वह असह्य था। वह बरबस ही, उसे व्यथित और व्याकुल बनाने में समर्थ हो गया था।

: ३ :

उसी रात में, आत्माराम के साथ, घर जाते-जाते रास्ते में विपिन ने कहा—'तुम बड़े भाग्यवान हो, आत्माराम! तुम योग्य पत्नी पा सके हो—अपने अनुरूप! मुझे लगा कि तुम जितने गम्भीर और कम बात करने वाले हो, इसके विपरीत तुम हँसोड़ और चंचल पत्नी पा रहे हो।'

हँसते हुए आत्माराम ने कहा—'यह कैसे समझा? इतनी देर में कैसे पहचान लिया?'

विपिन ने कहा—'मैं बुद्धू नहीं हूँ। और यह तो तुम्हारे लिये ठीक ही हुआ। तुम्हें हँसाने वाला तो मिला।'

यह सुनकर आत्माराम ने केवल 'हुँ' कर दिया। वह मौन रहा। उसके मन में ठाकुर की बात थी। आत्माराम सोच रहा था कि ठाकुर विपिन की ओर आकर्षित हुआ है। उसने स्वयं विपिन से मिलना और बोलना पसन्द किया है।

किन्तु उसी समय विपिन ने फिर कहा—'हाँ, तुम रजनी को पाकर सुखी बनोगे, आत्माराम! चलो, अच्छा अवसर मिला, मैं भी अपनी भाभी को देख आया। आज का दिन सफल रहा। भोजन भी अच्छा मिला।'

आत्माराम ने सामने के अन्धकार की ओर देखते हुए कहा—'कल जाना और रजनी से बात कर आना।"

विपिन ने कहा—'अवश्य! तुम साथ होगे ना?'

आत्माराम ने कहा—'मैं न जा सकूँगा। तुम जानते हो, मैं न बात कर सकूँगा और न कुछ कह-सुन सकूँगा। मैं साथ रहूँगा, तो तुम्हें कुछ भी न मिलेगा! फिर रजनी का तुम्हारे पास आना नहीं हो सकेगा।'

यह सुनकर विपिन ने अपने मन में आई हुई बात को रोक लिया। उसने आगे कुछ नहीं कहा। उस अवस्था में ही दोनों ने घर में प्रवेश किया।

दोनों को देखते ही, आत्माराम की माँ ने प्रश्न किया—'क्यों भैया, खाना ठीक बना? अच्छा बना?'

विपिन ने कहा—'हाँ, अम्माजी, बहुत अच्छा!'

'तो तुमने आत्माराम की बहू भी देखी—रजनी?'

'हाँ, अपनी बनने वाली भाभी को भी मैं देख आया, अम्माजी! बल्कि यों कहिये, खाना भी उन्हींने खिलाया।'

माँ ने हँसकर कहा—'अच्छा, तो रजनी ने खाना खिलाया!' वह बोली—'हाँ, ठाकुर शहरातीपन अधिक बरतता है। परदा भी कम कराता है। पर तुम्हें अच्छी तो लगी आत्माराम की बहू?'

विपिन ने कहा—'हाँ, अम्माजी! तुम्हें अच्छी बहू मिल गयी। सुन्दर और चतुर!'

माँ ने कहा—'भैया, मैंने यही देखा। पैसा नहीं देखा। लड़की पढ़ी देखी, शक्ल-सूरत की अच्छी देखी।'

विपिन ने कहा—'मुझे भरोसा है कि रजनी घर में आते ही तुम्हारा बोझ अपने कन्धों पर उठा लेगी। वह आत्मा भाई को भी सहयोग दे सकेगा।'

माँ हँसी—'पढ़ी भी है। आजकल तो पढ़ी लड़कियाँ दफ्तरों में काम करती हैं। रुपया उपार्जित करती हैं।'

विपिन ने कहा—'अम्माजी, नगरों में कोई ऐसा स्थान नहीं कि जहाँ लड़कियाँ काम न करती हों। आज का नया युग है। स्त्री-युग है।'

माँ ने हँसकर कहा—'हाँ, बेटा ! स्त्री का युग है ! स्त्री को अधिक स्वतंत्रता मिल गयी है । स्त्री चौके-चूल्हे पर काम करने वाली नहीं रह गयी है । वह सजी-सजायी गुड़िया बन गयी है ।

विपिन ने कहा—'अम्माजी, तो यह बुरा है क्या ? न, अच्छा है ! यों तो स्त्री और अधिक आकर्षण की वस्तु बन गयी है ।'

यह सुनकर माँ जोर से हँस पड़ी । आत्माराम भी हँस दिया ।

और जब रात में विपिन और आत्माराम पास-पास बिछे हुए पलंग पर सो रहे थे, तो सोते में विपिन को सपना आया । वह खाना खा रहा है । रजनी बासन्ती रंग की साड़ी पहनकर उस कमरे में आयी है और विपिन को पूरी देने के लिये झुकी है । वह इन्कार कर रहा है और पूरी डाल दी गयी । तभी विपिन ने उसकी ओर देखा । उसे हँसती पाया । यह देख, विपिन स्वयं भी मुस्करा दिया । सचमुच, वह सब विपिन को बड़ा मधुर लगा । सुहावना लगा ।

स्वप्न देखते हुए विपिन जाग गया । वह उठकर बैठ गया । दोनों हाथों की हथेलियों पर मुँह को रख लिया । वह एकाएक बोला—'तुम हो रजनी······तुम !'

उसी समय, कमरे में रखे हुए लैम्प के उस धूमिल प्रकाश में चूहे या बिल्ली ने एक शीशे का गिलास नीचे गिरा दिया । उसका शब्द सुनते ही आत्माराम भी जाग गया । जब विपिन ने रजनी का नाम उच्चारित किया और साथ में कुछ कहा, तो तभी, आत्माराम ने आँख खोलकर उसकी ओर देखा । वह बोला—'विपिन, कैसे बैठे हो ! तुम क्या सोचते हो ?'

यह सुनते ही विपिन ने जाने कैसी अधीरता के साथ आत्माराम की ओर देखा । स्वप्न अभी उसके मस्तिष्क में था । वह छाया के समान आँखों में भी उतर आया । उसने कुछ नहीं कहा । वह फिर सो गया ।

प्रातः होने पर आत्माराम जल्दी उठा । वह घर के कामों में लग गया । विपिन देर तक सोता रहा । जब काफी सूरज चढ़ गया तो माँ ने

कहा—'विपिन को जगा दे आत्माराम !'

आत्माराम ने कहा—'माँ, विपिन रात में देर से सोया। आधी रात तक जागता रहा।'

माँ ने कहा—'नई जगह आया है।'

लेकिन उस समय आत्माराम की स्वयं इच्छा थी कि विपिन जाग जाये। वह उसे लेकर अपने खेतों की ओर जाये। विपिन प्रातःकाल के उस सुन्दर प्रहर में प्रकृति का दर्शन करे। इसीसे, उसने कमरे में जाकर विपिन को जगा दिया। विपिन उस समय गहरी नींद में था। खुर्राटे भर रहा था। आँख खोलते ही उसने आत्माराम की ओर देखा और कहा—ओह! मैं सच, आज बहुत सोया।'

आत्माराम ने कहा—'भले आदमी, तू इतना सोया कि सूरज भी चढ़ आया। अब उठ! मुँह-हाथ धो, नाश्ता कर। फिर मेरे साथ चल। देख, विश्व की अनिंद्य सुन्दरता खेतों में आ गयी है। तू पहले उठता तो देखता कि कहीं हरिणों के झुण्ड, कहीं कुहकती हुई कोयल के मीठे स्वर······!'

उसी समय विपिन ने अँगड़ाई ली और कहा—'मैंने आज बहुत स्वप्न देखे। आत्माराम! सच, बहुत!' और वह तब ठीक आत्माराम की आँखों को देखकर बोला—'मुझे रात भाभी भी दिखाई दी—रजनी!' इतना कहते हुए विपिन हँस दिया। वह उसी अवस्था में पलंग छोड़कर खड़ा हो गया।

बात सुनकर आत्माराम ने कहा—'मुझे लगता है कि रात तू बहुत कम सोया है! रात भर रजनी भाभी को स्वप्न में देखता रहा है। आँखें लाल हैं।'

लेकिन विपिन हँसता हुआ बोला—'जी, नहीं! मैं बहुत सोया··· सच, बहुत!'

इतने में आत्माराम की माँ भी वहाँ आ गयी। वह बोली—'बहुत सोये बेटा! तुम्हें सोता देखकर मैंने आत्माराम को भी दूध नहीं दिया।

बना हुआ हलुआ भी ठण्डा हो गया।'

'हाँ, भाई जा ! जल्दी कर !' आत्माराम ने कहा।

विपिन ने वहाँ से जाते-जाते रुककर कहा—'क्यों, भूखे हो ? रात में ससुराल के खाये हुए माल पचा चुके दीखते हो !'

'वह अब रखे हैं !' आत्माराम ने कहा।

'अच्छा, अच्छा, मैं अभी आया। कहते हुए विपिन कमरे से बाहर चला गया। उसके पीछे ही आत्माराम की माँ बोली—'लड़का सरल है। खुशमिजाज भी है।'

आत्माराम ने कहा—'मुझे बोर्डिंग में भी इसकी सार-सँम्भाल रखनी पड़ती है, माँ !'

माँ ने कहा—'इतने विपिन आये, तू अपना भी काम देख ले। देख तो, मालगुजारी किस-किसकी बाकी है ? मुख्तार जी कहते थे कि अभी आधी भी वसूल नहीं हुई है !'

आत्माराम ने माँ की बात सुनी तो वह एकाएक गम्भीर बन गया। वह द्रवित भी हो गया। उसने कहा—'माँ, कल रास्ते में ही, मैंने मुख्तारजी से मालूम कर लिया था। भला जब खेत में पैदा नहीं होगी, तो किसान कहाँ से देगा ! वह तब पैसा कहाँ से पायेगा। किसान की गरीबी किसी से भी छुपी नहीं है, माँ !'

माँ ने कहा—'यह तो ठीक है ! जो कुछ है, वह सामने दीखता है। किन्तु तुम कहाँ तक सरकार को दोगे ? इसकी भी सीमा है ! अब मेरे पास पैसा कहाँ रखा है !'

माँ की बात सुनकर आत्माराम ने दीनता के साथ फिर कहा—'माँ, इसके सिवा और कोई चारा नहीं। किसान झूठा और बेईमान भी नहीं।'

माँ ने पुत्र का वह नम्र बना हुआ स्वर सुना तो उसे अच्छा लगा। उससे एकाएक कुछ भी न कहते बना। उसका मन स्वतः ही पुत्र के समान मधुर तथा सरल भावना से भर गया। जिस मातृत्व

का प्रगाढ़ स्रोत उसके मानस में प्रवाहित था, वह जैसे और दूने वेग से ठाठें मारने लगा। उसी भावना से प्रेरित होकर उसने प्रस्तुत प्रसंग छोड़ दिया। रात की बात लेकर कहा—'रात ठाकुर ने कुछ कहा ? ब्याह की बात का कोई प्रसंग चला ?'

आत्माराम ने कह दिया—'कुछ नहीं। मुझसे कुछ नहीं कहा।'

माँ ने कहा—'मैं इसी दशहरे पर सगाई करना चाहती हूँ। मैं यही बात रजनी की माँ से कह आई हूँ। उसकी सहमति भी ले आई हूँ।'

इतना सुनकर, आत्माराम ने कुछ नहीं कहा। उसने अपना मत देना जैसे उचित भी नहीं समझा। उसी समय विपिन कमरे में लौट आया। माँ चली गयी। उसने घर की नौकरानी के हाथ दो गिलासों में दूध और तश्तरियों में हलुआ भेज दिया।

दूध पीकर आत्माराम ने विपिन से कहा—'आओ, विपिन ! मैं तुम्हें गाँव दिखा लाऊँ। गाँव में कैसे घर हैं, कैसे रास्ते, तुम यह भी देख लो। गाँव की विपिन्नता और दरिद्रता का दर्शन अपनी आँखों से करलो।'

विपिन ने कहा—'हाँ, यह महत्व की बात है। मैंने गाँव के विषय में अब तक पढ़ा ही, देखा कुछ नहीं।'

आत्माराम ने कहा—'विदेशियों ने गाँवों को उजाड़ दिया है। वैसे, नगर और गाँव के जीवन में सदा ही अन्तर रहा है।'

विपिन ने कहा—'पहले नगर कम थे। गाँव अधिक थे। नगरों का जीवन तो विदेशियों ने आकर बनाया। उन्होंने ही नगरों को आबाद किया।'

आत्माराम ने कठिन स्वर में कहा—'गाँव उजाड़े, नगर बसाये—वाह-वाह !'

विपिन बोला—'यह स्वार्थ की बात है ! विदेशियों की स्वेच्छा का पेट इसी प्रकार भर सकता है।'

आत्माराम ने कमरे के बाहर दूर आकाश की ओर देखते हुए कहा—'काश, हमारे गाँव सम्पन्न होते !' उसने अपने स्वर पर झटका खाया और कहा—'आज तो ये गाँव कूड़े के ढेर हैं ! निरक्षरता का यहाँ राज्य है । लोगों के तन पर कपड़ा नहीं, पेट के लिये अन्न नहीं, रहने के लिए झोपड़ा नहीं···सच ! बड़ा अजीब जीवन है, इन ग्रामवासियों का ! निरा विपिन्न···निरा जड़···!'

विपिन चलने के लिए प्रस्तुत हो गया । वह आत्माराम के साथ चल दिया । जब दोनों घूमने चले, तो रास्ते में, एक कुँए के पास पनिहारिन लड़कियाँ और बहुएँ पानी भर रही थीं । कोई कुँए से घड़ा खेंच रही थी, कोई डाल रही थी । आत्माराम और विपिन को देखकर उनमें चर्चा चली, जमींदार बाबू के साथ यह कौन ? दिखता है कोई शहराती है । शहर से गाँव में घूमने आया है । और जब वे दोनों ठीक कुँए के पास से निकले, तो उन दोनों ने सुना, आत्माराम के घर की पतिहारिन कह रही थी—'ये हमारे बाबू के दोस्त हैं । गाँव में घूमने आये हैं ।' आत्माराम ने देखा कि वह श्यामा लड़की उसके मित्र का परिचय बड़े कलापूर्ण ढंग से दे रही है । सुनकर, आत्माराम मुस्करा दिया । विपिन हँस दिया । उसे लगा कि सच, उस गाँव के जीवन के प्रति वह जितना उदासीन था और उपेक्षित बना था, वैसा नहीं पाया । उस अकेले पनघट को ही, उसने सौन्दर्य और जिज्ञासा का केन्द्र पाया । मानो उस कुँए पर गाँव के राजनैतिक, सामाजिक और धार्मिक जीवन का नीर-क्षीर होता था । वह पनघट सभी प्रकार की चर्चाओं का केन्द्र बना था । फलस्वरूप, विपिन को उस जीवन में रस पाया । सौन्दर्य देखने को मिला ।

कुँए से आगे जाकर जब दोनों बढ़े जा रहे थे, तो तभी, अचानक विपिन ने एक घर के द्वार पर देखा कि वही रात की रजनी खड़ी है । वह उधर ही देख रही है । इतना आत्माराम ने भी देख लिया था । किन्तु विपिन ने उस ओर देखते ही, मानो चोंककर कहा—'अरे,

भाभी,—रजनी देवी ! हाँ, वही हैं ! क्यों आत्माराम ! देखा तुमने उस ओर ! वही हैं न ?'

आत्माराम ने सामने की ओर देखते हुए कहा—हाँ, वही रात की रजनी है । अपने घर के द्वार पर खड़ी है ।'

यह सुनकर, विपिन ठिठक गया । वह उसी ओर देखने लगा । यह देख, आत्माराम ने उसका हाथ पकड़कर कहा—'आओ, आओ, अब हम खेत देखने चल रहे हैं । खेत की फूली-फली हुई हरियाली देखने जा रहे हैं, विपिन कुमार !'

किन्तु विपिन ने कहा—'तुम देखो तो, वह हमीं लोगों को देख रही हैं । शायद कुछ कह रही हैं ।'

यह सुनकर, आत्माराम ने हँस दिया । उसने कहा—'तुम बड़े चंचल हो । रजनी देखती तो है, जब बुलाये, तो चले जाना । वहाँ जाकर बैठ आना ।'

'और तुम ? तुम नहीं !'

विपिन की बात सुनते ही, आत्माराम ने सामने के जंगल की ओर पैर बढ़ाते हुए कहा—'मेरा क्या प्रश्न ! मैं तो इस गाँव का हूँ । मैं तुम्हारे समान मेहमान नहीं हूँ ।'

'हुँ'—विपिन ने बात पर रुक कर कहा—'हाँ, भाई ! तुम्हारा क्या !' कहते हुए वह हँस दिया ।

आत्माराम ने तब उसकी ओर देखते हुए कहा—'तुम बड़े शोख हो ! जो कहना है, उसे कहने से क्या कभी चूक सकते हो ! न, कभी नहीं !'

उसी समय विपिन ने फिर मुड़कर देखा, तो रजनी पूर्ववत् अपने द्वार पर खड़ी थी । उसका मुँह भी उन्हीं की ओर था । यह देख, विपिन ने फिर कहा—'आत्माराम, रजनी खड़ी है । वह अभी तक तुम्हें देख रही है । और तुम हो कि जैसे निरे कठोर और ममताहीन !'

इतना सुनना था कि आत्माराम जोर से ठहाका मारकर हँस पडा। वह फिर शान्त बनकर, सामने की ओर हाथ का इशारा करता हुआ बोला—'मैं जानता हूँ कि उन खेतों को देखकर तुम प्रसन्न बनोगे! मुग्ध होगे!' यह कहते हुए वह मुस्कराया। वह विपिन की ओर देख फिर क्षणिक हँस भी दिया।

वे दोनों हरियाले और फूलते-फलते खेतों के मध्य पहुँच गये। ज्वार, बाजरा, और मक्का के उन खेतों को देखकर, विपिन एक खेत के किनारे पर खड़ा हो गया। प्रकृति के उस विराट् दर्शन को पाकर, वह सचमुच ही मुग्ध बन गया। आत्माराम अपने एक खेत की ओर बढ़ गया कि जिसे कुछ आदमी जोत रहे थे। एक अन्य खेत की उसके आदमी खुदाई कर रहे थे। इस प्रकार, जब विपिन अकेला रह गया, तो वह खेतों के किनारे-किनारे आगे बढ़ गया। आत्माराम अपने खेत में जाकर, आदमियों के साथ काम में लग गया। वह स्वयँ फावड़ा लेकर खुदाई करने लगा।

और विपिन खेतों की हरियाली देखता हुआ आगे बढ़ा जा रहा था। मक्का और बाजरे के खेत फल-फूल रहे थे। उन पर पक्षी भी मंडरा रहे थे। किसान उन पक्षियों को उड़ाने के हेतु टाँड बाँधे रखवाली कर रहे थे और आवाज लगा रहे थे। किन्तु पक्षी एक बार उड़कर फिर आते। नगर के जनाकीर्ण वायुमण्डल में रहने वाला विपिन उस दृश्य को देख, सचमुच ही मुग्ध बन गया। उस अवस्था में ही उसने समझा कि किसान का जीवन सार्थक है······विभिन्न भागों में बँटा है। उसने अनुभव किया कि सचमुच, किसान परोपकारी है। उसके श्रम का उपयोग सभी जन करते हैं। पशु-पक्षी भी अपने उदर की पूर्ति कर पाते हैं। इतना सोचते ही, विपिन बरवस ही, अपने-आप में खो गया। उसका मानसिक धरातल क्षुब्ध बन गया। वह पीड़ित हो गया। उसने अनुभव किया कि विश्व का कल्याण करने वाला किसान, इतना श्रम करके भी दीन है, पीड़ित है! क्यों? किसलिए? उसने अपने-

आप कहा, नगर के वासी बुद्धि का उपयोग करके श्रम को ठगते हैं···किसान का शोषण करते हैं ! उसे दीन और भूखा बनाते है !

उसी समय, एकाएक चकित बनकर, विपिन ने देखा कि सामने से रजनी आ रही है। वह उसीकी ओर बढ़ रही है। एक छोटा बच्चा उसके साथ है। पास आते ही, विपिन ने हँसकर कहा—'ओ, रजनी देवी ! तुम इधर ! भैया आत्माराम के पास ?' इतना कहते हुए उसने हाथ उठाकर बताया—'वह उस खेत पर हैं। अपने आदमियों का काम देख रहे हैं।''

रजनी ने बात सुनी और रुककर खड़ी हो गयी। वह विपिन की ओर देखकर मुस्कराती हुई बोली—'वह सामने स्कूल देखते हैं न, मैं उधर ही जा रही हूँ। इस कमल को वहीं पहुंचाने।'

लेकिन विपिन ने फिर परिहास के भाव में कहा—'तो मैं गलत समझ गया ! फिर भी, चाहें तो भैया आत्माराम से भी दो बात करती जायें। वैसे रास्ता भी एक है। एक ही खेत का अन्तर है। इधर न जाकर आप उधर से स्कूल पहुँच सकती हैं।'

'ओ, आप लगते हैं, बड़े हँसोड़े और परिहास करने वाले !' रजनी ने हँसते हुए कहा—'कुछ दिन हुए आपके भाई ने मुझे बताया था कि एक विपिन हैं, उनके साथी ! सो, अब देख भी लिया कि आप हैं, वे विपिन बाबू···'

'जो बुरा है, अच्छा नहीं ! समस्याओं में नहीं उलझता। किसी की परिस्थिति से सहयोग नहीं कर पाता !' विपिन ने कहा—'आत्मा भाई मुझे अच्छा नहीं कहेंगे। नहीं कह सकेंगे। और मैं हूँ जो बरबस ही, उनके गले पड़ गया हूँ। मैं स्वयं ही आत्मा बाबू से आ मिला हूँ। मैं उनसे लड़ता हूँ, रूठता हूँ और फिर भी उनके जीवन में मिल गया हूँ। कह सकती हो कि उस बड़े जीवन में खो गया हूँ।'

रजनी ने कहा—'वे खेत में काम कर रहे हैं। खेत खोद रहे हैं अपने आदमियों के साथ कन्धे-से-कन्धा मिलाकर चल रहे हैं !'

'आतमाराम खेत खोद रहे हैं—खूब !' चकित बनकर विपिन ने कहा ।

रजनी ने कहा—'यह उनका सदा का काम है । गाँव में आकर वे शहरातीपन नहीं दिखाते । किसान का सभी काम करते हैं । बैलों के लिए चारा भी काटते हैं । कभी घर की मेहरी पानी भरने नहीं पहुँचती, तो कुँए से पानी भरकर भी घर पहुँचाते हैं । जिस भैंस का दूध पीते हैं, गाँव में आकर स्वयं अपने हाथों से उसकी सेवा करते हैं ।'

विपिन ने कहा—'नगर में रहकर भी आत्माराम शहरी नहीं बना । पूरा देहाती बना रहा । वही पैरों में देसी जूता, गाढ़े का कुरता, मोटी धोती ।' वह बोला—'लेकिन हमारे कालिज में जितना आत्मा भाई का सम्मान है, उतना किसी और विद्यार्थी को प्राप्त नहीं हुआ । आत्माराम पढ़ाई में भी तेज हैं । प्रोफेसरों का सहज-स्नेह भी प्राप्त कर सके हैं ।'

रजनी ने कहा—'नगरों के लोग प्रदर्शन-प्रिय हैं । अपनी वास्तविकता छिपाते हैं । इस प्रकार अपने को स्वयं ही भ्रष्ट-पथिक बना लेते हैं ।'

विपिन ने कहा—'नगर के लोग बहु-व्यसनी बन जाते हैं । श्रम कम करते हैं । आराम पसन्द करते हैं ।'

रजनी ने जैसे ईर्षित भाव में मुस्करा दिया—'वहाँ के लोग पैसा सहज में पा लेते हैं । गाँव के लोग अधिक परिश्रम करके भी कम पैसा पाते हैं । भूखे-नंगे ही सदा रहते हैं ।'

उसी समय लड़के ने कहा—'चलो, दीदी !'

दीदी ने कहा–'अच्छा !'

विपिन ने कहा—'अजी, हजरत ! नाम तो बताओ ! तुम्हारी दीदी को तो मैं जान गया । अब कुछ दिनों में भाभी भी कहने लगूंगा ।' यह कहते हुए उसने रजनी की ओर देखकर कहा—'देखिये, आपको मेरा ध्यान अवश्य ही रखना होगा । आत्माराम को छोड़कर मेर

और कोई भाई नहीं है। वह मेरा अनन्य है। मुझसे उसे छीन न लीजियेगा !'

रजनी ने कहा—'आप तो मालदार हैं, विपिन बाबू ! आपको तो और भी भाई मिल सकते हैं। गुड़ पर चिपटने वाले चींटे क्या तलाश करने पड़ते हैं !'

इतनी बात सुनी, तो विपिन गम्भीर बन गया। उसने कहा—'हाँ आप ठीक कहती हैं। परन्तु न मैं गुड़ हूँ और न चींटों की तलाश करना चाहता हूँ। मैं आदमी हूँ और आदमी से मिलकर ही इस जीवन की जोत जगाये रखना पसन्द करता हूँ, रजनी देवी ! आत्मा भाई आपकी दृष्टि में जो कुछ हों, मैं नहीं जानता ! परन्तु मैं अपनी बात बताये देता हूँ कि मैं उन्हें देवता मानता हूँ। भावनावादी मानता हूँ, इन्सान के रूप में हीरा मानता हूं।'

इस तरह, बरबस ही, विपिन के समान, रजनी स्वयं गम्भीर बन गयी। परन्तु वह स्वभाव के अनुरूप, होठों से मुसकराती हुई बोली—'आप अधिक समझते हैं। मुझसे अधिक समझदार हैं ! मैं क्या कहूँ अपनी बात ! इतना जानती हूँ कि मैं नारी हूँ, भारतीय हूँ, और भारतीय नारी जिस पुरुष को अपना पति मानती है, तो उसके जीवन में मन, कर्म और वचन से खो जाना पसन्द करती है। उसे अपना सर्वस्व अर्पण कर देती है। उसे अपना आराध्यदेव मान लेती है। बस, इतना ही तो समझा है, मैंने ! अब मेरी इच्छा का कोई अस्तित्व नहीं है। आपके भाई के जीवन में मैने अपना सभी-कुछ समर्पित कर दिया है।'

विपिन ने कहा—'और इससे अतिरिक्त क्या ! सच, क्या ! सभी कुछ तो दिया, नारी ने ! नर ने सभी कुछ लिया ! तुमने भैया आत्माराम को निहाल कर दिया।' वह बोला—'मेरी भी यही बात है कि भैया आत्माराम के अतिरिक्त किसीको अपना नहीं पाता। मैं इस जीवन में ऐसी कल्पना नहीं करता।'

इतना सुनते हुए, जाने कैसी ममतामयी दृष्टि के साथ दूर अन्त-रिक्ष की ओर देखती हुई, गम्भीर स्वर में रजनी बोली—'संयोग की बात है कि जो मिलता है, मिलकर बैठता है, वह इसी प्रकार की आकांक्षा ले पाता है, विपिन बाबू ! मैं जानती हूँ कि तुम्हारे भाई में कुछ और भी है, जो ऊपर नहीं है। वह उनके जीवन के गहनतम प्रकाश में लीन है। उनके हृदय में जिस मानव की मूर्ति प्रतिष्ठापित है, वह सदा ही जगमग होती है। वह ज्योति उनके जीवन में सदा ही दिखती है। मैंने वह देखी है। एक बार नहीं अनेक बार दिखायी दी है।' और तभी उसने झटके से विपिन की ओर मुँह करके, मुस्कराते हुए कहा—'सुना, आप शिकार खेलते हैं। आप पिताजी के साथ शिकार पर जाने के लिए वचन दे आये हैं।'

उस समय विपिन जैसे कहीं और था। वह जीवन में पहली बार एक तरुण और यौवन की दहलीज पर खड़ी हुई सुन्दर युवती से अपने प्रेमी के लिए—भावी पति के लिये अपूर्व आत्म-विश्वास की बात सुन, निरा जड़ हुआ, रजनी की ओर देखता-का-देखता रह गया।

यह देख, रजनी ने हँसकर कहा—'आप क्या सोचते हैं········ क्या देखते हैं, आप ?'

विपिन चौंक गया। वह हतप्रभ हो, बरबस अपने सूखे होठों से मुस-करा दिया। जैसे अपने मधुर होठों से हँसती और उसकी ओर देखती हुई रजनी को लक्ष्य करके बोला—'हाँ, हाँ, कहिए रजनी देवी ! भाभीजी !'

यह सुन, रजनी खिलखिलाकर हँस पड़ी। वह अपनी हँसती हुई आँखों से विपिन की ओर देखने लगी।

विपिन ने जैसे लजाकर कहा—'सच, मैं अभी-अभी कुछ और सोचने लगा था। हाँ, सुना तो, आप शिकार की बात कह रही थीं ! पिताजी के साथ जाने की बात ! सो, जाऊँ, न भी जाऊँ !'

'नहीं, नहीं, जाइये ! पिताजी तो शिकार के बड़े शौकीन हैं। मछलियाँ पकड़ना भी बहुत पसन्द है। आप देखेंगे कि जंगली सूअर

को वह अकेले ही मार लेते हैं।'

विपिन ने कहा—'यह बड़ी बात है! मैं अकेला तो चूहा भी नहीं मार सकूँगा। सच, मैं इतना शहजोर नहीं। निपुण शिकारी भी नहीं!'

उसी समय लड़के ने फिर कहा—'दीदी, चलो!'

'अच्छा, चल, चल!' कहते हुए रजनी विपिन से बोली—'आप आइए! सच, जरूर!, उसने लड़के का हाथ पकड़ा और कहा—'आ, चल!' और तब आगे चलते हुए, उसने फिर मुस्कराकर विपिन से कहा—'आपका व्यर्थ ही समय लिया! आपको अकारण ही······।'

शीघ्रता से, विपिन ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'जी, नहीं! मुझे सुख मिला। अपनी होने वाली भाभी का परिचय मिला। एक अनुभव भी प्राप्त हुआ।'

रजनी हँसी और आगे बढ़ गयी। वह कुछ दूर जाकर ही, खेतों की आड़ में हो गयी। जब विपिन घूमता-फिरता आत्माराम के पास पहुँचा, तो उसे यह देखकर आश्चर्य हुआ कि जिस आत्मा के प्रति वह सब-कुछ जानने का दम्भ भरता था, मानो उसके विषय में अभी बहुत-कुछ समझना शेष था। आत्माराम पसीने और मिट्टी से लथपथ हुआ खेत खोदता जाता और आगे बढ़ता जाता। यह देखकर ही, विपिन ने समझा कि इस व्यक्ति को आसानी से समझना आसान नहीं है। यह आत्माराम दुर्गम है। अभेद्य है। रहस्य से पूर्ण है। इस प्रकार श्रद्धा और भक्ति-भावना से पूरित बनकर विपिन जब आत्माराम के निकट पहुँचा, तो उससे बोला—'आत्मा भाई, लो हटो, अब मुझे खोदने दो! कुछ परिश्रम अब मुझे भी करने दो।'

विपिन की बात सुनकर आत्माराम रुक गया। वह सीधा खड़ा होकर माथे पर आये पसीने पोंछकर, विपिन की ओर देखकर बोला—'यह तुम्हारा काम नहीं है! तुम्हारे अनभ्यासी और मुलायम हाथों का काम नहीं, विपिन बाबू! खेत खोदोगे तो दो मिनट में हाथों में छाले डाल लोगे!'

लेकिन विपिन इस बात से सहमत नहीं हुआ। उसने फावड़ा पकड़ लिया खुदाई करने लगा। फावड़ा चलाते और खेत खोदते समय उसका मन फिर रजनी की बात पर रुक गया। वह मन-ही-मन बोला— रजनी ने ठीक कहा, जो मैंने नहीं समझा, वह उसने समझ लिया। इस वकील बनने वाले अपने पति आत्माराम के लिए उसने ठीक ही समझ पाया है। निःसन्देह, मैंने नहीं ! अपने मन में इतना कहते हुए विपिन को लगा कि जैसे सचमुच, वह रजनी से हार गया। उसका दम्भ खण्ड-खण्ड हो गया। और उसे लगा कि रजनी जो बार-बार उसकी ओर देखकर मुस्करायी तो कदाचित् इसलिए कि मैं थोथा अभिमान साथ लिए था। मेरे विश्वास का उसके समक्ष कोई अर्थ नहीं था। रजनी ठोस थी, मैं पोला था। उसके भारीपन के सामने मेरा हल्का-पन नहीं ठहर सका !

इतनी देर में आत्माराम ने अपना पसीना सुखा लिया। हाथ-पैरों की मिट्टी झाड़कर उन्हें साफ कर लिया। तभी देखा कि विपिन ने फावड़ा छोड़ दिया। उसका साँस फूल गया। हाथों मे छाले पड़ गए। वह उन्हीं छालों को देखता हुआ और साँस लेता हुआ आत्माराम से बोला—'सचमुच ही, यह परिश्रम कठोर है ! काम जानवरों का है !' आदमी करता है ! मुझ जैसे के लिए तो दुष्कर है ! जो करते हैं— अभ्यासी हैं, यह उन्हीं का काम है। आश्चर्य है कि तुम्हें भी इसका अभ्यास है। अब समझा कि तुम गाँव में आकर घर पर नहीं बैठते। तुम मेहनत करते हो। यह मैंने आज समझा। देखा भी। रजनी से सुना भी !'

आत्माराम ने विपिन की बात सुनी, तो वह कुछ ईर्षित भाव में मुस्करा दिया। उसने कहा—'भाई, जानवर का काम आदमी करें, यह परम्परागत बात है ! जानवर भी आदमी का काम करता है और अब तो जानवर और आदमी का काम मशीन ने छीन लिया है। उसने आदमी और जानवर को बेकार करना आरम्भ कर दिया है।' वह बोला—

'अजीब समस्या है कि लोग जानवर को इतना हेय मानते हैं। और मेरा अपना मत यह है कि आदमी भी एक जानवर है। आदमी ने अपने मस्तिष्क का उपभोग किया, तो जानवर की श्रेणी से ऊपर उठ गया है। यह तो वही बात हुई कि जैसे श्रम को बुद्धि ने ठग लिया। बुद्धि और श्रम में एक बड़ा अन्तर आ गया!' उसने विपिन की ओर देखा और कहा—'भैया, देखते हो कि इतना परिश्रम करके भी आदमी भूखा है...पराश्रित है ...दास है! क्यों? किसलिए? इसीलिए न कि बुद्धि-बल का उपभोग करने वाले श्रम पर बलात्कार करते हैं...श्रम की हत्या करते हैं! जितने पैसे एक मजदूर दिन भर में उपार्जित करता है, उतने तो आप एक घण्टे में सिगरेट पर फूँक देते हैं!'

विपिन ने आर्त्त बनकर कहा—'बहुत कम है! सचमुच, कम!'

आत्माराम ने कहा—'कहीं-कहीं इसके भी आधे मिलते हैं।' वह बोला—'चलो, चलें। माँ प्रतीक्षा में होगी। वह खाना लिए बैठी होगी।'

उसी समय, रास्ते में चलते हुए विपिन ने कहा—'दो-दो और चार-चार आने में किस प्रकार काम चलता होगा! जाने कैसे एक कुटुम्ब का पोषण होता होगा!'

यह सुनकर, आत्माराम ने शून्य आकाश की ओर देखा। उसने उसी ओर देखते हुए कहा—'महाशय, पोषण तो इतना न मिलने पर भी होता है! आदमी कुछ दिन भूखा रहकर भी गुजार देता है। इसी में मर भी जाता है। तुमने तो सुना नहीं, परन्तु मैंने देखा और समझा है कि इन्सान घास खाकर, पेड़ की छाल से अपना अंग ढककर भी गुजर करता है।' वह विपिन की ओर देखकर बोला—'तुम जिस देश के वासी हो, यह तुम्हारी सीमा तक ही सीमित नहीं है। विशाल देश है। इसकी समस्याएं भी विशाल हैं। लेकिन इस इन्सान की जो प्रमुख समस्या है, वह रोटी और कपड़ा है। यही सबको उप-

लब्ध नहीं होता। सुगमता से नहीं। जिन्दगी किसी प्रकार जीवित रह जाये, यहाँ का आदमी इसको भी गनीमत मानता है।'

विपिन ने कहा—'यह बात दरिद्र और परतन्त्र देश की है। लगता है, यही सब सौगात है! दुर्भाग्य है, इस देश का!'

आत्माराम मौन रह गया। वह दूर, एक भागते हुए खरगोश की ओर देखने लगा। जो बहुत दूर जाकर उसकी आँखों से ओझल होगया था।

: ४ :

जंगल से आत्मा और और विपिन के घर पहुँचते ही, माँ ने कहा—'स्वामी जी आए हैं, आत्माराम! वह मन्दिर में भजन करने गए हैं।'

आत्माराम ने पूछा—'स्वामी जी कब आए माँ?'

माँ ने कहा—'तुम्हारे जाने के बाद ही।'

तभी आत्माराम ने विपिन से कहा—आइए, स्नान करलें। इस काम से भी निपट लें।'

किंतु विपिन ने स्नान की बात टालकर, आत्माराम की माँ से पूछा—'अम्माजी, ये स्वामी जी कौन हैं? क्या देर सें तुम्हारे परिवार में आते-जाते हैं?'

माँ ने कहा—'हाँ, बेटा! वे देर से आते हैं। स्वामी जी इस परिवार के गुरू हैं। वह संन्यासी हैं।'

'अच्छा, तो मैं भी उनके दर्शन करूंगा। अब तक तो मैंने किसी साधु-संन्यासी का सम्पर्क पाया नहीं, परन्तु अब तुम्हारे इन स्वामीजी के पास बैठूँगा।'

माँ बोली—'ये स्वामीजी सरल हैं, विद्वान हैं। तुमने जो और बहुत-से साधु देखे, तो ये उनके समान न लालची हैं, न प्रपंची ! साधारण भोजन करते हैं।'

विपिन ने कहा—'ठीक भी है ! साधु को चाटुकारी अथवा व्यसनी नहीं होना चाहिए। उसे त्यागी बनना चाहिए !'

माँ ने कहा—'हमारे देश में अब संन्यासी भी अच्छे नहीं रहे। दुर्व्यसनी बन गए !'

विपिन ने कहा—'अम्माजी, समाज में जो दुराचार और पापाचार का बोल-बाला है, सो उसका एक बड़ा भाग साधुओं से ही प्राप्त होता है ! साधु समाज को गलत दिशा बताते है ! पण्डित भी समाज की मूर्खता का दुपरुयोग करते हैं।

आत्माराम फिर वहाँ आया। उसने कहा—'अरे भाई ! स्नान कर ले !'

विपिन ने कहा—'खाना-स्नान तो रोज किया जाता है !' किन्तु तुम्हारी माँ से बात करने का अवसर क्या रोज मिलता है।'

आत्माराम हँस दिया—'तू यहीं रहा कर ! गाँव का जीवन व्यतीत कर !'

'सच, सचमुच ही, मुझे गाँव का जीवन प्यारा है। अच्छा लगता है। यहाँ शान्ति है। काँय-काँय नहीं है। हर मनुष्य एक ही डगर पर चलता हुआ दीख पड़ता है !'

आत्माराम ने माँ की ओर देखकर कहा'—'सुनती हो, माँ ! 'दूर के ढोल सुहाने' वाली कहावत को यह विपिन भी चरितार्थ करता है। शहर में रहता है न, तो इसे आज गाँव का जीवन प्यारा लगता है। परन्तु जब दो-चार मास इसे गाँव में रहना पड़ गया, तो तब, क्या यह शहर की ओर न दौड़ पड़ेगा ! भला यहाँ नगरों की तड़क-भड़क कहाँ ! सिनेमा कहाँ ! मिठाई और चाट-पकौड़ियों की सजी हुई दुकानें कहाँ ! सजे हुए स्त्री-पुरुष कहाँ ! साफ और शानदार सड़कें कहाँ...'!

लब्ध नहीं होता। सुगमता से नहीं। जिन्दगी किसी प्रकार जीवित रह जाये, यहाँ का आदमी इसको भी गनीमत मानता है।'

विपिन ने कहा—'यह बात दरिद्र और परतन्त्र देश की है। लगता है, यही सब सौगात है! दुर्भाग्य है, इस देश का!'

आत्माराम मौन रह गया। वह दूर, एक भागते हुए खरगोश की ओर देखने लगा। जो बहुत दूर जाकर उसकी आँखों से ओझल होगया था।

: ४ :

जंगल से आत्मा और और विपिन के घर पहुँचते ही, माँ ने कहा—'स्वामी जी आए हैं, आत्माराम! वह मन्दिर में भजन करने गए हैं।'

आत्माराम ने पूछा—'स्वामी जी कब आए माँ?'

माँ ने कहा—'तुम्हारे जाने के बाद ही।'

तभी आत्माराम ने विपिन से कहा—आइए, स्नान करलें। इस काम से भी निपट लें।'

किंतु विपिन ने स्नान की बात टालकर, आत्माराम की माँ से पूछा—'अम्माजी, ये स्वामी जी कौन हैं? क्या देर से तुम्हारे परिवार में आते-जाते हैं?'

माँ ने कहा—'हाँ, बेटा! वे देर से आते हैं। स्वामी जी इस परिवार के गुरू हैं। वह संन्यासी हैं।'

'अच्छा, तो मैं भी उनके दर्शन करूंगा। अब तक तो मैंने किसी साधु-संन्यासी का सम्पर्क पाया नहीं, परन्तु अब तुम्हारे इन स्वामीजी के पास बैठूंगा।'

माँ बोली—'ये स्वामीजी सरल हैं, विद्वान हैं। तुमने जो और बहुत-से साधु देखे, तो ये उनके समान न लालची हैं, न प्रपंची! साधारण भोजन करते हैं।'

विपिन ने कहा—'ठीक भी है! साधु को चाटुकारी अथवा व्यसनी नहीं होना चाहिए। उसे त्यागी बनना चाहिए!'

माँ ने कहा—'हमारे देश में अब संन्यासी भी अच्छे नहीं रहे। दुर्व्यसनी बन गए!'

विपिन ने कहा—'अम्माजी, समाज में जो दुराचार और पापाचार का बोल-बाला है, सो उसका एक बड़ा भाग साधुओं से ही प्राप्त होता है! साधु समाज को गलत दिशा बताते हैं! पण्डित भी समाज की मूर्खता का दुपरुयोग करते हैं।

आत्माराम फिर वहाँ आया। उसने कहा—'अरे भाई! स्नान कर ले!'

विपिन ने कहा—'खाना-स्नान तो रोज किया जाता है!' किन्तु तुम्हारी माँ से बात करने का अवसर क्या रोज मिलता है।'

आत्माराम हँस दिया—'तू यहीं रहा कर! गाँव का जीवन व्यतीत कर!'

'सच, सचमुच ही, मुझे गाँव का जीवन प्यारा है। अच्छा लगता है। यहाँ शान्ति है। काँय-काँय नहीं है। हर मनुष्य एक ही डगर पर चलता हुआ दीख पड़ता है!'

आत्माराम ने माँ की ओर देखकर कहा'—'सुनती हो, माँ! 'दूर के ढोल सुहाने' वाली कहावत को यह विपिन भी चरितार्थ करता है। शहर में रहता है न, तो इसे आज गाँव का जीवन प्यारा लगता है। परन्तु जब दो-चार मास इसे गाँव में रहना पड़ गया, तो तब, क्या यह शहर की ओर न दौड़ पड़ेगा! भला यहाँ नगरों की तड़क-भड़क कहाँ! सिनेमा कहाँ! मिठाई और चाट-पकौड़ियों की सजी हुई दुकानें कहाँ! सजे हुए स्त्री-पुरुष कहाँ! साफ और शानदार सड़कें कहाँ…'!

विपिन ने कहा—'यहाँ यह सब नहीं है, तभी तो शांति है। सुख है। यह सब होता, तो यहाँ भी पैसा अधिक व्यय होता। आदमी तब, पैसे के लिए अधिक चेष्टित और चिन्तित रहता!'

माँ ने कहा—'पर भैया, यहाँ भी जितना खर्च है, उतना भी लोगों को नहीं मिलता। यहाँ पर किसान का पेशा है न, तो किसान की किस्मत सदा ही खुले जंगल में रहती है। आसमान की कृपा पर निर्भर रहती है। पिछले वर्ष ही, पकी हुई और तैयार फसल पर ओले पड़ गये। किसानों के घरों में रुपये में एक आना भी अन्न नहीं आया। लोग भूखे मरने लगे।' वह बोली—'अजीब परेशानी है, इस किसान की। कभी आसमान बरसे नहीं। बरसे, तो इतना कि सभी कुछ बहा दे। कभी पाला डाल दे। कभी पकी और खड़ी फसल पर टिड्डियाँ ही उड़ा दे! सचमुच, किसान बड़ा दुर्भागी है! दुनिया का अन्नदाता बनकर भी स्वयं भूखा है। नंगा है! दुनिया के किसी रोजगार में आदमी बेईमानी करले, परन्तु किसान का काम तो नितान्त परिश्रम का है—उपकार का है। किसान के परिश्रम से आदमी भी पेट भरते हैं और जंगल के जीव जन्तु भी!'

विपिन ने कहा—'सचमुच! किसान महान् है। किसान देवता है। किसान अन्नदाता!'

आत्माराम विषाक्त भाव से हँस दिया—'और किसान भूखा है! किसान पीड़ित है!'

विपिन ने साँस भरकर कहा—'समय की बलिहारी है!'

माँ ने कहा—'गाँवों में कभी दूध-घी बहता था। मुँह-माँगा मिलता था। परन्तु अब तो छाछ की बूँद भी लोगों को नसीब नहीं होती। घी भी बनावटी मिलता है। ऐसे क्या आदमी जीवित रह सकता है! न, न, कदापि नहीं!'

विपिन ने कहा—हाँ, अम्मा! आदमी बनावटी हुआ, तो खाना-पीना भी बनावटी हो गया। इस देश में स्वच्छता का जैसे निशान उठ

गया। जवानी चली गयी। जिसे देखो, उसी पर बुढ़ापा आ गया। इस देश का इन्सान निःशक्त और दुर्बल बन गया। कायरता छा गयी। शौर्य और बल जैसे नष्ट हो गया। दोनों स्नान करने चले। जब वे स्नान करके कमरे में लौटे, तो स्वामीजी आ चुके। वे चौकी पर बैठे हैं। आत्माराम की माँ समीप बैठी है। स्वामीजी को देखते ही, आत्माराम ने उनके चरण छुए। विपिन ने हाथ जोड़कर प्रणाम किया। उसी समय आत्माराम ने विपिन का स्वामीजी को परिचय दिया।

माँ ने उठकर आत्माराम से कहा—'तुम स्वामीजी को भोजन कराओ। मेरे साथ आओ।'

आत्माराम माँ के साथ चल दिया। वह स्वामीजी के लिये भोजन ले आया। उस भोजन के थाल की ओर देखकर उन्होंने कहा—'तुम इतना सामान क्यों ले आये, आत्माराम! भला संन्यासी को यह कहाँ शोभता है।' कहते हुए उन्होंने खीर और सब्जियों की कटोरियाँ थाल से निकाल दीं।

आत्माराम ने कहा—'खीर तो खाइये, स्वामीजी!'

स्वामी जी ने कहा—'अच्छा, थोड़ी लूँगा।' और उन्होंने चम्मच से थोड़ी खीर थाल में निकाल ली।

आत्माराम ने कहा—'यह विपिन जो आया है, तो माँ ने भोजन में आज कुछ बढ़ा दिया है।'

स्वामी जी बोले—'हां, हां, आज तो विपिन मेहमान हैं। कल शैतान!' कहते हुए स्वामी जी ने हँस दिया। उसी समय उन्होंने विपिन की ओर देखा और कहा—'क्यों, बाबू! ठीक है न! मेहमानी का सवाल उठता है, तो बस, एक दिन ही रहता है। दूसरे दिन नहीं।'

विपिन ने कहा—'जी, आपने ठीक कहा।'

स्वामीजी फिर बोले—'मेहमान के समक्ष जो भोजन परोसा जाता है, वह दिखावटी होता है। उसके स्वागत में कभी-कभी अपनी

शक्ति से अधिक व्यय किया जाता है ।' उन्होंने कहा—'होना यह चाहिए कि नित्य का भोजन ही उस मेहमान या अभ्यागत को दिया जाय। और तुम्हारी माँ तो अब वृद्ध हैं, इतना सामान बनाकर उन्हें क्या कष्ट नहीं हुआ होगा ! सुबह से ही चूल्हा जला होगा !'

विपिन ने कहा—'गृहस्थों का यह प्रदर्शन इस बात का भी सूचक है कि हम मेहमान को धोखा देते हैं । अपने को गलत बताना चाहते हैं । उसका स्वागत अस्थाई रूप में करते हैं ।'

स्वामीजी ने कहा—'निःसन्देह ।'

भोजन कर चुकने पर स्वामीजी ने मुँह साफ कर लिया । आत्माराम और विपिन घर में गये । वे दोनों भी भोजन करने बैठ गये । उसी समय विपिन ने माँ से कहा—'स्वामीजी सरल हैं । श्रद्धा की वस्तु लगते हैं । वृद्ध हो गये हैं ।'

माँ ने कहा—'आत्माराम जो कुछ है, इन्हीं स्वामीजी की देन है । यह इन्हीं का प्रसाद ह ।'

विपिन ने हँसकर कहा—'स्वामीजी ने आत्माराम को भी सन्यासी बना दिया है ।'

यह सुनकर, माँ कुछ हँस दी और मुस्करा दी ।

विपिन नें फिर कहा—'अम्माजी, मैं आत्माराम के इस संन्यासी-पन से ऊब गया हूँ । देखता हूँ, यह न वकील रहेगा, न कोरा साधु । बीच में ही उलझा रहेगा ।'

माँ ने हँसकर कहा—'तो बात क्या है, एक बेटा अच्छा न उठा, तो दूसरा तो योग्य बनेगा । तू तो अपनी इस माँ को देख सकेगा । बोल, क्या तू भी मुझे रोटी न देगा ?'

'क्यों नहीं, माँ ! मैं तुम्हारा हूँ । आत्माराम का छोटा भाई हूँ ।'

माँ ने कहा—'और तुम आत्माराम को संन्यासी किस तरह समझते हो । जायदाद का सब पैसा तो इसने पढ़ाई में लगा दिया है । बस, तनिक बाबूजी ही तो बनने से दूर रहा है । सूट-बूट नहीं पहनता ।

तुम्हारी तरह अंग्रेजो बाल नहीं रखता, वैसे तो संसारी है। और अब इसका ब्याह हो जायगा। एक स्त्री का पति भी बन जायगा।'

किन्तु विपिन ने फिर कहा—'अम्माजी, मैं आत्माराम को संसारी कम और संन्यासी अधिक मानता हूँ। जैसे वैरागी! जो पैसा तुम पढ़ाई के लिए देती हो, वह भी खाया नहीं जाता। वह दूसरों को दिया जाता है, उससे दानी बनने का काम लिया जाता है।'

यह सुनकर माँ हँसी नहीं, वह गम्भीर बन गयी। उसके मुँह पर जैसे अभिमान की छाया दौड़ गयी। आत्माराम खा चुका था। वह फिर स्वामीजी के पास पहुँच गया था। किन्तु उसके पीछे विपिन ने माँ से जिस सत्य का उद्घोष किया, वह जहाँ करुण था, अपने-आप में श्रेष्ठ और इन्सानियत के पाठ का एक अमर वाक्य भी था।

उसी समय विपिन ने कहा—"बातों-बातों में बहुत खा गया! आज खाना भी अच्छा लगा। इस जीवन में जाने कौन-सा शुभ कर्म करने के बाद तुम्हारे हाथ का भोजन मिला!'

मां ने कहा—'अरे, तूनें खाया क्या! बहुत कम खाया!'

विपिन खड़ा हो गया। वह हँस दिया।

माँ ने अपने मन पर अटकी हुई बात को लेकर कहा—'तो आत्माराम मुझसे जो रुपया ले जाता है, उसका यों उपयोग करता है! दूसरों को देता है!'

बात सुनी, तो विपिन चौंक गया। उसे लगा कि मां से कहकर अच्छा नहीं किया। शायद आत्माराम के साथ न्याय नहीं। इसीलिए, जब उसने माँ को गम्भीर पाया, तो वह बात सुनते ही, तुरन्त बोला—'यह तो तुम्हारे लिए गर्व की बात है, माँ! आत्माराम जाने तुम्हारे और इस घर के किन भले संस्कारों से निर्मित हुआ है! वह पैसे का सही उपयोग करता है! वह समाज के व्यक्ति के लिए जिस शिक्षा को उपयोगी मानता है, तो उसके लिए सक्रिय भी बनता है। किसी गरीब विद्यार्थी को किताबें दिलाता है और किसी के भोजन का प्रबंध

अपने पैसों से कराता है ! भला क्या यह सरल काम है ? हरेक को सूझता है ? न, माँ ! यह तो इन्सान के आदर्श की बात है । आत्माराम अपना स्वयं का खर्च घटाकर ही तो ऐसा करता है। मैं यदि ऐसा नहीं कर पाता, तो इसके यह अर्थ कदापि नहीं कि आत्मा भाई भी अपने साथ अन्याय करता है। तुम आश्चर्य करोगी कि आत्माराम ने गत वर्ष के जाड़े केवल एक कुरते में निकाल दिये ! तुमने जो रुपया गरम कपड़े बनाने के लिए दिया, उससे एक लड़के का चार मास का भोजन-व्यय चला था !'

एकाएक माँ ने कहा—'हे परमात्मा !'

विपिन ने कहा—'आत्मा भाई मेरा पथ-प्रदर्शक है। इस जीवन का गुरु है !' कहते हुए विपिन वहाँ से चला गया। वह भी स्वामीजी के पास पहुँच गया। उसी समय, किसी काम से आत्माराम घर में आया। माँ ने उसे देखकर कहा—'आज तूने खाया क्या ! इतनी जल्दी उठ गया !'

आत्माराम ने कहा—'मैंने सुबह हलवा अधिक खा लिया था, माँ ! विपिन का हिस्सा भी बँटाया !'

किन्तु माँ ने फिर कहा—'देखती हूँ, तू आजकल दुबला भी हो गया है। जैसे चिन्ता करता है। मन में कुछ लिये रहता है।'

आत्माराम हँस दिया—'प्रत्येक माँ को ऐसा ही सूझता है। अपना बेटा दुर्बल ही लगता है।'

माँ ने आलोड़ के स्वर में कहा—'मैं झूठ नहीं कहती। तू जितने रुपये मुझसे लेता है, वह भी तो नहीं खाता। दूसरों पर खर्च करता है, मुझे अभी पता चला है।'

आत्माराम ने कहा—'विपिन ने कहा होगा ! इस शैतान ने यहाँ भी अपनी शैतानी दिखा दी ! माँ मैं ऐसा कुछ नहीं करता।'

माँ ने फिर अपूर्व ममतामयी वाणी में कहा—'तो मैं ऐसा करने के लिए रोकती भी तो नहीं। तू जरूर ऐसा कर। बस, इतना कहती हूँ,

अपने स्वास्थ्य का भी ध्यान रखाकर ! दान भी शक्ति के अनुसार दिया जाता है, बेटा !'

आत्माराम ने इतनी बात सुनी, तो उसके मुँह की हँसी उड़ गयी। उसके मुँह पर गम्भीरता छा गयी, उसी अवस्था में उसने कहा—'माँ, सचाई यह है, समाज के नियम के अनुसार हमें सभी कुछ बाँटकर लेना चाहिए। तुम्हारा यह पुत्र भी केवल तुम्हारा नहीं, समाज का है। देश का है। देश के प्रत्येक व्यक्ति को इस आत्माराम पर अधिकार है। इसी प्रकार पैसे की बात है, अन्न की बात है, वस्त्र की बात है। यहाँ जो कुछ भी निर्मित होता है, तो उसका उपभोग केवल किसी एक के लिए नहीं, सभी के लिये होता है। निर्माण के कार्य में भी सभी का उपयोग होता है ! देखती हो न, एक खेत से अन्न लेने के लिए कितने व्यक्ति लगते हैं, श्रम करते हैं !'

माँ ने कहा—'हाँ, रे ! मुझे इतना तो पता है। पर यह क्यों भूलता है कि इस दुनिया में अपना स्वार्थ ही, पहले सूझता है ! दीखता है !'

आत्माराम ने जैसे अप्रतिभ बनकर कहा—'इन्सान के इस नये दृष्टिकोण ने हमारा सभी-कुछ छीन लिया है। 'वसुधैव कुटम्बकम्' की परिपाटी को नष्ट कर दिया है। स्वार्थ ही सर्वोपरि बन गया है। मनुष्यों का एक विश्व बनकर भी, जैसे अनेक विश्वों में बँट गया है। जितने मनुष्य, उतनी ही उनकी दुनिया है।' कहते हुए आत्माराम का स्वर गिर गया। वह विषम और कठोर भी हो गया। उसी अवस्था में उसने कहा—'माँ, आज के संसार का यही पाप है ! मनुष्य ने इसी रोग में अपना संहार कर लिया है। अजीब बात है कि जब प्रत्येक व्यक्ति यह समझता है कि यहाँ उसका कुछ नहीं, अपना शरीर भी नहीं, तब भला, इस छोटे-से जीवन के लिए वह क्यों ऐसी होड़ लगाता है ! हत्याएँ करता है ! लूट करता है ! दम्भ और फरेब का निर्माण करता है !'

माँ ने साँस भरकर कहा—'बटा, इस दुनिया में यही होता है! ममता के साथ स्वार्थ का भी जन्म होता है!'

आत्माराम का स्वर कुण्ठित बन गया—'यही नारी की अवस्था है! वह भी अपने पेट की सन्तान को महत्व देती है। दूसरों को कंकड़-पत्थर मानती है।' कहते हुए आत्माराम फिर बाहर चला गया। उसी समय, पीछे से माँ ने आकर स्वामीजी से कहा—'स्वामीजी अब आत्माराम का विवाह हो रहा है। यह गृहस्थी बनने चला है।'

स्वामीजी ने प्रसन्न बनकर कहा—'अच्छा-अच्छा!'

आत्माराम ने कहा—'पर क्या यह अभी ठीक है, स्वामीजी! माँ नहीं मानती।'

स्वामीजी ने मुस्कराकर कहा–'बात दोनों की ठीक है, आत्माराम! विवाह भी आवश्यक है। तुम्हारी माँ अपना भार सौंपना चाहती है। अपना प्रतिनिधि चाहती है। तुम्हारी बहू के हाथों अपने इस घर को सौंप जाना चाहती है। और तुम हो, तुम शायद अभी गृहस्थ के उत्तरदायित्व की गुरुता को नहीं समझते। दिखता है, इसीसे, इस विवाह की परम्परा का महत्व भी जानने का प्रयत्न नहीं करते।' इतना कहते हुए स्वामीजी रुक गये। वे उस कमरे की सजी हुई वस्तुओं की ओर देखने लगे। उसी अवस्था में वे फिर बोले—'वैसे, नारी का मोह सभी को होता है। शायद तुमको भी होगा। कुछ व्यक्ति उपेक्षा भी रखते हैं, पर तुम नहीं! तुम इतने कठोर नहीं। तुम यदि उपेक्षा की बात ही स्वीकार करो, तो जीवन में एकांगी रहोगे। अविवेक से काम लोगे। क्योंकि नारी ही पुरुष की कसौटी है। नारी पुरुष का विकास भी करती है। इसलिये नारी उपेक्षणीय नहीं। वह माननीय है। नारी ममता और त्याग की साकार प्रतिमा है। अतएव, तुम भी जीवन के इस रंगमंच पर आओ। अपना कर्त्तव्य दिखाओ। समाज को आकर्षित करो। अपने अस्तित्व का निर्माण करो।'

माँ ने आतुर होकर कहा—'मैं आत्माराम को गृहस्थी देखकर निश्चिन्त बनना चाहती हूँ, स्वामी जी!'

स्वामीजी ने अपने मन की बात छोड़ दी। आत्माराम की माँ से सुनी बात की पुष्टि करने के अभिप्राय से ही, उन्होंने कहा—'हां, हां, क्यों नहीं! तुम आत्माराम का विवाह करो और बहू का मुँह देखो।' वह बोले—'पर मैं तुम्हारे आत्माराम से कह रहा हूँ कि यह विश्व वासना-पूरित जीवन का ही इच्छुक नहीं है। वह कर्म चाहता है। अनुभूति और त्याग की कामना करता है! यह विश्व इन्हीं अमर तत्वों पर टिका है।' तदन्तर ही स्वामीजी ने आत्माराम की माँ को लक्ष किया—'तुम अपने पुत्र को बाँधने की चेष्टा मत करो। इसे जीवन के प्रवाह में बहने दो। जीवन में तैरने दो...जीवन में डूबने दो!'

माँ ने अपनी अश्रुपूर्ण आँखों को पोंछकर कहा—'मैंने आत्माराम को आज तक नहीं बाँधा, स्वामीजी! सदा स्वतन्त्र रखा। घर की चिन्ताओं से भी मुक्त रखा।'

'हां, हां, तुम्हारा यही काम है, आत्मा की माँ!'

माँ ने कहा—'आप भी इसे आशीष दें कि यह निर्मल रहे, साफ रहे। मैंने तो इससे कह दिया है कि अपने पथ का स्वयं निर्माण करो। रास्ते की दूरी और कठिनाइयों को भी समझ-देख लो।'

स्वामीजी ने कहा—'पथिक जब अपनी राह पर चलता है, तो उसे पूछना भी पड़ता है। राहगीर ही रास्ता बता देते हैं। रास्ते की दूरी से भी सूचित कर देते हैं। यहाँ तो, जीवन में, हरेक पिता है, हरेक माँ है। सभी से कुछ-न-कुछ इन्सान पाता है। यों वह जिन्दगी का सफर तय कर लेता है।' इतना कहते हुए स्वामीजी ने आत्माराम को लक्ष किया—'आत्माराम सुबोध और शिक्षित है। यह अब अपना पथ स्वयं निर्मित करने को उद्यत है।' वह हँस दिये। उन्होंने तभी कुछ फासले पर बैठे और देर से मौन बने हुए विपिन

की ओर देखकर कहा—'ये विपिन बाबू अधिक दुनियादार हैं। समझदार भी कम नहीं। कहते हैं, मेरा मन भी संन्यासी बनने को करता है। भला कहो तो इनसे, भले आदमी, अभी तो जीवन के रास्ते पर आये हो, अब युवक बने हो, रास्ते के मोड़ पर आ सके हो! तो इतने में ही थक गये! जीवन से ऊब गये! न, भाई! जीवन से खेलो! जीवन को भोगो!' तदन्तर ही, उन्होंने कमरे के बाहर दूर दृष्टि ले जाते हुए कहा—'जीवन के भोग का अर्थ यह कदापि नहीं कि इसे वासना की सड़ाँध में डाल दो! न, न, यह जीवन इसलिए नहीं। यह इतना गन्दा भी नहीं। यह तो मुलायम है। फेन है। चाहे इसे फूँक से उड़ा दो, या मिटा दो। यह जीवन तो समझा जाता है। देखा जाता है। इसका निर्माण करने के लिए आदमी को कठोर साधना का व्रत ग्रहण करना पड़ता है। अनुष्ठान-जप इसीलिये तो हैं। इस जिन्दगी के मेले में जाने कौन आता है, कौन जाता है! सभी कुछ-न-कुछ पाते हैं, देते हैं। जो केवल लेते हैं, देते नहीं, वे भी निरर्थक हैं। न, यहाँ तो 'लो और दो' का सिद्धान्त ही मूर्त रूप में काम करता है। आदिकाल से यही माना जाता रहा है। जिस संन्यासी-जीवन की बात विपिन बाबू ने कही, उसमें भी साधु लेता है और देता है। अन्तर इतना ही तो है कि साधु गृहस्थ-जीवन के उत्तरदायित्व से छूट जाता है। परन्तु यदि वह अपना महत्व समझता है, तो उसका कार्य भी विशाल है। वृहत्तर जगत् के चरणों में अपने को विसर्जित करता है। जगत के कल्याण की कामना को छोड़ उसका और अर्थ नहीं रहता! परन्तु आज साधु-जीवन से भी इस भावना का लोप हो गया। वह अमर-तत्व तिरोहित हो गया कि जब साधु समाज का कल्याण करते, उसे जीवन देना चाहते। आज तो साधु का अर्थ केवल इतना है कि गृहस्थ के बोझ से दूर रहो और नाना प्रकार के सुस्वादु मिष्ठान्न चखते-खाते रहो। अबाध होकर जीवन के भोग भोगते रहो!'

विपिन ने कहा—'यह तो ठीक है ! आज यहीं है !'

स्वामीजी उठ खड़े हुए। वे चल दिये। माँ ने चरण छू लिये। विपिन ने प्रणाम किया। आत्माराम उनके साथ हो लिया। वह स्वामीजी के साथ घर से बाहर चला गया। माँ घर में चली गयी। उसी समय, जब विपिन अकेला रह गया, तो उसने अपने-आप कहा—'कदाचित् मैंने आज प्रथम बार एक साधु से सम्पर्क पाया। श्रद्धा के साथ प्रणाम किया। आत्माराम की माँ को भी उसके पुत्र के समान ही सम्बोधित करने लगा। जैसे यह मेरी ही, अपनी माँ है। इसमें वैसी ही ममता और प्यार है। वह बोला—'इस गाँव में आकर सभी अनोखा और अपूर्ण पाया।' जैसे किसी और जन्म के संस्कारों का इसी स्थल पर संयोग हो गया। वे सभी आपस में मिल गये। जाने किस प्रेरणा और शक्ति का मेरे मानस में भी संचार हुआ। और यह आत्माराम की माँ है, सचमुच ही, ममतामयी और प्रेरणामयी जननी ! आत्मा के समान जैसे सभी इसके बच्चे हैं। सभी अपने है। इसकी दृष्टि में कोई पराया नहीं है। निस्सन्देह, आत्माराम जो-कुछ है, अपनी माँ का ही प्रतिरूप—माँ का सच्चा प्रतिनिधि है।'

उसी समय रजनी के यहाँ से आदमी आया। उसने विपिन से शिकार पर चलने के लिए कहा।

विपिन ने कहा—'आत्मा बाबू को बुलाओ। उनसे कहो।'

आदमी ने कहा—'यह उन्होंने बताया है कि आप यहाँ हैं।

'पर उन्हें बुलाओ तो। उनसे शिकार की बात कहो।'

यह सुनकर आदमी फिर आत्माराम के पास गया। वह बाहर था। मुख्तार के कागजात देख रहा था। आत्माराम ने विपिन के पास आकर कहा—'जाते क्यों नहीं, जाओ ! वह सामने बक्स रखा है। उसमें बन्दूक है। कारतूस हैं। निकाल लो !'

विपिन ने कहा—'और तुम ?'

'मैं नहीं जाऊँगा। जानते हो, मैं न शिकार खाता हूँ, न

खेलता हूँ।

विपिन ने कपड़े पहन लिये। बन्दूक और कारतूस ले लिये। वह चल दिया।

आत्माराम ने कहा—'जल्दी लौटना ! तुम यहाँ शाम से पहले ही आ पहुँचना।'

विपिन ने कारतूसों को पैण्ट की जेबों में डाल लिया और बन्दूक को हाथ में लेकर बोला—'अच्छा, जल्दी आऊँगा।' वह चल दिया।

तभी रास्ते में चलते-चलते विपिन को एक बात का स्मरण हुआ, जिसके साथ ही, वह लजाया और खोया-सा एकवारगी शून्य में लीन हो गया। प्रातः जब रजनी से उसकी भेंट हुई और आत्माराम के लिए उसने रजनी से बात सुनी, तो तब, वह आत्मा से नहीं कह पाया ! इच्छा करके भी नहीं कह सका ; फलस्वरूप, बलात् उठ आई बात को भूलने के अभिप्राय से उसने बरबस कहा—'एक गोली से कितने निशाने होंगे, केवल एक। वह भी निशाने पर लगे तो ! मुझसे लग जाये, तो !'

लगता था, वह जाने कितना दीन और आतुर बन गया। उसी अवस्था में विपिनचन्द्र रास्ता पार करके रजनी के घर पहुँच गया।

: ५ :

सन्ध्या के समय जब विपिन देर तक भी शिकार से नहीं लौट पाया, तो आत्माराम अकेला ही, जंगल में घूमने निकल गया। वह गाँव के बाहर तालाब पर पहुँचा। जिसके चारों ओर पेड़ों का समूह खड़ा था। आत्माराम अभी तालाब पर जाकर खड़ा ही हुआ था कि हठात् पेड़ों के सूखे पत्ते जो जमीन पर पड़े थे, उनमें खरखराहट हुई।

आत्माराम ने पीछे की तरफ देखा तो रजनी ! जिसका लक्ष उसी के पास आना था। पास आते-आते रजनी ने हाँफते हुए कहा—'इतने तेज चले कि रुके नहीं ! किसी का बोल सुनते नहीं !' इतना कहते हुए उसने लम्बा साँस भरा और छोड़ दिया। उसी अवस्था में उसने आत्माराम की ओर फिर देखा।

आत्माराम ने कहा—'तुम हाँफ रही हो। जैसे भागकर आई हो ! आओ, बैठो। चलो, उधर बैठगे।' वह बोला—'अच्छा हुआ कि तुम आईं ! तुम आज मुझसे मिल गयीं ! एक दिन और था कि जब हम-तुम इसी तालाव पर, इसी पानी की लहरों को देख-देखकर, हँस-बोल सके थे ! इस तालाब के जल-तल पर चन्द्रमा की आभा पा सके थे ! उस समय मैं तुम्हें हँसा भी सका, कुछ कह भी सका। यद्यपि, मुझे बाद में अचरज भी हुआ कि मुझ सरीखा नीरस व्यक्ति भी तुम सरीखी यौवन-मयी सुन्दरी का मन बहला सका, हँसाने में समर्थ हो सका।' और उसने पूछा—'कहो, तुम्हारे पिताजी अभी शिकार से नहीं लौटे ? मैं विपिन के आने की प्रतीक्षा करता रहा।' यह कहते हुए आत्माराम तालाब की सीढ़ियों पर बैठ गया। वह कहने लगा—'नगर से चलने से पूर्व ही मुझे तुम्हारा पत्र मिल गया था। सच, उस पत्र को पढ़कर मैंने बड़ा सुख पाया। मुझे तभी लगा कि मेरे पास भी इच्छा है। रस है। तब मैंने जाने कैसी व्यग्रता के साथ सुम्हारा चिन्तन किया। मैंने चाहा कि तुम्हें तुरन्त पकड़ लूँ ! तुम्हारे पास पहुँच जाऊँ !'

उसी समय, आत्माराम की बात सुनने के साथ, रजनी की आँखों के सामने तालाब के पानी की उठती हुई लहरें हवा से खेलती हुई इठला रही थीं। कमल के फूल भी उसे मनोरम और भले लग रहे थे। रजनी घोटों पर मुँह रखे हुए जाने कैसी कल्पना में लीन हो गयी थी। वह उस क्षण अपनी सूक्ष्मतर हुई भावनाओं को लिये आत्माराम की बातों में डूब गयी थी, तभी आत्माराम ने फिर कहा—'तुमने विपिन से बात की ? यह बड़ा चंचल और हँसोड़ है। यह विपिन मेरा अपना ही

आत्मीय है । यह मेरे बहुत निकट है । मालूम होता है, अभी शिकार से नहीं आया । जब तुम आयीं, तो वह नहीं दिखाई दिया ?'

रजनी ने तालाब की ओर देखते हुए कह दिया—'जी नहीं !'

'तो जरूर, तुम्हारे पिता उसे कहीं दूर ले गये ! वह दोनों किसी बड़े शिकार की टोह में निकल गये !'

यह सुनकर भी रजनी ने कह दिया,—'हूँ ।'

आत्माराम ने हँसकर कहा—'पर तुम मौन कैसे बनी हो रजनी, ! तुम मुझे जाने कहाँ से आता देखकर यहाँ तक आई हो ! मुझे पकड़ लेने में भी समर्थ हुई हो !'

उसी समय रजनी के मन में आया कि कहे, मुझे विपिन का प्रसंग अच्छा नहीं लगता । मुझे यह पसन्द नहीं । लेकिन उसने एक बार आत्मा की ओर देखकर फिर तालाब की ओर मुँह कर लिया । उसने अपने-आप ही कहा—'पिता जी ने आज जरूर विपिन से विवाह का प्रश्न छेड़ा होगा । उन्होंने जरूर कहा होगा, कि विपिनबाबू, मैं तुम्हारे साथ अपनी रजनी का विवाह कर दूँगा । और विपिन ? वह क्या कहेगा ? वह पिता जी की बात का क्या उत्तर देगा ? इस स्थल पर आते ही, रजनी का मन जैसे कोहरे से ढक गया । उसकी आँखों में अँधेरा आ गया । उसे लगा कि जैसे तालाब के पानी की लहरों का समूह बरसात के मौसम में रेंगते हुए केंचुओं में परिणत हो गया । वह दृश्य डरावना और वीभत्स था । तभी रजनी ने अपनी आँखों को घोटों पर रख लिया और एकबारगी फूट-फूटकर रोना आरम्भ कर दिया ।

यह देखते ही, आत्माराम ने निरे आहत भाव में, स्नेह-पूरित बन रजनी के सिर पर हाथ रखा । वह बोला—'क्या बात है, रजनी ! तुम्हारे मन में क्या है ?'

रजनी ने उसी प्रकार रोते-रोते कहा—'तुम इस विपिन को क्यों साथ लाये ? हमारे घर क्यों लाये ? तुम सब-कुछ जानते हुए भी भूल गये और भोले बन गये कि पिताजी…'

'मैं सब-कुछ जानता हूँ, रजनी ! भोला नहीं हूँ ! मैं तुम्हारे पिता का लालच समझता हूँ।' आत्माराम ने कहा—'मैं इस शिकार के निमंत्रण की महत्ता भी समझता हूँ। लेकिन तुम भयभीत और आतुर क्यों बनी हो ? जो होना है, उसे होने दो। तुम अपने जीवन की इन आँखों को इस नाटक का दृश्य भी देखने दो। तुम समझो कि एक पिता जिस पुत्री का लालन-पालन अपने प्राणों की छाया करके करता है, वही अपने लालच के हेतु किस प्रकार उस सन्तान का उपयो ा कर सकता है। यह केवल तुम्हारे पिता का ही दोष नहीं है। आज समाज में ऐसे अधिकांश पिता हैं। पैसे के लिए आदमी बिक गया है। वह अपना विवेक खो चुका है !' इतना कहते हुए आत्माराम ने सामने दूर तालाब के पार देखा। वह धुँधले हो आये आन्तरिक्ष की ओर भी देखने लगा। उसी ओर दृष्टि किए हुए वह फिर बोला—'इस आत्मा में तुम्हारे प्रति जो चाहना है, ममता है, वह थोथी नहीं है। वह जीवन की विषय-वासनाओं पर भी आधारित नहीं। तुम तो मेरे मानस की मधुर और कल्पनातीत स्मृति बन चुकी हो ! नहीं जानता कि क्या रहस्य है, परन्तु मैं तो तुम्हारा स्मरण करके आनन्द पाता हूँ। इस लिए तुम मेरे लिए अनुपम हो ! तुम दूर रहो, तो तब भी मेरे पास हो। मेरा यह विश्वास अमिट है। यही ध्रुव सत्य ! और तुम ? तुम अपनी बात जानो और समझो।' इतना कहा और आत्माराम ने झटका-सा खाकर रजनी की ओर देखा। उसने जब रजनी की आँखों में सूनापन पाया तो आश्वत बनकर बोला—'चिन्ता मत करो ! धैर्य धारण रखो। रोओ मत। हँसो। जो कुछ सामने आता है, उसे देखो।'

रजनी ने इतना सुना तो वह खड़ी हो गयी। वह चलने के लिए उद्यत बन गयी।

आत्माराम ने पूछा—'क्या जाओगी ? कुछ और नहीं कहोगी ?' उसने कहा—'लगता है, मेरा कहना तुम्हें पसन्द नहीं आया। व्यवहारिक भी नहीं लगा। लेकिन रजनी देवी'—वह कहने लगा—'जो-कुछ

होना है, मैं उसे कैसे रोक लूँगा ? तुम पर अभी तुम्हारे पिता का अधिकार है। यदि पिता तुम्हारा विक्रय करना चाहते हैं, तो मैं उनके रास्ते में नही आऊँगा। स्वयं विपिन ही मेरे प्रति विद्रोह करे तो मैं उसका मन नही बदल सकूँगा ! मैं प्रतिरोध करना भी पसन्द नहीं करूँगा। विपिन मेरा मित्र है, मै उसे कैसे उपेक्षित कर दूँगा ! ना, कभी नहीं ! मैं तुम्हारे पिता से भी कुछ न कह पाऊँगा। बस, मै तो यह जानता हूँ कि मैंने तुम्हें प्यार किया, तो करता रहूँगा। तुम दूर जाओगी, तो तब भी याद कर सकूँगा। मैं अपने जीवन को इसी प्रकार संजोना पसन्द करूँगा, रजनीदेवी !'

रजनी ने व्याकुल दृष्टि से आत्माराम की ओर देखकर कहा—'मैं समझी कि तुम कोई उत्तरदायित्व लेने के लिये प्रस्तुत नहीं। तुम समाज से या मेरे पिता से यह भी कहने के लिए तैयार नहीं कि यह पाप है ! इन्सानियत का छल !'

एकाएक स्वर पर जोर देकर आत्माराम ने कहा—'नहीं, नहीं, मैं कुछ नहीं कहूँगा ! एक शब्द नहीं !'

रजनी ने आहत बनकर कहा—'तो इस रजनी का मरना देखना ! तुम भी इस पाप को अपने सिर लेना !'

आत्माराम ने सुना और जाने किस भाव से रजनी की ओर देखता रह गया।

रजनी ने कहा—'तुम कायर बन सकते हो, तो बनो; परन्तु मैं इस जीवन में जिसको अपना पति स्वीकार कर चुकी हूँ, उसके अतिरिक्त अन्य किसीकी कल्पना नहीं कर सकती। मैं मर जाऊँगी, जल जाऊँगी, परन्तु विपिन की सहधर्मिणी नहीं बन सकती ! तुमने जो-कुछ कहा, वह मैंने सुन लिया ! मेरे भाग्य में यही सुनना लिखा था।' रजनी ने कहा और उसने अपने पैरों को घर की ओर मोड़ दिया। वह चली गयी। आत्माराम वहीं बैठा रहा। वह उसी प्रकार बैठा हुआ जाती हुई रजनी को एकटक देखता रहा। रजनी ने अभी पेड़ों को पार किया

था कि सामनें से आते हुए विपिन ने पास आते ही पूछा—'आत्मा बाबू मिले ? वह कहाँ हैं ?'

रजनी ने हाथ के इशारे से संकेत कर दिया। उसने मुँह से कुछ नहीं कहा। विपिन उसी ओर बढ़ गया। उसके आगे जाते ही रजनी ने घर की ओर चलते-चलते ही अपने मन में कहा—हाय ! मेरा कैसा दुर्भाग्य है। मुझे कैसा अभिशाप मिला है कि पिता भी लालची मिला। आज मुझे पिता के द्वारा ही तिरस्कृत और अपमानित बनना पड़ रहा है। जरूर पिताजी ने इस विपिन से कहा होगा—इसके समक्ष मेरे विवाह का प्रश्न रखा होगा। जब विपिन ने सुना होगा तो क्या ेरे लिये और क्या आत्मा बाबू के लिये जाने क्या सोचा और समझा होगा ! निश्चय ही, इस विपिन ने मन में कहा होगा, इस रजनी के जीवन का मोल है पैसा ! चाँदी-सोनें के कुछ ठीकरे ! हां, इस रजनी का कोई ठोस धरातल नहीं···इसके जीवन का अर्थ नहीं······!

और जब उसे ध्यान आया कि विपिन मेरे सामने चलता हुआ आया, खड़ा हुआ और आत्मा बाबू को पूछकर फिर आगे बढ़ गया, तो निश्चय ही, उसे भरोसा हो गया कि पिताजी ने इससे कह-सुन लिया है। उन्होंने विपिन का मत भी पा लिया है। विपिन हमारे प्रति उपेक्षित और उदासीन बन गया है······!

यह सोचते ही, फिर रजनी के समक्ष अँधेरा छा गया। उसका मुँह सूख गया। कोई देखता तो निश्चय ही, वह उसे निरी जड़ बनी हुई, एक सूखी और पीली हुई डाल की तरह देख पाता। उसके पैर शीघ्रता के साथ घर की ओर उठ रहे थे। वह भारी बन गये। वह तब कठिनाई से उठने लगे। आगे बढ़ने में असमर्थ लगने लगे।

अपनी उस अर्द्ध-विक्षिप्त और पीड़ित अवस्था को लिये हुए ही, रजनी जैसे ही घर पहुँची तो सामने ही उसके पिता ने देखकर कहा—'कहाँ गयी थी, दीये जल गये बेटी ! जाओ, तुम्हारी माँ पूछ रही है।'

पिता की बात सुनने के साथ, रजनी ने अपने धड़कते हुये हृदय को

लिये जाने किस अप्रात्याशित आशंका के साथ पिता की ओर देखा। उसी प्रकार मौन बनी हुई उसने घर में प्रवेश किया।

लेकिन इसके विपरीत जब विपिन तालाब पर पहुँचा तो उसने देखा कि आत्माराम निश्चल भाव से तालाब की सीढ़ियों पर बैठा हुआ है। वह कमल के फूल देख रहा है। विपिन ने पास जाते ही पुकारा—'आत्मा भाई!'

आत्माराम जैसे चौंक गया। उसने विपिन को देखते ही कहा—'तुम आगये! शिकार खेल आये? क्या मारा?'

विपिन ने पास बैठकर कहा—'एक खरगोश!'

आत्माराम हँस दिया—'बस! मारा भी तो एक खरगोश!'

लेकिन विपिन ने शिकार के प्रसंग को छोड़ दिया। उसने कहा—'रजनी आई थी, वह लौटकर खिन्न और उन्मन बनी थी। क्या तुमने कुछ कह दिया था?'

बात सुन ली और आत्माराम ने अपना मत नहीं दिया। उसने अपना मुँह तालाब की ओर से नहीं हटाया।

विपिन ने अपनी बात पर फिर बल दिया—'जरूर, तुमने कुछ कह दिया!'

आत्माराम ने उसी प्रकार तालाब के फूलों को लक्ष करके कहा—'महाशय, यह नगर नहीं है, ग्राम है। तुम थोड़े-से मनुष्यों की बस्ती में बैठे हो। भला इस आत्मा को तुम इतना हीन क्यों माने लेते हो? मेरा कोई दोष नहीं है। रजनी आई, बैठी और चली गयी। लगता है जो बात उसे कहनी थी, वह नहीं कह गयी।'

विपिन ने कहा—'रजनी तुमसे प्रेम करती है। वह भी तुमसे ऐसा ही चाहती है। तुम्हारे दार्शनिक विचार नहीं। और तुम इन्हीं-में डूबते हो··· इन्हींमें अपना सब कुछ देखते हो।'

सुनकर आत्माराम जैसे और अधिक गम्भीर बन गया। वह करुण भी हो गया।

उसी समय विपिन सामने लगे एक झाड़ी के फूल की ओर बढ़ गया। वह उस फूल को तोड़कर सूँघता हुआ फिर आत्माराम के पास आकर खड़ा हो गया। उसी अवस्था में बोला—'आत्मा भाई, रजनी नारी है। कोमल है। भावनामयी है। उस पर इतना बोझ मत डालो। उसे असहनीय मत बनाओ। नारी को पाने के लिए उसी प्रकार बनना पड़ता है।'

आत्माराम ने बात सुनी और केवल 'हूँ' करके बैठा रह गया। जब वह घर चलने के अभिप्राय से उठा तो विपिन की ओर देखकर बोला—'रजनी अभी रोकर गयी है। वह जाने मन में क्या-कुछ लिये है!'

विपिन ने अपनी बात के लिये बल पाकर कहा—'यही तो! उसके मन की पीड़ा तुम्हें समझनी चाहिए! तुम उसके पति बनने चले हो। उस पर अधिकार रखते हो। वह जरूर किसी वेदना से भरी लौट गयी है।'

घर की ओर चलते हुए आत्माराम ने कहा—'मैं रजनी को मना लूँगा। मैं उसे समझा लूँगा। ऐसा आज ही थोड़े ही हुआ है। अनेक बार हुआ है। लेकिन मैं कभी भी रूठी हुई रजनी को मनाने में असफल नहीं हुआ।'

इतना पाकर, विपिन कुछ नहीं बोल सका। वह तब, चलता हुआ दूर आकाश में उड़ते हुए एक पक्षी को देखने लगा। जो कदाचित् उस सन्ध्या के आते-आते अपने घर की ओर लौटा जा रहा था। वह शीघ्रता से अपने परों में हवा भरता हुआ, दूर अँधेरे में जाकर लोप हो गया।

आत्माराम ने कहा—'तुम्हारा मत है कि नारी, रजनी सरीखी स्थिति की युवती, केवल प्रेम के बदले में प्रेम माँगती है, परन्तु मेरा यह मत नहीं, पुरुष के समान नारी वासनामयी भी नहीं। उसकी वासना तो जगाई जाती है। आग में घी डाला जाता है। सभी के

समान रजनी भी सम्मान माँगती है, अधिकार की माँग करती है। जब उसके सम्मान पर आँच आती है, तो तभी वह रोती है, तड़फड़ाती है।'

स्वभाव के विपरीत, उस क्षण विपिनचन्द्र गम्भीर था। वह उस सन्ध्या के समान ही जैसे गहरा हो गया था। जब आत्माराम ने अपनी बात कही, तो वह निश्छल तथा सरल भाव से बोला—'यह तो सत्य है। नारी भी अपने सम्मान तथा स्वत्व की रक्षा चाहती है। उसके स्वत्व पर चोट लगती है, तो वह रोती है।'

'और तुम यह भी देखते हो, मैंने अपने जीवन में कभी नारी की कल्पना नहीं की!' आत्माराम बोला—'किन्तु जब माँ के द्वारा मुझे विवाह करने की प्रेरणा मिली, रजनी की माँ और उसके पिता द्वारा रजनी को इस बात का प्रोत्साहन मिला कि वह मुझे अपना पति स्वीकार करे, तब जाने जीवन की किस अज्ञात घड़ी में मैंने इस रजनी को यह वचन दिया, मैंने उससे कहा कि मैं तुम्हें अपनी पत्नी मान सकता हूँ। और मैं यह जानता हूँ कि मुझमें इस प्रेरणा का विकास पैदा करने वाली दो नारियाँ हैं—मेरी माँ—रजनी की माँ!'

विपिन ने कहा—'तो इसमें आपत्ति क्या है! यह सम्बन्ध दोनों के लिये ही अच्छा है, रजनी को तुमसे अधिक श्रेष्ठ पति नहीं मिल सकता! और तुम्हारे लिये रजनी सरीखी भावनामयी कोमल पत्नी का ही मिलना आवश्यक है। तुम्हें ऐसी ही पत्नी का पति बनना शोभा देता है।'

इतना सुनकर आत्मराम मौन रह गया। वह विपिन के साथ अपने घर के द्वार पर भी पहुँच गया।

: ६ :

इस प्रकार रजनी की माँ को पता था कि जब से रजनी के विवाह की बात चली, तो तभी से, उसकी पुत्री आत्माराम के प्रति समर्पित हो गई थी। रजनी आत्माराम से प्रेम करने लगी। जब रजनी आत्माराम के पास से लौटकर घर पहुँची और माँ को उदास दिखाई दी, तो वह तुरन्त ही पुत्री के पास जाकर बोली—'क्या बात है, रजनी। उदास क्यों है ? अब कहाँ से आई है ?'

यह सुनते ही, रजनी ने अपनी आँखें माँ की ओर उठा दी। वह रो देने की स्थिति में भी हो आई।

माँ ने कहा—'आज आत्मा बाबू नहीं आये। वह जंगल में विपिन के साथ नहीं गये। बड़े शर्मीले हैं। गाँव में आकर भी न कभी आते हैं, न आने का नाम लेते हैं।'

यह सुनने के साथ ही, रजनी ने अपने मन में बात लिये-लिये ही, फिर माँ की ओर देखा। लेकिन माँ ने उसकी वह आँखें देखकर कहा—'घबराया नहीं करते, बेटी ! धीरज से काम लेते हैं। तू समझती है कि माँ नहीं जानती, अपनी बेटी का मर्म ! पर मैं तो सभी-कुछ समझती हूँ। तेरा मन पढ़ती हूँ।'

रजनी ने कहा—'माँ, यह उनकी (आत्माराम की) प्रतिष्ठा का प्रश्न है, जिसे पिताजी ने नहीं समझा। मुझे भय है कि पिताजी ने आज शिकार में जरूर ही विपिन से विवाह का उल्लेख किया होगा। पर विवाह करना तो दूर, मैं इसकी कल्पना से पूर्व ही, मर जाऊँगी। मैं जीवन में ऐसा वीभत्स अभिनय न कर पाऊँगी !'

माँ ने धीरज के स्वर में कहा—'नहीं, मेरी बच्ची ! जो तू चाहेगी, वही होगा। तेरे पिता को भी वही करना होगा।' यह कहते हुए रजनी की माँ उठी और बाहर के कमरे में ठाकुर के पास पहुँच गयी। उसने जाते ही कहा—'विपिन बाबू से क्या बात की ? क्या विवाह की बात की ?'

ठाकुर हुक्का पी रहा था। पत्नी का वह आकस्मिक प्रश्न सुनकर, वह क्षण भर कुछ नहीं बोल सका। हुक्के का घना-सा धुआँ छोड़कर, उसने पत्नी की ओर देखकर कहा—'सगाई दशहरे पर नहीं होगी, रजनी की माँ! अभी विवाह की जल्दी क्या है! बेटी अच्छे घर जाये, उसे सुख मिले, हमारी यही तो आकांक्षा है।' यह कहते हुए ठाकुर ने फिर हुक्के में दम मारा और कहा—'विपिन से कोई प्रश्न नहीं छिड़ा। आज नहीं कह पाया। मैं शिकार के पीछे चलते हुए उससे दूर हो गया।'

किन्तु पत्नी ने एकाएक रोषपूर्ण होकर कहा—'लेकिन मैं पूछती हूँ, आत्माराम में क्या दोष है? वह क्या गरीब घर का है? वह भी विपिन की बराबर पढ़ता है। गाँव का जमींदार है। तुम्हारी भी बातें हैं, जो न उठाई जाती हैं, न धरी जाती है। तुम्हें लड़की का विवाह क्या करना पड़ गया, अपने मनचीते काढ़ना सूझ गया। मैं बताये देती हूँ, रजनी अब आत्माराम की है। वह उसी के घर जायेगी। रजनी और कहीं नहीं विवाही जा सकेगी!'

पत्नी की बात सुनते-सुनते ठाकुर शान्त नहीं रह सका। वह एकमत की बात सुनकर, बलात् कुण्ठित बन गया। हुक्के की नली को छोड़ दिया। माथे में बल पड़ गये। उसने सरोष बनकर कहा—'तुम्हारा यह एकमत नहीं चलेगा, रजनी की माँ! मैंने अभी आत्माराम से नहीं कहा है। जो कुछ मैंने चाहा, इस घर में वही होगा। मेरी इच्छा के विरुद्ध कुछ नहीं हो सकेगा!'

पति की बात सुनते ही, रजनी की माँ तिलमिला गयी। वह छूटते ही बोली—'ठीक तो है, फिर तुम्हें ठाकुर कौन कहेगा! तुम्हारी इन ऊँची मूँछों का क्या मोल होगा!' यह कहते हुए उसका स्वर रुक गया। भरी आँखों के साथ उसका स्वर भी भारी बन गया।

भर्त्सना के भाव में ठाकुर ने फिर कहा—'तुम सदा भूल करती हो! जिद्द करती हो! परन्तु यह लड़की के विवाह का प्रश्न है, जो

दुष्कर है, आसान नहीं है ।'

पत्नी ने घर में जाते-जाते ठाकुर को सुनाकर कहा—'अच्छी बात है, तुम अपनी मनचीती करो। पर मैं बताये देती हूँ रजनी विपिन से विवाह नहीं करेगी। वह आत्मा को छोड़कर, किसी और घर में नहीं जा सकेगी! इतनी बात कही और ठकुरायन तेजी के साथ घर में चली गयी। ठाकुर जब फिर बैठक में अकेला रह गया, तो वह पहिले की तरह अब शान्त और स्थिर नहीं बैठा रहा। वह स्वयं व्याकुल बन गया। उसका मन अधीर हो गया। अन्यथा, वह बड़े आराम से शिकार की थकन मिटाने के हेतु हुक्के में दम मार रहा था। हुक्का भी कई घण्टे बाद पीने को मिला था। इसलिए, जब पत्नी घर में चली गयी और वह बेचैन तथा अस्थिर बन गया, तो उसने खिन्न बनकर कहा—'कम्बख्त !' ठाकुर कुर्सी छोड़कर खड़ा हो गया। वह कमरे में घूमने लगा। मन की उसी अवस्था को लिये वह घर में गया। उसने ऊँचे तथा कठोर स्वर में रजनी को पुकारा।

रजनी के सामने आते ही वह बोला—'क्या बात है, बेटी! तुम कोई बात लिये हो! बताओ, तुम अपने विवाह की बात लिये हो? क्या इसी कारण तुम खिन्न और उदास हो?' उसने कहा—'तुम भरोसा रखो, तुम्हारे लिये जो-कुछ भी होगा, ठीक होगा। न्याय-संगत होगा। तुम तो शिक्षित और सबोध हो, इस प्रकार रहते क्या अच्छी लगती हो।' यह कहते हुए ठाकुर ने रजनी के सिर पर हाथ रखा। वह बाहर की ओर जाता हुआ बोला—'तुम हँसती रहो। सदा प्रसन्न रहो, बेटी!' ठाकुर बाहर चला गया। वह फिर बैठक में जाकर बैठ गया। किन्तु रजनी उसी प्रकार खड़ी हुई, जैसे पत्थर बन गयी थी। उसी प्रकार अविचल हो, वह बाहर की ओर देखती हुई, अपने मन को आँखों से जीवन की गहराई में जैसे कुछ खोजने की चेष्टा करने लगी। रजनी की आँखें भरी थीं। कमरे में लैम्प जल रहा था। उसकी रोशनी धीमी थी। उसी ओर देखते हुए, रजनी को अपना अतीत याद

हो आया। जब कि वह चाँद की चाँदनी में भी अनेक बार आत्माराम के पास बैठने का सुयोग पा सकी। उस अवस्था में वह एक अपूर्व सुख का अनुभव कर सकी। इस प्रकार रजनी अपने उन बीते हुए दिनों में खो गई। उन्हीं दिनों की स्मृति में लीन हुई वह आत्माराम को देखती थी, फिर देखती थी। जब देर बाद उसने साँस भरी और अपने वर्तमान पर आ टिकी, तो उसी प्रकार वह लैम्प की ओर देखती हुई बोली—'मैं आत्मा बाबू को नहीं छोड़ सकूँगी। ऐसा न हुआ, तो मैं अपने इस जीवन को त्याग दूँगी।' उसी समय बाहर विपिन का स्वर सुनाई दिया।

माँ ने रजनी के पास आकर कहा—''बिटिया, देख तो कौन है। शायद विपिन बाबू हैं। जा, उन्हें बैठने को कह दे। तेरे पिताजी बाहर चले गये हैं, बता दे कि अभी आते होंगे।'

रजनी ने उसी अवरुद्ध अवस्था में माँ की ओर देखा। माँ से कुछ नहीं कहा। वह बाहर के बैठकखाने में गयी। विपिन के सामने जा खड़ी हुई। विपिन को देखते ही, वह नाटकीय ढंग से बोली—'आइये, विपिन बाबू! बैठिये! खड़े कैसे रह गये! पिताजी अभी बाहर गये हैं। आने वाले हैं।'

विपिन ने प्रश्न किया—'यहाँ आत्मा बाबू नहीं आये?'

रजनी ने कह दिया 'जी, नहीं!'

विपिन बोला—'मैं यह समझता था, वह यहाँ होगा। उसने कहा था, मैं खेत देखने जा रहा हूँ। मैंने सोचा, शायद लौटकर यहाँ आये।'

इतना सुनकर, रजनी ने तनिक मुस्करा दिया। उसने विपिन की ओर देखकर कहा—'जब उन्होंने खेत की बात कही, तो वह वहीं गये होंगे। वह यहाँ नहीं आयेंगे।'

विपिन जैसे लजा गया। उसने कहा—'तो मैं जाऊँगा। मैं घर पहुँचूँगा।'

'आप बैठिये। आज के शिकार की बात बताइये।' रजनी ने जैसे आग्रहपूर्ण स्वर में कहा।

विपिन बैठ गया। तभी उसने पूछा—'अच्छा, यह बताइये, शाम को कैसे खिन्न थीं ? मैं इतना तो जानता हूँ कि आत्मा भाई न लड़ते हैं, न विवाद करते हैं। वह अपनी ओर से कुछ कह पाता। फिर देवी जी कैसे कुण्ठित हुईं ! या कोई भूल मुझसे हुई ?' वह बोला—'देखिये, मैं तो भूलों का घर हूँ। परन्तु यह भी अजीब लड़कपन है मुझमें कि इधर कसूर करता हूँ, तो उधर क्षमा भी माँग लेता हूँ। सो, देवीजी, कोई भूल हो मेरी, तो मुझे क्षमा कीजिये।'

रजनी ने जैसे चंचल बनकर कहा—'न, न, ऐसा कुछ नही, विपिन बाबू ! आपसे कैसे नाराजी ! आप तो मेहमान हैं। मैं वहाँ गयी, कुछ देर बैठी और लौट आई।'

विपिन ने हँसकर कहा—'नहीं, कुछ जरूर ! पूजा करते-करते कहीं पुजारी से भूल हुई, तो देवी रूठ गयीं ! लेकिन देवी को यह तो देखना था कि पुजारी कितना सीधा है, सात्विक है और अपनी देवी का एकान्त भक्त है। तुम्हारा पुजारी घण्टे-घड़ियाल का नाद नहीं करता। वह बस, देवी को देखता है और हर्षता है। वह तुम्हारी सलोनी सूरत को अपने मन-मन्दिर में बैठाकर पूजता है।'

'विपिन बाबू......'

'हाँ, रजनी देवी ! आत्मा भाई ऐसा ही पुजारी है। वह तुम्हारी इसी प्रकार पूजा करता है।'

रजनी ने फिर विह्वल और आतुर बनकर कहा—'विपिन बाबू, पूजा तो मुझे करनी है। तुम्हारे भाई के चरणों में मुझे स्वयं ही श्रद्धा और आँसुओं के उपहार अर्पित करने हे। वह मुझसे महान् हैं। वह मुझसे बड़े हैं। वह चाहें तो मुझसे अधिक सुन्दर और चतुर नारी प्राप्त कर सकते हैं। किन्तु मुझे उनसे अधिक श्रेष्ठ और पवित्र पति नहीं मिल सकता। इस जीवन में प्राप्त नहीं हो सकता।'

'मैं यह मानता हूँ, रजनी देवी ! तुम्हारा अनुमान ठीक है। मैं स्वीकार करता हूँ।' विपिन ने इतना कहा और उसी समय एक तरफ रखा हुआ हारमोनियम बाजा देख लिया। उसने कहा—'इसे कौन बजाता है ? तुम ?'

रजनी ने कहा—'जी, घर में रखा था। एक दिन पिताजी ने यहाँ मँगा लिया था। वैसे यह कभी मेरे लिये आया था। सो, सीख नहीं पाया। भली भाँति आज तक नहीं आया।'

लेकिन विपिन ने बाजा उठा लिया। वह उसे रजनी के समक्ष रखकर बोला—'कुछ सुनाओ। जरूर सुनाओ !'

विपिन के उस अनुरोध को देख, रजनी चंचल बन गयी। उसने फिर कहा—'जी, मैं नहीं जानती। सच, अच्छी तरह नहीं।'

किन्तु विपिन ने फिर याचनापूर्ण स्वर में कहा—'देखिये, आप नहीं सुनाती हैं ! जाने कैसी हमारी भाभी हैं !'

रजनी हँस पड़ी। वह मुग्ध भाव से विपिन की ओर देखने लगी। वह जिस प्रकार 'आप,' कहकर उसे सम्बोधित कर रहा था और साथ ही, विनीत बना था, उससे सचमुच ही, उसका मानस डोल गया। निदान, उसने बाजा खोल लिया, सकुचाते हुए, एक गीत का आधा भाग सुनाकर उसने कहा—'जी, बस !'

विपिन ने कहा—'निस्संदेह, आप शरमाती हैं। वैसे, आप अच्छा गा सकती हैं। स्वर मधुर है।'

रजनी ने हँसकर कहा—'बस, मैं कहती थी कि आप हँसी करेंगे। मुझे उल्लू बनायेंगे। सो, बनाने लगे। आप सुनाइये। कुछ गाइये।'

विपिन ने बिना आपत्ति किये बाजा अपनी ओर सरका लिया। वह गाने लगा। जैसे ही वह गीत के अन्त पर आया, तो बाजा बन्द कर रजनी की ओर देखने लगा। दिखता था कि रजनी सुने हुए गीत से अत्यधिक प्रभावित हुई। वह उस गीत की भावना के अन्त में डूब गयी। जैसे उसमें समाहृत हो गयी। उसे सुख मिला। एक

अनिवर्चनीय आनन्द की कल्पना से उसका मानस पुलकित तथा रोमांचित हो उठा। उसी समय उसने साँस भरकर कहा—'बहुत सुन्दर ! सच, आप बहुत अच्छा गाते हैं, विपिन बाबू !'

विपिन ने अपनी भावना भरी आँखों से रजनी की ओर देखा। वह चलने के लिए उद्यत होता हुआ बोला—'अब चलूँगा। आत्माराम घर पहुँच गया होगा। वह मेरी प्रतीक्षा में होगा।' वह चल दिया, चला गया।

किन्तु रजनी उसी प्रकार बैठी थी। वह विपिन द्वारा सुने गीत की भावनापूर्ण आत्मा के मन:लोक में घूमती-फिरती एक ऐसे जीवन की कल्पना में लग गयी कि जहाँ पर वह अपने प्रेमी के साथ रहती थी। वह उस अवस्था में ही, जीवन बिताती थी। तभी उसने द्वार पर पिता की ओर देखा। मानो उसी प्रकार सुषुप्त हुए उसने बरबस कहा—'मैं भी अपने आत्मा बाबू के जीवन में मिल गयी हूँ···उनकी बन गई हूँ·····।'

रजनी का वह स्वर पिता के कानों में पड़ गया। सुनते ही, उन्हें फिर क्रोध आ गया। तभी चीखकर कहा—'निर्लज्ज कहीं की ! बाप के सामने भी प्रलाप करती है······पगली बन गयी है, तू !'

किन्तु रजनी तब पिता की बात सुनने से पूर्व ही, वहाँ से उठ गयी। वह अन्दर घर में गयी और अपने कमरे में जाकर, कटे धड़ की तरह, पलंग पर गिर गयी। वह फूट-फूटकर रोने लगी। नि:सन्देह, रजनी उस समय अत्यधिक पीड़ित थी, अधीर थी ! उस अवस्था में ही, वह आत्माराम की कल्पना में लीन बनकर, एकान्त और एक-मन से, अपने हृदय के परमेश्वर की आराधना में लग गयी।

: ७ :

जब विपिन रजनी के घर से लौटा, तो उसे यह मालूम हुआ कि आत्माराम उसके पीछे घर आ चुका और फिर कहीं चला गया। कुछ देर बाद, जब वह वापिस लौटा, तो उसे देखते ही, विपिन ने कहा—'तुम बहुत देर में आये, आत्माराम !'

आत्माराम ने विपिन की बात सुनी, तो उसकी ओर जिज्ञासात्मक ढंग से देखा। तदन्तर ही उसने कहा—'हाँ, मुझे देर हो गयी। आओ, भोजन कर लें। माँ के पास चलें।'

घर में जाकर जब दोनों भोजन के लिए बैठे, तो आत्माराम की माँ विपिन से बातें करने लगी। आत्माराम मौन था। वह भोजन कर रहा था। वह अपने-आप ही किसी और बात पर टिका था। वह चाहता था कि जब विपिन रजनी के यहाँ गया, तो क्यों मुझसे छिपा रहा है। यह अभी तक क्यों नहीं कह पाया है। उसी समय उसे अनुभव हुआ कि यह व्यक्ति सचमुच ही रहस्य से भरा है ! जटिल है ! कठोर है। वह मन में बोला कि जब आज तक इस विपिन ने अपनी किसी बात को गुप्त नहीं रखा, ऐसा स्वभाव भी यह नहीं पा सका, तो अब एकाएक ही इतना बदलकर यह विपिन जैसे अपने जीवन का नया अध्याय आरम्भ कर रहा है। आदमी बदलता है। परिस्थितियों के साँचे में ढलता है। आत्माराम कहने लगा, विपिन रजनी के यहाँ गया, वहाँ बैठा। हारमोनियम पर गाना गाया। इतना बड़ा काम और इतना समय उस घर व्यतीत करके भी उसको गुप्त रखना चाहता है, उस पर पर्दा डालना चाहता है, मुझसे छिपाना पसन्द करता है—मूर्ख ! आत्माराम अपने-आप कह रहा था कि इतना सब विपिन के पेट में किस प्रकार समा गया ! यह तो अपने स्वभाव के प्रतिकूल बन गया। भला क्यों ? किसलिए ? क्या रजनी के लिए ? और रजनी इतनी दुष्कर है, अप्राप्य और अकल्पित है कि यह विपिन मुझसे भी छुपाये ! वर्षों के सम्बन्ध को एक ही पल में भूल जाये ! विश्वास खो दे !

इसलिए स्पष्ट बात यह थी कि आत्माराम को विपिन का अविश्वासी, सन्दिग्ध और मित्र-द्रोही बनना कदापि पसन्द नहीं था। रजनी के लिए इतना तक हो, यह विषय उसे और भी अटपटा तथा घृणित लगा। वह विपिन के लिए रजनी को भूलना अथवा त्याग करना अधिक महत्व-पूर्ण नहीं मानता ! वह देर से चले आये नाते को इतनी जल्दी और आधारहीन बात पर तोड़ना पसन्द नहीं करता। इसीलिए उसका मन जैसे जहरीले धुएं में घुट रहा था। वह खण्ड-खण्ड हुआ जा रहा था। वह विपिन के प्रति पाई हुई अपनत्वता तथा आत्मीयता को छोड़ देने के लिए कदापि तत्पर नहीं था। उसी समय माँ ने आत्माराम को टंकोरा। उसने कहा—'बेटा, क्या है ! विपिन खा रहा है और तू अपने सामने वैसे ही खाना लिए बैठा है ! जैसे चुग्गा चुन रहा है··· ··· !'

कठिनाई से आत्माराम ने कहा—'माँ मुझे भूख नहीं है।' और वह तुरन्त ही थाली से खड़ा हो गया। उसने हाथ धो लिए, मुँह साफ कर लिया।

इतना देखकर माँ ने आश्चर्य किया। विपिन को भी विस्मय हुआ। वह भोजन करके सीधा आत्माराम के पास पहुँचा। उसके पीछे माँ ने जाकर कहा—'बेटा, तबियत तो ठीक है ?'

'हाँ, तबीयत तो ठीक है, माँ !' माँ की बात का उत्तर देकर आत्माराम बोला—'मैं कल बाहर जाऊँगा। शायद स्वामीजी के पास जाऊँगा।'

'स्वामीजी के पास जायेगा !' चकित बनकर माँ ने कहा—'दशहरे पर तेरी सगाई है। मैंने कह दिया है।'

सगाई की बातें सुनते ही, आत्माराम उठकर बैठ गया; वह माँ की ओर देखता हुआ बोला, 'नहीं, माँ ! मुझे कहीं और भी जाना है। एक विशेष काम है। वह काम सगाई से भी बड़ा है।'

उस समय दीखता था कि माँ को आत्माराम की बात से सन्तोष नहीं हुआ। उसने अपनी आँखों में ममत्व भरकर आत्मा के सिर पर

हाथ रखा । उस अवस्था में ही, उसने कहा—'तुम मेरी भी मानो, आत्माराम ! गृहस्थ का दायित्व भी कम न समझो । तुम इस ओर भी देखो ।'

आत्मा ने कहा—'मैं शीघ्र लौट आऊँगा, माँ । दशहरे से पहले ही आऊँगा । विपिन रहेगा ।'

अपने विषय की बात सुनकर विपिन बोला—'मैं अकेला नहीं रहूँगा । मैं भी चला जाऊँगा ।'

'नही विपिन ! माँ तो है । मैं एक-दो दिन में ही आ जाऊँगा ।'

माँ ने कहा—'हाँ, विपिन ! तुझे रहना ही पड़ेगा । आत्मा की जगह तू ही मेरा मन बहलाता रहेगा ।' इतना कहने के बाद ही माँ घर में चली गयी । वहाँ जाकर वह अपने पुत्र के मन की स्थिति पर टिक गयी । उसी को लक्ष कर, वह अपने-आप बोली—'मै जानती हूँ, मेरा आत्मा भी विवाह चाहता है । सभी के समान यह भी साथी चाहता है ।' यह कहते वह प्रसन्न और गद्‌गद हुई-सी अपने कामों में लग गयी । वह आत्माराम की माँ उस क्षण ऐसी लग रही थी कि जैसे वही एक अनोखी और अनुपम माँ थी, जो अपने सभी अरमान और अभिलाषाएँ, चित्र की भाँति उतारती हुई आत्माराम पर देखती थी । अपने पुत्र को अनोखा मानती थी । उस पुत्र के हृदय में झाँकती और उसका पूर्ण रूप से दर्शन करती थी ।

किन्तु उसी समय, बाहर के कमरे में, अपने विस्तर पर पड़े हुए आत्माराम ने विपिन से कहा—'मै कल सन्ध्या तक या परसों तक लौट आऊँगा । तुम्हें यहाँ असुविधा नहीं होगी । बन्दूक है ही, चाहो तो जंगल में जाना और शिकार खेल आना ।'

विपिन ने कहा—'मैं दो दिन तुम्हारी प्रतीक्षा कर सकूँगा । यदि न आये, तो शहर लौट जाऊंगा ।'

'अच्छा, अच्छा ! 'आत्माराम ने क्षणेक हँसकर कहा ।

इसके बाद ही विपिन सो गया । वह जल्दी ही खुर्राटे भरने लगा ।

किन्तु आत्माराम की आँखों में नींद नहीं थी, वह जाग रहा था। वह नहीं सो सका। उसके मस्तिष्क में अजीब प्रकार का भूचाल उठ आया। वह उसी में उड़ा जा रहा था। जैसे इच्छा न रहते भी वह एक घिनौनी और अस्प्रश्य अवस्था का दास बन रहा था। निदान, जब उसे देर तक नींद नहीं आई तो वह बिस्तर से उठ खड़ा हुआ। कमरे में घूमने लगा। लगता यह था कि उसके मस्तिष्क में जिस प्रकार के विचारों का द्वन्द्व उठ आया, वह उससे उत्तरोत्तर जकड़ता गया। एकाएक छूट नहीं पाया। चूँकि वह भावनावादी था, इसलिए तनिक से व्याघात को पाकर भी उसका अस्थिर बनना स्वभाविक था।

और उस समय भी आत्माराम के मन में था कि आज विपिन भी बदल गया। नारी का रूप और यौवन इसे भी आर्कषित करने में समर्थ बन गया। यथार्थ में नारी कितनी बलवान है, उसका कितना बड़ा आकर्षण है, यह उसने विश्व के साहित्य से अच्छी तरह पाया। देश के इतिहास से भी पाया। ऋषि विश्वामित्र का तप, ज्ञान जिस मेनका नाम की अप्सरा ने अपहरण किया, वह उस समय, उसके मस्तिष्क में उतर आया, किन्तु उसका साथी विपिन एकाएक ही इतना अविवेकी और अदूरदर्शी बन सकेगा, कदाचित् इतना आत्माराम की कल्पना में नहीं आ सका! रजनी के लिए विपिन बदल गया, आत्माराम को उसका यह कर्म ओछा और हीन लगा। वह मन में कह रहा था, मैं रजनी पर अधिकार नहीं रखता। ऐसा दम्भ मुझे रुचिकर भी नहीं लगता। परन्तु विपिन ने ऐसा छिपाव किया······दुराव किया, निश्चय ही, यह तो विपिन के जीवन का गुरुतर अपराध बन गया!

रात उतर रही थी। प्रातः की अरुणिमा दिखायी देने लगी थी। तभी आत्माराम घर में गया। उसकी माँ जाग चुकी थी। वह स्नान करके, चौकी पर बैठी भागवत पढ़ने लगी थी। पास जाकर आत्माराम उसके पास बैठ गया। उसने अपना सिर माँ की गोद में रख दिया और कहा—'माँ!'

'आत्मा ! मेरा बेटा ।' हठात् माँ का हाथ उठा और वह आत्माराम के सिर पर चला गया । माँ ने आत्मा का सिर सहलाया और कहा—'दिखता है, आज तू सोया नहीं ! जागता रहा ! जाने क्या-कुछ मन में लिये रहा !'

आत्माराम ने कहा—'माँ, तुम इस सगाई को रोक दो । अभी टाल दो । चाहो तो तुम मेरा विवाह कहीं अन्यत्र कर दो ।'

यह सुनते ही माँ ने कहा—'आज यह क्या कहता है आत्माराम ! इस सगाई को तो मैंने तेरी इच्छा पर ही लिया । स्वीकार किया । रजनी को तेरे अनुरूप पाकर ही मैंने कह दिया । मैं जानती हूँ कि रजनी इस घर में आयेगी तो वह तेरे लिये सुख और सन्तोष का सहारा लेकर आयेगी । मै आज तक इसी आशा से टिकी हूँ । पढ़ी-लिखी और समझदार बहू को पाने का लोभ मैं भी नही टाल सकी, आत्माराम !'

आत्माराम ने कहा—'तुम्हारे इस आत्मा को बस माँ चाहिए । माँ का उपदेश चाहिए । इसे जीवन भर तुम्हारा स्नेह चाहिए, माँ !'

'हां, हां, मेरे बेटे ! तुम्हें माँ भी चाहिए, बहू भी चाहिए ! माँ बुढ़िया हुई । अब यहाँ से जाने योग्य हुई । कभी भी चली जायगी । सो, अब तुम्हें बहू चाहिए । वह माँ की तरह ममता लिए तुम्हें भोजन कराये । दासी की तरह सेवा करे, पत्नी की तरह थके हुए तुम्हारे मन को अपने प्रेममय, अनुराग भरे शब्दों से नया जीवन प्रदान करे । हाँ, अब तुम्हें यही सब चाहिए । आत्माराम रजनी से यही उपलब्ध होगा । वह बड़ी सुशील है । भली लड़की है ।'

आत्माराम ने कहा—'और यदि उसका पिता सहमत न हुआ तो ?'

यह सुनकर माँ ने छूटते ही कहा'—तो तुम्हारे लिए लड़कियाँ बहुत हैं । मुझे इसकी चिन्ता नहीं है । इस द्वार पर लड़की वाले नित्य आते हैं । अनुनय-विनय करते हैं ।'

'अरी, माँ !' आत्माराम ने अपनी भावना को आँखों में उतार लिया ।

वह माँ की ओर देखकर चल दिया। जाते जाते उसने कहा—'तुम भागवत पढ़ो माँ! भगवान् का चिन्तन करो।'

माँ ने कहा--'मेरा चिन्तन तो तुम हो, आत्माराम—तुम! मेरी तरह कोई भी माँ अपने पुत्र को देखती है और हर्षती है। आत्मा, कोई भी माँ नित-नित ईश्वर की पूजा करती है और चाहती है कि उसका पुत्र महान् हो! वह उसकी कोख से पैदा होकर मिट्टी या कंकड़-पत्थर न हो। वह हीरा हो, वह मोती और मानिक हो। आओ, तुम और बैठो। तुम मेरी बात सुनो। अपने मन की बात कहो, आत्माराम!'

आत्माराम फिर माँ के निकट हुआ और बैठ गया।

माँ ने कहा—'आत्मा, अब तुम सयाने हुए! जिस पिता की तुम सम्पत्ति हो, उनकी इच्छा बड़ी थी। इसीलिए मैंने तुम्हारे पिता की सम्पत्ति तुमको बड़े यत्न से पाला और संजोया है। मैंने तुम्हारे लिए कोई भी अनुष्ठान नहीं छोड़ा। तुम्हें सम्भालकर पाला। मैं जब-जब तुम्हें देखती हूँ, तो तुम्हारे पिता को याद कर लेती हूँ। मैं मन में सोचती हूँ, तेरे लिए उन्होंने जो-कुछ कहा, वह मैंने कुछ तो पूरा किया। मैंने अपने उत्तरदायित्व को निभाने का भरसक यत्न किया।' वह बोली—'आज भी तुम्हारे पिता की आत्मा दूर लोक में बैठी हुई जैसे मुझे आदेश देती है। वह कहती है, यह मेरा आत्मा आदमी बने···महान् बने! सो, अब तुम समझदार हो, आत्माराम! तुम देश और समाज की अवस्था भी देखते हो। उसकी पीड़ा समझते हो। तुम इन्सान की सेवा करने के लिये मेरी कोख से उत्पन्न हुए हो। तुम जीवन में अपने जिस पिता को नहीं देख पाये, उन्हीं का प्रतिनिधिरूप, यह तुम्हारी माँ, नित्य ही अपने प्रभु से तुम्हारे कल्याण की कामना करती है। यह आज भी अपने पति की वाणी सुनती है। उस अमर वाणी की प्रतिध्वनि हर समय मेरे कानों में गूँजती है। और तुम जानते हो बेटा, यह नारी का पेट—यह जननी की कोख—हीरा भी अपने उदर से देती है, ककंड़-पत्थर भी। तुम क्या हो, मैं नहीं जानती!

पर सुनती हूँ माँ-बाप की भावना का प्रतिरूप ही उनकी सन्तान है। सो तुम्हारे पिता ने कभी किसी का अनिष्ट नहीं किया। उन्होंने कभी किसानों को भी नही सताया। यही सदा मुझसे कहा। और बेटा, नारी का यही सबसे बड़ा सौभाग्य है कि उसकी कोख से पैदा हुआ बच्चा चमके। वह धुंध में रहकर अपना जीवन न बिताये! वह कीड़ा न बने! समाज के लिए बोझ न हो! क्रूर और हिंसक भी नहीं! इसी हेतु, मेरे हृदय में जो माँ की प्रतिमा थी, उसे मैंने बर-बस ही मार दिया। कर्तव्य की वेदी पर चढ़ा दिया।' यह कहते हुए माँ का स्वर रुक गया। उसके हृदय का उद्वेग आँखों में झलक आया।'

आत्मा ने माँ के चरणों पर अपने हाथ रखकर कहा—'माँ मुझे यही चाहिए। अपनी माँ से चाहिए!'

माँ ने अधीर स्वर में कहा—'अब तुम विवाह करो। गृहस्थी के रूप में भी दिखायी दो, आत्माराम!'

आत्माराम ने उठकर कहा—'अच्छा माँ! यह भी होगा। तुम्हारी इच्छा का पालन जरूर होगा!'

माँ के पास से उठकर आत्माराम कमरे में जाकर बिस्तर पर पड़ गया। वह सो गया। जब प्रातः हुआ तो वह उठा। स्नान किया। कपड़े पहन लिये और वह स्वामीजी के पास जाने के लिये चल दिया। विपिन सो रहा था। उसे नहीं जगाया गया। दोहपर होते-होते आत्माराम स्वामीजी के पास पहुँच गया। नदी के किनारे पर सुन्दर गुफा थी। चारों ओर रमणीयता थी, वही गुफा में स्वामीजी का स्थान था। वह स्थान दर्शनीय था।

आत्माराम को देखते ही स्वामीजी ने कहा—'मैं सोचता था कि तुम आओगे। तो, आगये तुम! अब हाथ-मुँह धो लो। वह फल रखे हैं, उन्हें खाओ और आराम करो।'

जब आत्माराम हाथ-मुँह धोकर स्वस्थ हुआ, फलों का आहार कर चुका, तो वह फिर स्वामीजी के पास गया। उसे देखकर

स्वामीजी ने पूछा—'तो आज कैसे दौड़ आये, आत्माराम !' कल तो मैं गया। आज तुम ! अब बताओ, क्या मन में ले आये हो ?'

आत्माराम ने कहा—'स्वामीजी, मैं आज आने वाले जीवन की रूप-रेखा निश्चित करने आया हूँ। पथ-निर्देश पाने। वकालत नहीं पढ़ पाता। उसमें मन नहीं लगता। दिखता है, उस व्यवसाय में ईमानदारी और भलमनसाहत को स्थान नहीं मिलता।'

'और तुम्हारा विवाह कब है ?' स्वामीजी ने पूछा।

'मुझे इस विषय में भी निश्चय करना है, स्वामीजी !'

गम्भीर भाव में स्वामीजी ने कहा—'आत्माराम, विवाह आवश्यक है। लेकिन तुम्हें भय है। उससे कुछ रुकावट दीखती है। भला क्यों ? मेरा तो मत यह है कि यह भी एक जीवन है। जीवन का व्यापार है। उसमें भी जीवन की शास्वता और धार्मिकता निहित है, जिसे आगे जाना है, वह क्यों न जायेगा ? वह जरूर चला जायेगा। विवाह उसके मार्ग में अवरोध नहीं बनेगा। उसमें जो घना-सा मोह आता है, वह अवश्य भारी है। वह आदमी को झुकाता है। वह शृङ्खलाबद्ध है। और मैं इस प्रकार के व्यवधान को विवाह नहीं कहता। जो वस्तु हमें सीमित तथा संकुचित करती हो मैं उसे उपादेय नहीं समझता। यही तुम्हारे विवाह की बात है। इसे तुम्हीं को देखना और समझना है। विवाह नैतिक सीख देने के लिए समाज में प्रचारित किया गया। किंतु वह पतित है, वासना पूरित है। आज विवाह स्वयं अपने-आप में भ्रष्ट और लांछित है। जो विवाह हमें वासनापरित बनाता हो, वह सचमुच ही, मनुष्य-समाज के लिए एक कलंक है। नारी का एक यही प्रयोग नहीं, आत्माराम ! उसका दूसरा स्थान है। वह और है।' यह कहते हुए स्वामीजी उठे और बोले—'आओ, नदी पर बैठना। और तुम पढ़ना छोड़ रहे हो, सो छोड़ दो। यह गौण वियष है ऐसे प्रश्नों को सुलझाना तुम्हारा अपना काम है।'

आत्माराम कुटी से निकलकर स्वामीजी के साथ-साथ नदी पर

पहुँच गया। वह वहीं किनारे पर बैठ गया। स्वामीजी आगे चले गये। वह नदी पार कर गये। किनारे पर बैठकर आत्माराम देखने लगा कि पानी की लहरें अपूर्वता के साथ लहरा रही हैं। वे जैसे आपस में आँख-मिचौनी खेल रही हैं। वे लहरें किनारे तक आतीं और लौट जातीं। उसी समय आत्माराम के मन में प्रश्न उठा—'क्या यही जीवन है? इन लहरों के समान इन्सान का जीवन भी लहराता है? वह किनारे की ओर दौड़ता है और टकराकर फिर वापिस लौट आता है? फलस्वरूप, उन लहरों की ओर देखते हुए, उसने श्रद्धायुक्त भाव से भरकर कहा—'इस पुरुष का जन्म भी इसीलिए है कि यह अपने चिर-पुरुषत्व को पाये, उसे पाता जाये।' इस प्रकार आत्माराम जैसे अपने-आप में ही डूब गया। वह जिस प्रश्न का समाधान पाने के लिए गाँव से यहाँ तक दौड़ आया, उसीको फिर मूर्त्त रूप में देख, उसने पानी की ओर देखते हुए कहा—'जीवन भी एक लहर है, आत्माराम! जिसका आस्तित्व ही यह है कि लहरें और जीवन के छोर पर जाकर अपने आप ही टकरा जाये। यह कहते हुए उसका मन हल्का पड़ गया। वह घर से जिस बात को गाँठ में बाँध लाया था, उसका फंदा अपने आप ही खुल गया। कदाचित् उस क्षण वह अपने सामने रजनी को देख पाता तो जाने कितनी विनय और स्नेहानिल भावना से भर-कर उससे कहता—'तुम विपिन को समझो······तुम उसे अपने पास बैठाकर देखो रजनी! विपिन कहीं हल्का है······कहीं भारी है। वह एकसार नहीं है। और आज जो वह जीवन में गहरा बन गया है, मुझसे छिपाव करता है, तो यह भी टिकाऊ और स्थिर नहीं है···।'

उसी समय, स्वामीजी ने आकर कहा—'किस विचार में हो, आत्माबाबू! आओ कुटी में चलें।'

आत्माराम ने स्वामीजी की ओर देखा। तदन्तर ही, स्वामीजी ने फिर कहा—'इस नदी के जल-पथ के सदृश ही हमारा जीवन है। जिसे किसी वस्तु के प्रति असन्तोष हो, तो यह भी सम्भव हो सकता

है कि उसका अनुमान सत्य से दूर हो। यहाँ जो-कुछ है, सभी सार-मय है। हमारे लिए सभी उपादेय है। जीवन में शंकित और भ्रमित रहना खतरनाक है। प्रेम और घृणा, राग और द्वेष—यह सभी-कुछ हमारे ही मानस में समाहृत है। तुम विश्व को देखो और उसके साथ-साथ चलने के लिए अपने को प्रेरणा दो। युद्ध होते हैं, हिंसाएँ होती हैं, देश-के-देश आग में झोंक दिये जाते हैं। परन्तु सुलह के बाद, वही एक-दूसरे के शत्रु देश कन्धे-से-कन्धा मिलाकर विश्व-कल्याण के हेतु क्षेत्र में दिखाई देते हैं।' वह कहने लगे—'तुम्हारे यहाँ आने का अर्थ मैं समझा। मैंने पाया कि तुम्हारा मन किसी कारण से अशान्त हुआ और मेरे पास आने का विचार पैदा हो आया। सो तुम आये, यह अच्छा ही हुआ। तुम्हारी माँ विवाह चाहती हैं। तुम्हारा यह यौवन भी इसी की माँग करता है। मेरा भी मत यही है, विवाह भी एक अच्छी परम्परा है। बशर्ते कि तुम उसमें लय न हो जाओ तो वह तुम्हारे आगे चलने वाले जीवन में सक्रिय भी बन सकता है। नारी और उसका साथ कर्म की भी दिशा बताता है।' वह बोले—'लेकिन बहुधा ऐसा मिलता नहीं। दिखता नहीं। जिसका कारण है, जीवन-भोग के प्रति ममता! इस भौतिक जगत् में आज इसी-का बोलबाला है। चारों ओर अशान्ति है, कोलाहल है। जहाँ देखो, नर-कंकाल दीखते हैं। अजीब समस्या है! यह भी अजीब प्रकार की पीड़ा है कि इन्सान भूखा है, पीड़ित है, परन्तु फिर भी, वह भोगवाद की सड़ी हुई, मौत का निमन्त्रण देती हुई दलदल में पड़ा दम तोड़ रहा है……!

: ८ :

अपनी जिस विषम बनी हुई मनःस्थिति को लेकर आत्माराम स्वामीजी तक पहुँचा, वहाँ वह कुछ सुधार पा सका; ऐसा उसने एक क्षण को भी अनुभव नहीं किया। वह जहाँ अपनी भावी पत्नी रजनी के प्रति उदासीन नहीं, उसी प्रकार अपने साथी विपिन के प्रति भी उपेक्षित या क्रूर नहीं बन सका। यद्यपि आत्माराम रजनी के पिता की लालसा और अपनी जाति की प्रथा से परिचित होकर भी, पत्नी और मित्र में से एक को भी अपने से दूर नहीं करना चाहता था। यही उसे रुचिकर और मान्य नहीं लगा। इसीलिए वह स्वामीजी तक गया। उसने चाहा कि विवाह से छूट जाये—रजनी से दूर हो जाये! उसने चाहा था कि वह विपिन को स्वतन्त्रता दे। उसे रजनी तक पहुँचने दे। वह उसके मार्ग का रोड़ा न बने। वह ठाकुर की महत्वाकांक्षा भी फलने-फूलने दे। लेकिन उसके मस्तिष्क में व्याप्त हुए संघर्ष का जो केन्द्र-स्थल था, वह जैसे सचमुच ही, विपिन नहीं था। वह रजनी की उन भावनाओं का समूह था, जो स्वयं रजनी ने ही, अपनी इच्छा से उसे अर्पित कर दिया। आत्माराम उसीसे बोझिल था। उसका मन इसी कारण क्रन्दन कर उठा। वह अभी उन ज्योतिर्मयी रातों को भी नहीं भूल सका कि जब रजनी उसके पास आई और ममता तथा प्यार का प्रसार कर गयी। उसी अवस्था में रजनी ने कहा था—'इस जग में, जीवन के इस प्रहर में मैंने तुमको पाया है, तुम्हीं को खोजा है। इस जगमग करते हुए समूचे विश्व की ओर से आँख मूँदकर, मैंने अपने मन की आँखों से तुम्हें देख लिया है। जाने किस पुण्य से, अपने जीवन के किन अच्छे संस्कारों से, तुम्हें पा लिया है और अपना बना लिया है।' इसलिए, सोचता आत्माराम कि वह रजनी से कुछ नहीं कहेगा। वह सदा उसकी इच्छा का आदर करेगा। और विपिन? वह तो मेरा साथी है। देर से साथ-साथ चलता आया है। मैं उसे भी नाराज न करूँगा। उसकी इच्छा को महत्वहीन भी मानने की बात न कहूँगा। वह अपनी बात सोचता

है, सोचता है। वह देखता है, देखता है !

दूसरे दिन आत्माराम स्वामीजी के पास से लौट आया। घर आते ही, उसे पता चला कि विपिन रजनी के यहाँ गया है। तब वह स्वयं भी उसी ओर गया। वहाँ जाकर देखा कि ठाकुर के बैठकखाने में ठाकुर, विपिन और रजनी बैठे हैं। विपिन बाजा बजा रहा है। गा रहा है। आत्माराम के पहुंचते ही, रजनी खड़ी हो गयी। वह उसकी ओर देखने लगी। विपिन भी गाते-गाते बन्द हो गया। उसने आत्माराम को देखते ही पूछा—'कब आये ? अभी आये ?'

आत्माराम कुर्सी पर बैठ गया और बोला—'हाँ, अभी-अभी !'

ठाकुर ने पूछा—'कहीं बाहर गये थे ? कहाँ गये थे ?'

आत्माराम ने कहा—'मैं दस कोस से आया हूँ।'

'सो ही तो ! पैरों में धूल भरी है। रास्ते की धूल तुम्हारी चप्पल से उड़-उड़कर सिर में भी आई है।' ठाकुर ने कहा और हुक्के की नली को मुँह में लगा लिया।

लेकिन आत्माराम ने ठाकुर की बात सुनकर केवल मुस्करा भर दिया। उसने विपिन से कहा—'अभी तुम बहुत सुन्दर और भाव भरा गीत गा रहे थे। देर हुई कि मैंने तुम्हींसे सुना था।' यह कहते हुए वह खड़ा हुआ और बोला—'तुम गाओ ! मैं खेत की खुदाई देखने जाता हूँ। तुम्हारे घर पहुँचते-पहुँचते ही लौट आता हूँ।'

'बैठो, आत्माबाबू !' ठाकुर ने कहा—'आये और चले। बड़े काम-काजी हो ! तुम रात-दिन घर और बाहर की देख-भाल में लगे रहते हो !'

यह सुनकर, आत्माराम फिर मुस्कराया। विपिन हँसा। आत्माराम ने सामने खड़ी रजनी की ओर देखा और कहा—'मुझे यही अच्छा लगता है। भला यह जीवन कितना है ! काम करना ही, हमें शोभता है !'

'मैं इस बात का कायल नहीं हूँ। मैं यह नहीं मानता, आत्माबाबू।'

ठाकुर ने आत्माराम की ओर देखकर कहा—'आप शीशा लेकर देखें, तो पता चले कि बालों में कितनी धूल है। मुँह पर धूल है। पैरों में धूल है। परेशानी है। थकान है। आप अभी दस कोस से चलकर आये हैं न! घर पर शायद दो मिनट से अधिक नहीं बैठे। अब खेत देखने निकल आये। आप तो पूरे किसान हैं। नाप-तोलकर खाते-पहनते और चलते हैं।'

आत्माराम ने हँसकर कहा—'आपका आरोप मुझे स्वीकार है। जैसा आप देखते हैं, इस आत्मा को ऐसा ही बनना है, इसी प्रकार रहना है। मनुष्यों की, उनकी समस्याओं की इस भीड़ में इतना भी निभ जाये, तो बहुत है! निष्क्रिय व्यक्ति क्या जीवन पाने का अधिकार रखता है!' कहते हुए वह उठा। नमस्ते की और चल दिया।

आत्माराम अभी द्वार पर पहुँचा था कि उसके पहले ही, बैठक से निकल आयी और द्वार के पास जाकर खड़ी हुई रजनी ने उसे देखकर कहा—'आत्माबाबू·········!'

आत्माराम ने देखा कि रजनी कुछ कहना चाहती है, परन्तु कह नहीं सकी। वह रुक गयी। उसने सिर झुका लिया।

यह देखते ही, आत्माराम ने उसके सिर के बालों में उँगलियाँ देकर कहा—'मैं कल स्वामीजी के पास गया था। अभी आया हूँ। मैं अभी सुबह से भूखा हूँ। शायद इसीसे मैं तुम्हें परेशान दीखता हूँ।'

रजनी ने अपने सीधे हाथ की उँगली से अँगूठी निकालकर कहा—अपना हाथ दो! मुझे दो!'

यह सुनते ही, आत्माराम ने फिर रजनी की ओर देखा। पल भर को उसने रजनी की उन भरी हुई आँखों में अपनी आँखें डालकर जैसे कुछ खोजना चाहा। कुछ पाना चाहा। किन्तु निरी आकुलता और समर्पण की भावना को छोड़ उसे उन आँखों में कुछ भी नहीं दीख पड़ा। उसी प्रकार देखते हुए उसने एकाएक कहा—'रजनी······!'

रजनी ने अपनी उन भरी हुई आँखों पर, देर से उठे हुए पलक

डाल दिये। आँखों का नीर बाहर ढुलक आया। वह रजनी के उन सुन्दर गुलावी गालों पर फैल गया। लेकिन जैसे रजनी का ध्यान उस ओर नही था। वह आत्माराम की ओर था। तभी उसने फिर कहा—'इस रजनी को अपना हाथ दो! दो!'

आत्माराम ने रजनी के उन हाथों को देखने के साथ, उस आकुल बने हुए अनुरोधपूर्ण स्वर को सुनते ही, अपना हाथ बढ़ा दिया।

रजनी ने आत्माराम की उँगली में उस अँगूठी को डाल दिया। उसने कहा—'यही हमारे विवाह की निशानी है। यह अँगूठी उसी-की स्वीकृति है।'

इतना सुना, तो आत्माराम और गम्भीर बन गया। उसने सामने के नीले आकाश की ओर देखकर कहा—'यह स्वीकृति तो तुमने अनेक बार दी। फिर आज क्यों?'

रजनी ने अपनी आँखें पोंछकर कहा—'आज रजनी ने तुम्हारी स्वीकृति पा ली है। तुम भूल न जाओगे, यह इसीसे, ऐसा कर पायी है—आत्माबाबू!'

'मै समझा! तुम्हारे मन में क्या है, उसे पहचाना!' आत्माराम ने रजनी की ओर देखकर, क्षणेक होठों से मुसकराया और कहा—'ऐसी बातों को कोई नहीं भूलता, रजनी देवी! इनका तो हृदय से सम्बन्ध है। मानस का तत्व ही तो इस वार्ता का मध्यस्थ बनता है। और अब बताओ, मैं बदले में क्या दूँ? मैं तुम्हें क्या भेंट करूँ! क्या सोना···चाँदी···कोई हीरे का टुकड़ा······?'

रजनी ने आतुर बनकर कहा—'नहीं, नहीं! मुझे मिल गया है। मैंने तुम्हें पा लिया है। मैं मिट्टी से मोल नहीं करती। सोने को इस-से अधिक कुछ नहीं समझती।' यह कहते हुए रजनी ने स्वयं ऊपर के अन्तरिक्ष की ओर देखा। उसने फिर कहा—'भला तुम्हें छोड़कर रजनी और क्या पायेगी। इस जगत् में,—अपने इस जीवन में—तुमसे श्रेष्ठ और कौन-सी वस्तु खोज सकेगी?' वह बोली—'मुझे तो जो कुछ

पाना तथा खोजना था, वह पा लिया। तुम्हें पाकर इस रजनी का जीवन निहाल बन गया।'

इतना सुना, तो आत्माराम ने जाने कितने गहरे आलोड़ और उल्लास से भरकर रजनी का हाथ पकड़ लिया। वह बोला—'अच्छा, रजनी! अच्छा! मैं अब स्वस्थ हुआ। मैं अब निश्चिन्त हुआ। मैं दो दिन से इसी बात को लिये था। मैं इसीसे द्रवित और अशान्त बना हुआ स्वामीजी के पास पहुँच गया। किन्तु वहाँ क्या मिला! वह तो अब तुमसे मिला।' यह कहते हुए उसने रजनी का हाथ छोड़ दिया। उसने मुस्कराकर विदा ली। वह तब खेत की ओर न जाकर, घर की ओर चल दिया।

उसी समय, बैठक में ठाकुर ने विपिन से कहा—'क्यों विपिनबाबू, आपने कुछ सोचा? मेरे प्रस्ताव पर विचार किया? रजनी का विवाह···!'

विपिन ने जल्दी से कहा—'ठाकुर साहब, मैं अभी विवाह नहीं कर रहा। शायद इस जीवन में ऐसा योग भी नहीं प्राप्त कर सकता।'

यह सुनते ही, ठाकुर ने आश्चर्य से पूछा—'क्यों? क्यों? मैं रजनी के लिये आपको उपयुक्त जानता हूँ।'

विपिन ने तुरन्त ही, जैसे रोषयुक्त स्वर में कहा—'ठाकुर साहब, यह आत्माराम के साथ धोखा है। पुत्री के साथ भी अन्याय है!'

इतना सुनते ही, ठाकुर ने कुर्सी के हत्ते पर हाथ मारकर कहा—'धोखा किस बात का? मैंने अभी नहीं कहा है। मैंने आत्माबाबू को वचन नहीं दिया। और पुत्री का क्या है, मैं जहाँ भेजूँगा, उसे वहीं जाना पड़ेगा।'

विपिन ने सूखी और कड़वी मुस्कराहट के साथ कहा—'जो कहा है, वह क्या गलत और झूठा रहा? आपने आत्माबाबू से नहीं, अपनी बेटी से, और उसकी माँ से कहा है।'

बात सुनते ही, ठाकुर लाल बन गया। वह बोला—'आपने गलत

सुन लिया, विपिन बाबू ! ओह, मैंने व्यर्थ ही आपसे कहा ! मैंने···!'

किन्तु विपिन उठ खड़ा हुआ। वह बाहर जाता हुआ बोला—'हाँ, आपने व्यर्थ कहा। नमस्ते !' कहते हुए वह बैठक से बाहर हो गया। वहाँ से, वह जैसे ही, द्वार पर पहुँचा, तो उसने खड़ी हुई और मुस्क-राती हुई रजनी को पाया। देखते ही, वह बोला—'क्या तुम यहाँ थीं। तुम जरूर, हमारी बात सुन रही थीं।'

रजनी ने इतना सुना और अपने मोती सरीखे दाँतों से हँस दिया।

विपिन ने कहा—'अच्छा, अब जाऊँगा। आत्माराम प्रतीक्षा में होगा। मै उसीके साथ भोजन करूँगा। देखिए, मैं आपको अब 'तुम' कहूँगा और 'भाभी' कहकर भी सम्बोधित करना पसन्द करूँगा।'

रजनी ने विद्रूप लिए भाव में विपिन की ओर देखा। उसने अपने मुँह पर उँगली रखकर उसे चुप रहने का भी आदेश दे दिया। किंतु विपिन ने इतना देखा, तो वह फिर हँस दिया—'मेरे पास कैमरा होता, तो तुम्हारे इस नाटकीय पोज का फोटो खेंच लेता।' तदन्तर उसने नमस्ते की और चल दिया।

जब वह घर पहुँचा, तो देखा कि सचमुच ही, आत्माराम उसीके लिए बैठा है। वह नहा-धोकर कपड़े बदल चुका है। विपिन के जाते ही, भोजन प्रारम्भ हो गया। उस समय विपिन प्रसन्न था। आत्माराम पूर्ववत् था। वह मौन भी था। भोजन के बाद, जब आत्माराम किसी काम से बाहर जाने लगा, तो विपिन बोला—'क्यों, आत्माराम ! कहाँ ? अब कहाँ चले ? आओ, जंगल में चलें। कहीं घूम आएँ। तुमने मुझे कुछ नहीं दिखाया। भला हो उस ठाकुर का कि शिकार करने तो ले गया। उसकी बैठक में जाकर गाना गाने का भी अवसर मिल गया। यह भी सोने में सुगन्ध रही कि वहाँ भाभी का साथ मिल गया। यह प्रसंग तो अच्छा रहा। पर तुम बताओ, इसीलिए मुझे लाए थे कि यहाँ लाकर पटक दिया ! तुम तो आए और बाहर भाग गए।

स्वामीजी के तुम बड़े भक्त दीखते हो। अच्छा, यह तो बताओ, तुम अपने विवाह पर मुझे क्या दोगे ? मैं आज रजनी से कह आया हूँ कि अब 'भाभी' कहूँगा। मैं इसी नाम से उसे पुकारूँगा।'

उसी समय, आत्माराम ने विपिन की ओर देखा। वह दो दिन से विपिन को खोज रहा था। अपने से दूर कर रहा था। उसे अनायास ही, फिर पूर्ववत् देख, उसने चाहा कि गले लगा ले और कहे—'अरे, विपिन, तू ! तू !' तभी उसने कहा—'हाँ, आओ, जंगल में चलें। तुम चले भी कहाँ ! कभी शिकार में, कभी रजनी के यहाँ !'

विपिन ने सुना और हँस दिया।

जब दोनों चले, तो विपिन ने बन्दूक उठा ली। आत्माराम बोला—'तुम मेरे सामने भी शिकार मारोगे ! क्यों किसी की जान लोगे ? बन्दूक छोड़ दो।'

विपिन बोला—'नहीं, ले चलते हैं, खाली निशाना सही। हाथ में बन्दूक लेकर लगता है कि कोई शक्ति हमारे हाथ में है।'

शक्ति की बात सुनते ही, आत्माराम हँस दिया। वह बोला—'तो जरूर ले चलो, भाई ! पर इस शक्ति में बल है, यह मुझे नहीं सूझता। आज तक भरोसा नहीं हुआ।'

विपिन ने उत्तर नहीं दिया। उसने कुछ नहीं कहा। बन्दूक ले ली। आत्माराम के साथ वह गाँव में से निकल रहा था, तो रजनी को उसने अपने घर के द्वार पर खड़ी पाया। वह खड़ा हो गया और रजनी पर निशाना साधने लगा। यह देख, रजनी मुस्करायी। वह अपने हाथ की हथेली से आड़ करके खड़ी रही।

यह देख, आत्माराम ने झिड़ककर कहा—'विपिन, क्या करते हो ! यह गाँव है। शहर नहीं है। कोई देख लेगा, तो क्या कहेगा ! वह हँसेगा कि बाबूजी लड़की पर बन्दूक का निशाना लगा रहे हैं.........!'

विपिन ने कहा—'पर उन्हें तो देखो, हथेली से गोली रोकी जा

रही है !' कहते हुए वह जोर से हँस दिया ।

गाँव से निकलकर दोनों चल दिए । वे जंगल की ओर बढ़ गए

: ६ :

दशहरे का दिन आया और आत्माराम तथा रजनी की सगाई सम्पन्न हो गयी । उसी दिन विवाह का दिन निश्चित हो गया । आत्माराम की माँ किसी शीघ्र तिथि में विवाह नहीं करना चाहती थी, परन्तु रजनी की माँ का यही अनुरोध था । फलस्वरूप, नियत तिथी में विवाह-संस्कार भी हो गया । उस विवाह में कोई आडम्बर नहीं किया गया । नितान्त सादगी से वह आयोजन सम्पन्न हुआ । स्वामीजी के आदेश पर, आत्माराम की माँ ने कुछ संस्थाओं को दान दिया । जो रुपया आडम्बरों में खर्च किया जाता था, उसीका एक भाग सार्वजनिक कार्यों में लगाया गया । किन्तु रजनी के पिता ने इस आदेश का पालन नहीं किया । उन्होंने अपनी पुत्री के विवाह पर खुलकर व्यय किया । बिरादरी में जैसे उन्होंने यह दिखाने का प्रयत्न किया कि वह ठाकुर भी शान रखता है—अभिमान रखता है । विवाह के बाद विपिन शहर चला गया । आत्माराम घर पर रहा । उसने कालेज से एक मास का अवकाश और ले लिया ।

लेकिन एक दिन आया कि आत्माराम शहर चला गया । उसके सहपाठियों ने देखा कि विवाह होते ही, आत्माराम जैसे बदल गया । कुछ घट गया, कुछ बढ़ गया । वह गम्भीर तो पूर्ववत था, परन्तु नारी के प्रति उसमें जितनी उदासीनता थी, वह अब जैसे तिरोहित हो गयी । निश्चय ही, वह अब अपनी पत्नी के प्रति पूर्ण रूप से संलग्न था । मानो एक नई प्रेरणा से प्रेरित होकर ही, वह उस लम्बे अवकाश के बाद

कालेज में पहुँचा था। कदाचित् इस प्रकार का अनुभव सर्वप्रथम आत्माराम की माँ ने किया। उसने देखा कि आत्मारामव ही है, उसी-का पुत्र है। किन्तु वह अनुभव करती, जैसे आत्माराम में से कुछ छिन गया है, कुछ नया आ गया है। विवाह से पूर्व, आत्माराम प्रातःकाल में, माँ के चरण छूता और आशीष पाता। वह पैर तो अब भी छूता है, परन्तु रस्म पूरी करता है। कोई सिर पर आया हुआ काम है, जिसे ऊपरी मन से पूरा कर टाल दिया जाता है। वह काम भी कभी करता है, कभी नहीं। इस प्रकार माँ के पैर छूने की क्रिया धीरे-धीरे मन्द पड़ती गयी। विवाह से पूर्व आत्माराम प्रातःकाल उठता। पर अब माँ को या रजनी को उसे जगाना पड़ता। जब कालिज की लम्बी छुट्टियाँ फिर आईं, तो आत्माराम घर आ गया। तभी माँ ने देखा कि उसके पुत्र में अपनी जमींदारी और पैसे के प्रति पहले के समान उपेक्षापूर्ण भावना नहीं थी। अब संलग्नता थी। जैसे उसे पहले से अधिक पैसे की चाहना थी। उन्हीं दिनों की बात है कि अत्माराम की माँ को ज्वर चढ़ आया। उसे दिन भर ज्वर में रहना पड़ा। यद्यपि आत्माराम को पता था कि माँ को बुखार है। किन्तु वह सन्ध्या तक भी माँ के पास नहीं गया। जमींदारी के कामों में लगा रहा। रात आई, भोजन किया और पड़ गया। जब रजनी उसके पास दूध लेकर पहुँची, तो तभी, उसने माँ के लिये पूछा।

रजनी ने कहा—'माँ को बुखार है।'

यह सुनने के साथ, आत्माराम ने दूध पी लिया और रजनी को फिर जाती देखकर बोला—'सुनो, रजनी! जा रही हो! आओ, बैठो!'

रजनी ने कहा—'माँ को देख आओ ना! तुम सुबह से नहीं मिले हो। तुम आज एक बार भी माँ के पास नहीं गये!'

रजनी की बात सुनकर आत्माराम जैसे त्रस्त हो गया। वह अपने-आप शरमा गया। बोला—'हाँ, आज मैं काम में अधिक व्यस्त

रहा। अब माँ को देख आऊँगा। मैं अभी जाऊँगा।' इतना कहा और आत्माराम फिर रजनी की ओर जैसे सतृष्ण नेत्रों से देखने लगा। उसी अवस्था में उसने कहा—'तुम आओ। मेरी बात सुनो। तुम अपने को शीशे में देखो। कितनी सुन्दर लगती हो। सच, कितनी…।'

किन्तु आत्माराम के मन की उस अवस्था को पाकर भी, रजनी उस समय और अधिक खिन्न बन गयी। वह पति की बात सुनकर लजा गयी। तुरन्त बोली—'आओ, उठो, माँ के पास चलो!'

उस समय, इच्छा न होते हुए भी, आत्माराम कठिनाई से खड़ा हो गया। वह तब भी रजनी की ओर अजीब प्रकार से देखने लगा। मुस्कराने लगा। सचमुच ही, उस क्षण रजनी से अपने मन की बात करना चाहता था। वह उसे अपने पास बैठा लेना चाहता था। और रजनी सहमत नहीं थी। उस क्षण उसे वह व्यापार कदापि पसन्द नहीं था। निदान, आत्माराम रजनी के साथ-ही-साथ माँ के पास गया। वह उसके पलंग के पास जाकर बोला—'माँ!'

माँ ने कठिनाई से मुँह खोलकर कहा—'हाँ, बेटा! मुझे बुखार है। शायद सर्दी लग गयी है। तुम जाकर सोओ। तुम ठण्ड में मत खड़े रहो, आत्मा!'

आत्मा ने कहा—'कुछ खाया? दूध लिया?'

माँ ने कहा—'नहीं, बेटा! आज कुछ नहीं। जाओ, तुम सो जाओ।'

तब आत्माराम अनायास ही खिन्न हुए स्वर में बोला—'तो…?'

यह सुनकर माँ ने कहा—'अरे, बेटा! बुखार है। आज चढ़ा है, कल उतर जायगा।'

आत्माराम फिर कमरे में लौट गया। उसके जाते ही, माँ ने रजनी से कहा—'जाओ, बेटी! तुम आत्माराम को दूध दे आओ। अब तुम भी सो जाओ।'

रजनी ने कहा—'उन्हें दूध दे दिया। तुम्हें लाऊँ?'

'नहीं, बहू ! अब कुछ नहीं ! आज नहीं !'

इसके बाद रजनी फिर आत्माराम के कमरे में पहुँच गयी। वहाँ जाकर वह सो गयी। किन्तु अपने कमरे में पड़ी हुई माँ उस रात को एकान्त में, जाने क्या देखकर अपने से कह रही थी, 'अब मेरा आत्मा बदल गया है। यह अब माँ-बेटे के नाते को ढीला करने लगा है। अपनी बहू की सीमा में बँध गया है !' और उसने तभी, जैसे निरे पीड़ित स्वर में, एकाएक फिर कहा—'ठीक भी तो है ! बहू आई है, तो आत्मा को उसे भी कुछ देना है···मन देना है···जीवन देना है···मेरा आत्मा !'

निःसन्देह, मन में उठे हुए इस विचार के आते ही, माँ को अपार पीड़ा अनुभव हुई। उस पीड़ा को लिये-लिये ही, उसने फिर अपने-आप कहा - 'यही होना था···मेरे आत्मा को यही करना था ! यह दोष आत्मा का नहीं। बहू का है। उसे अब अपनी इच्छाओं का राज्य भी तो कायम करना है। नारी के रूप में रजनी का एक यही तो सहारा है। उसके जीवन की भी यही माँग है ! उसे यही चाहिए···मेरा आत्मा चाहिए !' इतना कहते हुए उस माँ ने अपने मन पर झटका खाया। तभी उसने तुरन्त कहा—और बात क्या, आत्माराम दूर जाये तो, पास आये तो, है तो मेरा। आत्मा मेरा है। मैंने उसे जन्म दिया है। कोई भी तो जन्मा हुआ बेटा माँ के पास नहीं रहता। सभी अपना स्थान बनाते हैं। पक्षी भी अपने पर फड़फड़ाकर माँ के पास से उड़ जाते हैं। वे दूसरे घोंसले का निर्माण करते हैं। जब बहू आई है, तो आत्मा को उसका भी बनना है। वह उसका पति है। वह रजनी का सोहाग है···रजनी का सहारा है···।

किन्तु इतना कहने और अपने मन को समझाने के बाद भी, आत्माराम की माँ में फिर हिलोर उठी। वह बोली—नहीं, आत्मा दूर हो गया है ! वह अपनी परिपाटी से पृथक् हो गया है ! कृतघ्न बन गया है ! आत्मा को मैंने इसलिए तो नहीं पाला, इसलिए तो नहीं जन्मा ! मैं बहू से कुछ नहीं कहूँगी। मैं आत्मा से कहूँगी। मैं

उसीको बताऊँगी कि विवाह इसलिए नहीं किया कि तू उसमें डूब जाये। इस रजनी की सीमा में बँधकर, तू अपनी दीन-दुनिया को भी भूल जाये!

इस प्रकार, मन के आवेग में झकझोरे खाती हुई, आत्माराम की माँ ने वह रात बिता दी। दूसरा प्रातः भी आ गया। ज्वर नहीं उतरा। आत्माराम उस दिन भी माँ के पास नहीं जा सका। रात में भी वह देर तक रजनी की प्रतीक्षा करने के बाद सो गया। रजनी आई, तो उसने आत्मा को जगाया। रजनी का स्वर सुनते ही, उसने आँख खोलकर उसकी ओर देखा। उसने तब तुरन्त ही, रजनी का हाथ पकड़ लिया, उसे खींच लिया। किन्तु रजनी ने, जैसे आतुर बनकर, मानो झुँझलाते हुए कहा—'सुनो, सुनो! तुम कैसे ुत्र हो, आज भी माँ के पास नहीं गये! उन्हें आज भी तेज बुखार है। कल से अधिक पीड़ा है। दो दिन से माँ ने कुछ भी नहीं खाया-पीया है! और तुम निश्चिन्त हो! माँ की ओर से बेखबर हो! वाह-वाह! यही तुम्हारा कर्तव्य है!'

यह सुनते ही, आत्माराम ने रजनी का हाथ छोड़ दिया। वह उठकर बैठ गया। उस क्षण, बिना रजनी की ओर देखे ही, माँ के पास चला गया।

माँ के पास जाकर उसने देखा कि माँ की आँखें बन्द हैं। बुखार की बेहोशी है। आत्माराम ने उसके माथे पर हाथ रखा। वह गरम तवे के समान तप रहा था। किन्तु हाथ का स्पर्श पाते ही, माँ ने आँख खोलकर आत्माराम की ओर देखा। उसने कहा—'तुम अभी तक नहीं सोये, आत्माराम! जाओ, सो रहो!'

आत्माराम ने कहा—'माँ, आज बुखार अधिक है! तुम्हें पीड़ा है!'

'हाँ, बेटा! आज सिर में दर्द भी अधिक है!'

यह सुनते ही, आत्मा में रोमांच उठ आया। आँखें भर आईं।

एकबारगी अस्थिर बन, माँ के सिर पर हाथ रखकर बोला—'मेरी माँ !'

माँ ने कहा—'हाँ, बेटा ! तुम सो रहो। कल बुखार उतर जायेगा।'

आत्माराम कुछ नही बोला। कुछ क्षण तक वह वहीं माँ के सिरहाने खड़ा रहा। तदन्तर वह अपने कमरे में चला गया। वह जानता था कि स्वामीजी की औषध को छोड़कर, माँ किसी और की औषध नहीं लेती। यही सोचते हुए उसने अपने से प्रश्न किया—'तो क्या स्वामीजी के पास जाना चाहिए ? अभी जाना चाहिए ?

उसने खुले स्वर में कहा—'हाँ, आत्मा ! माँ को बुखार है ! आज कल से भी अधिक जोर है। तुम्हें जाना चाहिए ? अभी जाना चाहिए, आत्माराम !'

उसी समय, रजनी ने आकर कहा—'क्या सोच रहे हो ! खड़े क्यों हो ! सो जाओ !'

किन्तु रजनी की बात सुनते ही, आत्माराम ने उसे प्रश्न भरी दृष्टि के साथ देखा। उसी ओर देखते हुए, उसने मन में कहा—'मुझे अभी-अब स्वामीजी के पास जाना होगा। इसी भरी रात में और घोर जाड़े में जाना पड़ेगा, आत्माराम ! यह कहते ही, उसने कपड़े पहन लिये। ओवर कोट भी पहन लिया।

यह देख, रजनी ने पूछा—'क्यों, कहीं जाना है, क्या ?'

आत्माराम ने बन्दूक में गोलियाँ भरते हुए कहा—'हाँ, रजनी ! मुझे स्वामीजी के पास जाना है।'

'ऐसी रात में,—ऐसे शीत में ! नहीं, सुबह जाना !'

आत्माराम खड़ा हो गया। वह चलने को उद्यत बन, बन्दूक हाथ में लेकर बोला—'न, रजनी ! माँ को आज अधिक पीड़ा है। मैं अभी जाऊँगा। प्रातः तक स्वामीजी को माँ के पास ले आऊँगा।'

रजनी ने शान्त भाव में, बाहर की घोर काली रात की ओर

देखते हुए साँस भरी और कहा—'अच्छा, जाओ ! तुम जरूर जाओ !'

आत्माराम घर से निकल गया। वह उस काली और शीत-भरी रात में रास्ते पर चढ़ लिया। वह चला गया।

उसी समय, रजनी ने माँ के पास जाकर कहा—'वह स्वामीजी को लेने गये हैं, माँ !'

यह सुनते ही, माँ चौंक गयी। वह जैसे जाग गयी। तत्क्षण ही, वह आर्त्त वाणी में बोली—'इतनी रात में ! हाय ! हाय ! तूने रोक क्यों नहीं लिया, बेटी ! आत्मा नादान है ! वह तुझसे नहीं रुका, तो मुझसे आकर कहती। मैं रोक लेती। मैं क्यों उसे इस काली और शीत भरी रात में जाने देती।'

'वह बन्दूक ले गये हैं, माँ ! प्रातः तक आ लेंगे।'

रजनी की इस बात को सुन, क्षण भर, माँ ने कुछ नहीं कहा। उसने तब आँख खोलकर सामने के अन्धकार की ओर देखा। उसी ओर देखते हुए, उसे लगा कि उसका आत्मा—उसका पुत्र—दूर नहीं है। जैसे अब भी वह बच्चा बना हुआ उसकी छाती से चिपटा है। उसके स्तन का दूध पीने के लिये मचल रहा है। आत्माराम उसका अपना ही बेटा है। वह विवाह करके भी, पत्नी का नहीं बना; माँ का ही बना है। फलस्वरूप, वह एक अलभ्य सुख से भरकर, उत्साह तथा गद्‌गद हुए स्वर में, पास खड़ी रजनी से बोली—'मेरा आत्मा ऐसी रात में कई बार स्वामीजी के पास गया है। बिना बन्दूक लिये गया है, बहू ! अपनी माँ के लिये वह न दिन में रुका, न रात में रुका है।'

इसके बाद ही, माँ ने फिर कहा—'और बेटी, मैंने आत्मा को ऐसे ही त्याग और कर्म के लिये अपनी कोख से पैदा किया। इसीसे, मैंने तुझे भी पाया। तूने समझ तो लिया है न, आत्मा को ! तुझे भी उसका साथ देना है, क्यों ठीक है ना ! स्त्री भोग-विलास के लिये नहीं बनी। वह तो अपने पिया को जगाने और आगे बढ़ने के लिए उत्साह

प्रदान करती है, मेरी रानी !' कहते हुए माँ रुक गयी। तदन्तर ही, वह फिर बोली—'अब तुम भी माँ बनोगी, मेरी बच्ची ! अपनी सन्तान को त्याग और शक्ति पाने का पाठ दोगी। तुम उस सन्तान को देख-कर हर्ष और आनन्द के आँसू बहाओगी। तुम एक दिन अपने को माँ सुनोगी। मेरी भली बहू ! मेरे घर की रानी ! तुम आत्मा को ऐसा ही बनने दो। उसे देश और समाज के काम आने दो। तुम्हारा इसी में सोहाग है······तुम्हारा यही पुण्य ! यही तो नारीत्व की साख है ! अब लाओ, मुझे दूध दो। बुखार उतर रहा है। मेरा मन हल्का हो रहा है।'

इतना सुनते ही, प्रसन्न और अपने-आपे में डूबी हुई रजनी, माँ के लिये दूध लायी। जब वह फिर माँ के पास आकर खड़ी हुई और माँ को दूध दे, एकाग्र बनकर उसके श्वेत बालों को देखने लगी, तो बरबस ही, वह अपने-आप बोली—यह महान् और अनुपम माँ है। इसने अपने पुत्र को सर्वस्व देकर भी, उसे महान देखना पसन्द किया है। यह कहते हुए, रजनी क्षण भर को, उस माँ की सीमा में खो गयी और उसी में लीन बन गयी।

: १० :

प्रातः होते ही, आत्माराम लौट आया। उसे स्वामीजी नहीं मिले। किन्तु उसे देखते ही, माँ ने कहा—'अब मुझे बुखार नहीं है। मेरी तबीयत ठीक है।'

वहाँ से, आत्माराम फिर रजनी के पास गया। वह सो रही थी। रात को वह देर तक माँ के पास बैठी रही। किंचित् खड़ा हो, आत्माराम देखने लगा कि यह रजनी है, जैसे रूप की रानी ! वह

रजनी के समीप बढ़कर, पलंग पर बैठ गया और उसके सिर के खुले बालों पर हाथ फेरने लगा। जब उसके हाथ का स्पर्श पाकर रजनी जाग गयी और आत्माराम की ओर देखने लगी, तो तभी वह बोला—'तुम सो रही हो, मैं लौट आया। स्वामीजी नहीं मिले। अब माँ का बुखार भी उतर गया।' इतना कहते हुए वह रजनी की ओर झुक गया। वह रजनी की नींद भरी आँखों में अपनी आँखें डालकर अपूर्व ममता भरे भाव में उसे देखने लगा। उसी समय माँ ने कमरे के द्वार पर आकर उसे पुकारा।

माँ का स्वर सुनते ही, आत्माराम चौंक गया। वह तभी रजनी को छोड़कर खड़ा हो गया। उसी समय माँ ने कमरे में आकर कहा—'स्वामीजी आ गए। वह तुझे बुला रहे हैं।'

यह सुनते ही, आत्माराम माँ के साथ चल दिया। जब वह स्वामीजी के पास पहुँचा, तो वह यह देखकर अवाक् रह गया कि स्वामीजी नितान्त दुर्बल हैं और क्लिष्ट दीखते हैं। माँ ने कहा—'आत्माराम, स्वामीजी आज तुझे माँगने आए हैं। कहीं अकाल पड़ा है, बीमारी फैली है, तो उसीके लिए तुझे लेने आए हैं।'

'तब तुमने क्या कहा, माँ ?' बलात् आत्माराम ने पूछा।

'मैं तुझे दे चुकी हूँ। ऐसे पुण्य-कार्य के लिए भला कैसे रोक सकती हूँ।' माँ ने कहा—'जितना तुझ पर मेरा अधिकार है, उतना ही, स्वामीजी का है। मैंने एक हजार रुपया भी दे दिया है।'

आत्माराम ने स्वामीजी की ओर देखकर कहा—'तो चलिए, स्वामीजी ! मैं प्रस्तुत हूँ।'

स्वामीजी ने कहा—'तुम्हें वहाँ से देर में लौटना पड़ेगा, आत्माराम ! शायद कई मास लग जायें। इसलिए अपनी पत्नी से भी पूछ लो। उससे भी सलाह कर लो।'

'नहीं, स्वामीजी ! माँ का आदेश ही सब-कुछ है। मेरे लिए यही मान्य है।' आत्माराम ने कहा—'जब माँ ने मुझे जाने के लिए

कह दिया है, तो मुझे जाना होगा। आपके साथ जरूर जाना पड़ेगा।'

यह सुनकर, स्वामीजी ने आत्माराम की माँ को लक्ष्य किया। उन्होंने मुस्कराया। वह चलने के लिए उद्यत हुए। आत्माराम अपने कमरे में गया। झोले में कुछ किताबें रखीं। कम्बल कन्धे पर डाल लिया। जब चलने लगा, तो वहीं पर रजनी को आई देखकर वह बोला—'रजनी, स्वामीजी के साथ जा रहा हूँ। कहीं अकाल पड़ा है, तो मैं उसीके लिए स्वामीजी ने माँ से माँग लिया हूँ। जल्दी लौट आऊँगा।'

रजनी ने यह सुनकर, कुछ नहीं कहा। उसने जिस जिज्ञासा-भरी आँखों से आत्मा को देखा, तो उसी प्रकार, देखते रहकर, अपना मुँह दूसरी ओर फेर लिया।

किंतु आत्माराम बाहर चला गया। मानो वह रजनी की ओर से एकाएक ही, दूर हो गया। माँ के पास जाकर उसने कहा—'माँ, कल विपिन का पत्र आया था। उसने तुमसे कहा है, कुछ दिन के लिए अपनी भाभी को लेने आएगा। चाहो तो भेज देना।'

माँ ने कहा—'बहू गर्भवती है। आयेगा, तो देखा जायेगा।'

इसके बाद, आत्माराम माँ के चरण छूकर चला गया।

उसी समय, माँ ने रजनी के पास जाकर कहा—'आत्माराम जल्दी लौट आएगा, बहू! स्वामीजी का जरूरी काम था। आत्मा को उसे करना ही था। पुण्य और सेवा का काम था। तुम्हारा आत्मा ऐसे कर्म से वंचित रहे, यह भला मुझे कब पसन्द आ सकता था। इसीलिए उसे भेज दिया।'

रजनी ने माँ की बात को सुन लिया। उसने कुछ नहीं कहा। उसका पति कितनी जल्दी लौटेगा, इसका उसे पता नहीं चला। जब कई दिनों तक भी आत्माराम आता नहीं दीख पड़ा, तो रजनी का मन दुःख और चिन्ता से भर गया। इसी बीच में उसे विपिन भी कई बार याद आया। इस प्रकार नित-नित की बाट जोहते हुए चार महीने

कट गए और रजनी की कोख से एक बच्चा भी पैदा हो गया। उन दिनों रजनी प्रायः माँ से पूछती कि 'वह' कब आयेंगे ? वह कब लौट आयेंगे, माँ ? किन्तु माँ को ही क्या पता था कि आत्माराम कब आएगा, और कब तक नहीं आयेगा ! और उसे अब यह भी अच्छा नहीं लगता था। विशेषकर अब तो और भी रुचिकर नहीं लगता था कि उसने क्यों अपने आत्मा का विवाह कर दिया। वह अब तो सेवा-क्षेत्र में उतरा है। जीवन में पहली बार तो वह स्वामीजी के साथ सेवा करने गया है, और बहू है कि जैसे उसके पुत्र के मार्ग का काँटा ! जिसने नित्य ही, यह कहना और पूछना आरम्भ कर दिया कि 'वह' कब आयेंगे, कब तक न आयेंगे, तुम्हारे पुत्र !

फिर भी, माँ रजनी को सान्त्वना देती और कह देती कि अब आत्माराम शीघ्र लौट आएगा। अब वह एक-न-एक दिन यहीं दिखाई देगा।

और वह माँ थी कि जैसे निरी जड़, पत्थर; कि जो रजनी को यह भी न बता पाती कि स्वामीजी आए हैं। वह आते हैं। वह आत्माराम की माँ को बता जाते हैं, कि आत्मा कहाँ है। वह अब क्या कर रहा है। कहीं भूखों के लिए झोली डालकर भीख माँग रहा है, कहीं रोगी भिक्षार्थियों की सेवा में लगा है। आत्माराम कहीं मृतकों को कन्धे पर उठाकर दाह-संस्कार कराता है और कहीं पुत्र-हीन, पति-हीन बनी हुई नारी को समझाने का प्रयत्न करता है। उन्हें संसार की और मनुष्य जीवन की असारता बताता है। इस प्रकार रजनी का बच्चा भी कई मास का हो गया। वह घिसटने लगा। माँ और दादी को तंग करने लगा।

फलस्वरूप, माँ का आश्वासन पाकर भी, रजनी उदास और खिन्न थी। उसे नहीं सूझता कि वह कैसे जीवन की दासी बन गयी। कौन-से जाल में फँस गयी। इधर उसे विपिन भी अधिक याद आने लगा। रजनी जब अधिक आतुर और बेचैन बनती, तो कहती, पिता की इच्छा में ही क्या झूठ था ! विपिन धनवान, पूरा संसारी ! निदान, मन की उस

स्थिति में ही रजनी की अधिक इच्छा होती कि उसके सामने विपिन आए। वह उसे देखे। पर इधर तो उसका कोई पत्र भी नहीं आया। इसी विचार में, एक दिन रजनी ने विपिन को पत्र लिखा :

विपिनबाबू,

'दिखता है, तुम हमें भूल गए! तुम्हारे भाई तो कई मास से बाहर हैं। वह सेवा-कार्य में व्यस्त हैं। एक बार आओ न, तुम्हारी यह भाभी तुम्हें अनुरोधपूर्वक बुलाती है।'

तुम्हारी—रजनी।

पत्र भेज दिया गया। माँ ने पूछा—'किसको पत्र लिखा ?'

रजनी ने कह दिया—'विपिनबाबू को।'

'बुलाया है न ? उसे आना चाहिए। वह आत्माराम के विवाह से फिर नहीं आया।'

रजनी ने इस बात पर अपना मत नहीं दिया। कमरे में जाकर उसने अपने-आप कहा—विपिन को पत्र दिया है, तो माँ इसे अच्छा नहीं समझेंगी। माँ जरूर मन में कुछ कहेंगी। यह कहते ही, रजनी ने फिर कहा—उँह, अच्छा न भी होगा, होगा! विपिन को आना चाहिए। मैं उससे कहूँगी, तुम मुझे ले चलो। मैं कुछ दिन बाहर रह आऊँगी। घूम आऊँगी। कुछ दिन के लिए जेलखाने से मुक्ति पा जाऊँगी, मैं.........!'

चौथे दिन विपिन का उत्तर आया—

भाभी,

'तुम्हारा पत्र मिला। इन दो लाइनों को पढ़कर मुझे लगा कि आत्मा भाई के न होने पर तुम चिन्तित हो, और उदास हो। और भाभी, आत्माराम को तो मैं जानता हूँ। वह भोग और गृहस्थ की वस्तु नहीं है। वह तो अपनी माँ द्वारा दूसरे रास्ते पर छोड़ दिया गया है। मेरे सामने कुछ अधिक काम हैं। इनके समाप्त होते ही, तुम्हारे पास आऊँगा।

आत्मा भाई एक दिन यहाँ आये थे। वह अकाल-पीड़ितों के लिये चन्दा करके ले गये। वह पूरे बाबाजी बन गये हैं। हाथ भर की बढ़ी हुई दाढ़ी! घुटनों तक की धोती और गाढ़े की मिरजई। सच, अब ऐसे हैं, तुम्हारे आत्माराम! मैं सोचता हूँ जब आत्मा भाई इस प्रकार की इच्छाओं में लीन थे, तो उन्हें विवाह नहीं करना था। लेकिन अपना-अपना लक्ष्य है। मैं तो चाहता हूँ कि जो रुपया अपनी वकालत से उपार्जित करूँ, उसे दान दे दूँ। आत्माराम इस पक्ष में नहीं हैं। वह तन-सेवा को अधिक महत्त्व देते हैं। अम्माजी को प्रणाम। कुमुद को प्यार!'

तुम्हारा—विपिन

माँ ने पूछा—'कब आएगा, विपिन? उसी का पत्र है ना?'

रजनी ने रूखे भाव से कह दिया—'वह जल्दी नहीं आयेगा। जाने कब आयेगा!'

माँ बोली—'बड़े घर का है। काम-काजी आदमी है।'

यह सुनकर रजनी ने केवल 'हूँ' कर दिया और कुछ नहीं कहा। उसने तब अपने-आप ही प्रश्न किया—जाने कब आयेगा, विपिन! कब नहीं आयेगा!

लेकिन दूसरे दिन के प्रातः में रजनी जैसे ही, पलंग से उठकर कमरे से निकली, तो वह यह देखकर क्षण भर के लिये विस्मय में पड़ गयी कि आत्माराम माँ के पास बैठा है। बात कर रहा है। वह दूध पी रहा है। उसने रजनी को देखा और उसकी ओर बढ़ गया।

रजनी ने झुककर आत्माराम के पैर छू लिये। गोद में लिया बच्चा उसकी ओर बढ़ा दिया। उसने अपनी भर आई आँखों को भी आत्मा की ओर उठा दिया।

बच्चे को लेते हुए, आत्माराम ने माँ से पूछा—'इसका क्या नाम रखा, माँ?'

माँ ने कहा—'कुमुद।'

आत्माराम ने फिर पूछा—'विपिन नहीं आया, माँ ?'

माँ ने बताया—'कल उसका बहू के पास पत्र आया। लिखा, जल्दी आयेगा।'

आत्माराम ने कहा—'उसने अकाल-पीड़ितों के लिये एक हजार रुपया दिया। वह कहता था, मैं सब दान में दे दूँगा।' यह कहकर आत्माराम कमरे में चला गया। उसके पीछे ही, रजनी ने आकर कहा—'इतना भी नहीं, जो पत्र देते! आना तो क्यों चाहते!' इतना कहते ही, रजनी की भरी आँखें गालों पर ढुलक आयीं। वह फुफक कर रो पड़ी।

यह देखते ही, आत्माराम ने स्वयं आर्त्त बनकर, रजनी की ओर देखा। उसने कहा—'कैसे पत्र देता, रजनी! सिर पर बहुत काम था। सोचता था, मैं स्वयं तुम्हारे पास पहुंचूँ! मुझे अब भी काम है। अभी कई दिन के लिये और जाना है। स्वामीजी नें केवल मिलने भर को कहा है। कदाचित् माँ के अनुरोध पर ही, उन्होंने यहाँ तक आने दिया है।'

रजनी ने अपनी रोती हुई, वे क्षुब्ध आँखें ऊपर उठा दीं—'आज ही! तुम्हें आज ही जाना है, क्या!'

रजनी की उन्हीं आँखों को देखकर, कठिनाई से, आत्माराम ने कहा—'हाँ, रजनी, आज ही! मुझे आज ही जाना है।' कहते हुए वह मुस्कराया। बच्चे की ओर देखकर हँसा। वह उसे दुलारने लगा। अनोखी ममता के साथ उसे देखने लगा।

उसी समय रजनी ने कहा—'आज न जाना। देखते हो, मेरा क्या हाल है। तुम्हें अब साल भर होने आया है। ऐसे हो, तुम निरे पत्थर!'

इतना सुनकर ही, आत्माराम नें रजनी को अपने पास खींच लिया। वह उसके सिर पर प्यार के साथ हाथ फेरने लगा। रजनी को उसी भाव से देखते हुए उसने कहा—'रजनी, मैं तुम्हें नित्य याद करता

था। मैं मुर्दा उठाते समय और किसी रोगी की परिचर्या करते समय भी तुम्हारी स्मृति को दोहराता था। मैं तुम्हें दान माँगते समय भी नहीं भूलता था, रजनी !' इतना कहते हुए उसने रजनी का सिर अपनी छाती से लगा लिया। वह उसके रेशम सरीखे बालों पर हाथ फेरते हुए, उससे बोला—'मैं सोचता था, तुम यही कहोगी। तुम मुझे पत्थर ही समझोगी ! तुम······!'

किन्तु तुरन्त ही, रजनी ने आहत स्वर में कहा—'ऐसे तो मैं मर जाऊँगी ! मैं नहीं जिऊँगी। और तुम हो, जो न देखते हो, न देखने का नाम लेते हो। मै कहती हूँ, तुम अपने रास्ते के इस काँटे को तोड़ दो। तुम इस रजनी को मार दो। फिर स्वतन्त्र होना। तुम फिर निर्बाध बनकर कहीं भी जाना और सेवा करना। माँ का या स्वामीजी का आदेश मानना। ऐसे तो मैं घुटती हूँ। मैं अपने सामने ही, प्राणों को रिस-रिसकर और घुट-घुटकर मरता हुआ देखती हूँ··· मैं अपने प्राणों की छटपटाहट सुनती हूँ······!'

आत्माराम गम्भीर था। उसने रजनी को छोड़ दिया। किन्तु रजनी के मन में कितनी गहरी पीड़ा थी, इसका भी उसने अनुभव किया। उसने अपना अपराध भी स्वीकार किया। इसीलिये, फिर आलोड़ के साथ, रजनी की ओर झुककर बोला—'रजनी, तुम जानती और समझती तो हो, कि मैं भारी नहीं हूँ। मैं इतनी क्षमता नहीं पाये हूँ कि तुम्हारे आँसू देख लूँ। मैं चुपचाप ही इन बातों को पेट में उतार लूँ। विश्वास करो, अब जल्दी लौट आऊँगा। मैं फिर तुम्हारे सामने रहूँगा, मेरी रानी !'

उसी समय, रजनी ने स्वयं अपना मुँह आत्माराम की छाती से लगा दिया। उसी अवस्था में कहा—ओफ ! एक-एक दिन मेरा एक-एक बर्ष के समान आया और गया। मुझे कितना कष्ट हुआ। इस एक वर्ष के भीतर मैंने क्या-कुछ नहीं सोचा और विचारा ! पर तुम्हें ध्यान थोड़े ही है कि स्त्री को धन नहीं चाहिये। इसे कोई वैभव भी

नहीं चाहिए ! इसे अपना पति चाहिये ! और तुम हो कि जो माँ के कहे पर, इस रजनी का यह अधिकार भी छीनते हो। तुम······।' यह कहते रजनी का फिर गला भर आया। उसने आंसू भर आयी आँखों के साथ, आत्माराम की छाती पर जैसे मुँह को गाड़ देना चाहा।

और उस समय आत्माराम मौन था। उसका मुँह कमरे के बाहर की ओर उठा था। एक हाथ रजनी के सिर पर रखा था। निश्चय ही, वह अपने को अपराधी मान रहा था। अतएव, वह कुछ कहने में भी अपने को असमर्थ पा रहा था।

उसी समय, माँ ने कमरे के बाहर द्वार पर आत्माराम को आवाज दी। फिर वह अन्दर आई। माँ के आने से पूर्व ही, रजनी सँभल गयी और सीधी खड़ी हो गयी।

कमरे में आकर माँ ने कहा—'अब जाओ, आत्माराम ! धूप मत बढ़ाओ ! तुमने बच्चा देख लिया। अपनी बहू—!'

उसी समय, रजनी ने बलात् माँ के पैर पकड़ लिये। उसने भारी स्वर में, दीनता और अवशता के साथ कहा—'इन्हें आज ही भेज दोगी, मा ! आज रोक लो।'

माँ ने कहा—'नहीं, बेटी ! इसे अभी जाना चाहिये। तूने देख तो लिया, ना !'

रजनी ने अपना मुँह धोती के आँचल से ढाँक लिया। उसने सुबकते हुए कहा—'आज साल भर में आये हैं, माँ !'

उस समय आत्माराम मौन था। उसका मुँह बाहर की ओर था। वह जैसे उस विषय के प्रति उदासीन था। किन्तु माँ ने उसी की ओर देखकर कहा—'अब यह बहुत जल्दी लौट आयेगा। क्यों आत्मा ?'

आत्माराम जैसे चौंक गया। वह आसमान से पृथ्वी पर गिर गया। चकित भाव में माँ की ओर देखकर बोला—'हाँ, माँ !'

'तो तू जा क्यों नहीं रहा है ! क्यों खड़ा है !' माँ ने मानो

रोषपूर्ण बनकर कहा।

लेकिन इतना सुनकर भी, आत्माराम पूर्ववत् खड़ा था। वह कभी माँ को देखता और कभी रजनी की उन पीड़ित आँखों को, कि जिनमें दीनता और आकुलता के अतिरिक्त और कुछ नहीं था।

उस अवस्था में रजनी ने फिर कहा—'इन्हें एक दिन के लिए रोक लो, माँ! बस एक दिन के लिये!'

किन्तु तब जैसे माँ ने रजनी की बात को नहीं सुना। अथवा सुनकर भी अनसुनी कर दिया। उसने क्रोध के साथ आत्माराम को घूरा। उसे गहरी दृष्टि से देखते हुए कहा—'अरे, तू मुझे भी लज्जित करेगा, क्या! इतने दिनों की मेहनत पर पानी फेरेगा! बहू के पास आते ही, इतने दिन की तपस्या को भूल जायेगा! तू भी कुत्ता बनेगा! तू··· रे, आत्मा!'

आत्माराम ने कहा—'मैं जाता हूँ, माँ! अभी जाता हूँ।'

किन्तु माँ ने जमीन पर अपना पैर पटका। उसने तभी आहत हुए स्वर में कहा—'अरे, तू कहाँ जाता है। दिखता है, तू नहीं जाना चाहता। तू इस बहू के रूप-जाल में फँस गया है! इसके आँसुओं में बह गया है।' वह बोली—'न जाता है, तो न जा! तू मर जा!'

आत्माराम ने माँ की ओर देखा। उसके क्रोधपूर्ण लाल हुए मुँह को लक्ष्य कर, उसने द्वार की ओर बढ़कर कहा—'तुम रुष्ट मत बनो, माँ! मैं जाता हूँ।' और वह चला गया।

उसके पीछे ही, माँ ने रजनी की ओर देखा। उसकी रोती हुई आँखें देखकर, उसने कहा—'मेरी बहू, आत्मा अब जल्दी लौट आयेगा। भला ऐसे रोते हैं—छिः! ऐसे पति पर गर्व करते है। उसे और भी जाने के लिये सहारा दिया करते हैं, बेटी! तू अपने पति पर गर्व कर। जीवन की सौगात मानकर सन्तोष कर!'

रजनी ने अपना मुँह ऊपर उठाया और कहा—'वह तुम्हारे हैं, माँ! कभी आयें···कभी जायें!'

यह सुनते ही माँ ने रजनी के सिर पर हाथ रखा। उसे सहलाया। उसने कहा—'नहीं, बहू! आत्माराम अब तेरा है। वह मैंने तुझे सौंप दिया है। अपना पुत्र देकर, मैंने तुझे अपना सर्वस्व दे दिया है!' यह कहते ही, माँ ने बच्चे को गोद में उठा लिया। उसकी ओर देखते हुए, उसने हर्षित हुए स्वर में कहा—'क्यों रे, कुमुद! ठीक है, ना! तूने भी अपने पिता की गोद में बैठ लिया। तू भी उस बाबाजी बने हुए पिता को देखकर हँस लिया। मेरा राजा कुमुद! मेरा बच्चा!'

उस समय रजनी माँ की बात को सुनकर भी नहीं सुन रही थी। वह उदास और खिन्न बनी थी। वह तब हरे आसमान के नीचे दूर पर उड़ते हुए एक सफेद पक्षी को देख रही थी और जैसे उसी के साथ उड़ी जा रही थी, उड़ी जा रही थी...... !

: ११ :

उस दिन रजनी दिन भर उदास और मलिन मुँह किये रही। माँ भी यह बात नहीं भूल पायी कि रजनी ने आत्माराम के जाने पर रोते-रोते कहा—'वह तुम्हारे पुत्र हैं, माँ! कभी आवें...कभी जावें!' दिन में कई बार माँ को अपनी बहू का वह वाक्य याद आया। किन्तु इसमें अपवाद भी क्या था! आत्माराम अवश्य ही उसका पुत्र था। पुत्र को माँ के आदेश का पालन करना था। उसकी आज्ञा पर ही, आना था और जाना था। लेकिन उसके पुत्र की बहू ने जिस टेक पर खड़े होकर उलाहना और ताना देकर अपनी बात कही, तो माँ के लिए वह कदापि रुचिकर नहीं थी। वह असहनीय थी। उसे यह अच्छा नहीं लगा कि उसका आत्मा जब कर्म-क्षेत्र में उतरा हो, तो उसी की बहू द्वारा उसे रोकने की चेष्टा की जाय। माँ ने तो

मास अपनी कोख में रखकर आत्मा को जन्म दिया, पाला-पोसा और बड़ा किया, तो आखिर किसलिए ? आज के लिए तो ! इसी काम के लिए तो ! और यह रजनी है, —उसकी बहू —यह रोती है। यह अपने पति के जाने पर दुखी होती है। इतना सोचते हुए, आत्माराम की माँ का माथा ठनक गया। उसे अनुभव हुआ कि यह अच्छा नहीं हुआ। इस विद्रोह की आग से तो यह घर जल जायगा ! आत्माराम स्वयं नष्ट हो जायगा। वह कब तक मेरा रहेगा। उसे पत्नी का बनना पड़ेगा। अब तो आत्मा की पत्नी का अस्तित्व ही इस घर के काम आयेगा। बहू की आशा और दुराशा से ही इस घर का उत्थान होगा···पतन होगा !

सन्ध्या आते-आते माँ ने रजनी की बात का विरोध नहीं किया। उससे न कुछ कहा, न सुना। किन्तु रजनी जब दिन भर ही उदास रही, एक क्षण के लिए भी नहीं हँसी, न बोली, तो तब, माँ से नहीं रुका गया। उसका अपना मन डोल गया। उसने अपने-आप ही कहा—रजनी युवा है। सबकी तरह, इसे भी अपना पति प्यारा है। इसे भी पति को दूर जाता देख, रोना आता है। अभी तो ब्याह कर आयी है। अभी ठीक से अपनी सोहाग की रातें भी पूरी नहीं कर पायी है।

यह सोचते ही, माँ रजनी के पास गयी। उसके कक्ष में प्रवेश कर, पलंग के पास जाकर बोली—'अब तो उठो, बहू ! रात आ गयी !'

माँ का वह मृदुल बोल सुनकर, रजनी उठ बैठी। उसके मुँह को देखकर माँ बोली—'तुम आत्मा के जाने से दुःखी हो ! तुम इसीसे उदासीन बनी हो ! दिन भर स भूखी हो। कहो तो, आत्माराम को बुला दूँ ? आदमी भेज दूँ ?'

यह सुनते ही, रजनी ने माँ की ओर देखा। माँ ने उसकी ओर देखते हुए, अधीर हुए स्वर में फिर कहा—'बहू, मेरी कोख से एक

ही पुत्र जन्मा। जिसे मैंने इसी दिन के लिये पाला-पोसा। वही पुत्र मैंने तुमको सौंप दिया। मैंने सोचा था कि घर-गृहस्थी बनकर रुपया तो सभी कमाते हैं। स्वार्थ की साधना करते हैं। पर मेरा पुत्र दाम्पत्य-जीवन में बँधकर भी लोक-कल्याण की कामना करे—अपना जीवन दे! परन्तु अब देखती हूँ कि तुम्हें यह मार्ग पसन्द नहीं। तुम नहीं चाहतीं कि तुम्हारा पति पीड़ितों, अपाहिजों और कंगालों के आशीष पाकर अपना जीवन पखारे! उस गंगा में गोता लगाये! तुम अपने पिया को वासना की सड़ाँद में रखना पसन्द करती हो। सो, बहू! मैं तुम्हें रोक नहीं सकती। तुम्हारे अधिकार पर आघात भी नहीं कर सकती। मैं तो केवल निवेदन कर सकती हूँ कि तेरा पति इस जीवन में जिन आशीषों को पा रहा है, उससे, तेरा भी, उसका भी और इस घर का भी पाप धुल रहा है···आने वाले जीवन का मार्ग प्रशस्त हो रहा है। क्योंकि, मैंने तो समझा, इन्सान की यही कमाई श्रेष्ठ है। सुन्दर नारी के पाश में बँधना, सोने-चाँदी के ढेर लगाना, यह तो जीवन का सबसे बड़ा कलंक है··· भ्रान्ति है!' यह कहते हुए आत्माराम की माँ का स्वर अवरुद्ध हो गया। उसने क्षणिक रुककर फिर कहा—'हाँ, मेरी प्यारी बहू! अब इस घर में तुम्हारा आदेश ही काम करेगा। तुम्हारी इच्छा पर ही, आत्माराम चलेगा। मैं माँ हुई तो क्या! मैं अब बुढ़िया हुई! मैं अब अपंग हुई! अपने जिन अरमानों को लेकर मैंने आत्मा को सँजोया था, दिन और रात भगवान् से निवेदन किया था, दिखता है, वह अब नहीं फलेगा! वह मेरा अरमान खण्ड-खण्ड हो जायगा! आत्माराम अब मेरी बात नहीं सुन पायेगा। तुम्हारे आँसू देखकर, वह नहीं चल सकेगा।' इतना कहा और माँ ने अपने आँचल से मुँह ढँककर रोना शुरू कर दिया। उसी अवस्था में माँ ने कहा—'मेरा आत्मा, तुम्हारे आँसुओं में बह जायगा! उसकी पूजा नष्ट हो जायगी। आत्माराम कोमल है, वह ऐसे क्या स्थिर रह सकेगा,—कदापि नहीं!'

इतना देख-सुन, रजनी के मन का भाव एकाएक दब गया। उसमें माँ के प्रति जो उपेक्षा और लाँछना का कड़वा सम्मिश्रण पैदा हो गया, वह तब नहीं रहा। उसने माँ के पैर पकड़ लिए और स्वयं भारी हुए स्वर में कहा—'मेरी माँ ! मुझे क्षमा करो।'

माँ ने कातर स्वर में कहा—'नहीं, बहू ! तू जो-कुछ कहती है, ठीक कहती है। तू अपने पति और उसकी माँ के समक्ष जिस चाहना को रखती है, वह असंगत नहीं है। किन्तु इस माँ की तो तुझसे यही कामना है कि यहाँ आकर सब अपना-अपना काम करते हैं। सभी कुछ-न-कुछ देते हैं और लेते हैं। इस माँ ने जो दिया, इससे जो देते बना, वह अपने आत्मा को दिया। वही आत्मा मैंने तुम्हें सौंप दिया। किन्तु जब अपना पुत्र तुम्हें दिया था, तो मैंने चाहा था कि तुम्हारे हाथों में मेरा पुत्र सुरक्षित रहेगा। तुम्हारे हाथों में जाकर वह मेरा भी बना रहेगा। परन्तु अब समझा मैंने कि वह मेरा अन्धा विश्वास था। बेकार था। परिस्थिति के अनुकूल नहीं था। परन्तु···पर···!'

रजनी ने उसी समय, तड़पकर, माँ के पैरों को और जोर से पकड़कर कहा—'वह अब भी तुम्हारे हैं, वह तुम्हारे पुत्र हैं, माँ !'

'हाँ, बहू !' माँ ने अपनी आँखों को पोंछ लिया। उसने कहा—'मैंने आज तक यही समझा था। मुझे गर्व भी था। पर वह तो आज चूर-चूर हो गया। जब तुम रोती हो, अपने पति के लिए अधीर होती हो, तो यह मुझसे नहीं देखा जाता। यह मुझसे नहीं सहा जाता, बहू ! मैं भी माँ पीछे हूँ पहले स्त्री हूँ। मैं स्त्री की व्यथा समझती हूँ। पर जब माँ की स्थिति में आती हूँ, तो सोचती हूँ, आखिर तुम अपने पति को क्या दे पायी हो ! तुम उससे क्या कह पायी हो ! अब तो तुम भी माँ हो, बहू ! यह कुमुद है, तुम्हारा पुत्र है। एक दिन तुम्हें भी इसे कुछ देना है। भोग और वासना के जीवन के पार भी कोई जीवन है। बताओ, उसे तुमने देखा है ? तुमने

उसे समझा है ? और तुम्हारा जीवन तो बड़ा है। यह यौवन की आँधी क्या टिकने वाली है ! यह भी जाने वाली है।···तो माँ बनकर, तुम आत्मा सरीखे पति की पत्नी बनकर, इसे समझो, बहू ! तुम अपने जीवन की इसी भावना पर टिककर देखो कि प्रणय-वासना की सड़ाँद के पीछे जो सुनहरा जीवन है, वह कितना ज्योतिर्मय है। तब तुम्हें आज सरीखा अभाव नहीं दिखायी देगा। तुम्हारी वही निधि है। तुम्हारे जीवन की वही अनुपम भेंट है।' कहते हुए माँ ने रजनी को ऊपर उठा लिया।

रजनी ने दीन भाव में कहा—'मुझे यही स्वीकार है, माँ !'

माँ फिर कहने लगी—'मैंने आत्माराम के लिए सभी-कुछ किया। कोई अनुष्ठान नहीं छोड़ा। बहू, मैंने तेरा पति बड़े सम्भालकर पाला। उसकी मुक्ति के लिये मैंने सभी-कुछ किया। उसी निमित्त मैंने आज तुम्हारे पैर पकड़ना भी पसन्द किया······।'

रजनी ने फिर रोकर कहा—'माँ, जो-कुछ नहीं कहना, आज तुम वह भी कह रही हो। देखो तो, तुम अपनी बहू से कह रही हो !'

माँ ने कहा—'मेरा आत्मा अपने पथ पर हो, इसके लिये मुझे सभी-कुछ सूझता है, बहू ! यह भी······कुछ और भी !' वह बोली, 'मैं यह भी चाहती हूँ कि वह तुम्हारा पति रहे—पति-धर्म का पालन करता रहे। पर इस धर्म से जो बड़ा धर्म है, वह उसे भी पालने की क्षमता पाता रहे।'

रजनी ने कहा—'माँ, मेरी ओर से उन्हें मुक्ति है। पूर्ण स्वतन्त्रता है।'

माँ ने प्रेम और अपनत्वता के साथ रजनी की ओर देखा। उसने वहाँ से जाते-जाते कहा—'अब खाना खाओ। अब तुम पहले के समान हँसो।'

किन्तु माँ के जाते ही, रजनी फिर झटका-सा खाकर पलंग पर बैठ गयी। उसी अवस्था में बोली—'यह पुण्य है या प्रायश्चित्त ! जाने

इस माँ का क्या ध्येय है ! अब जाने इन्हें क्या करना है ।' इतना कहते हुए रजनी सहम गयी। वह तब कुछ देर बाद अपने-आप ही लजा गयी । वह इस प्रकार, एकाएक ही, अपने हृदय के गह्वर में डूब गयी । उसीमें लीन हुई, वह फिर आत्माराम की कल्पना करने लगी। वह चाहने लगी कि उसके पुत्र का पिता आये । वह अपने बच्चे को गोद में ले । आश्चर्य कि उस क्षण के बाद ही रजनी प्रसन्न बन गयी । दिन-भर की क्लान्त और उदास बनी हुई, तब हर्ष तथा प्यार भरी भावना से भर गयी । तभी वह कुमुद की ओर देखकर बोली—'अरे, क्या तू भी अपने पिता के समान दानी और त्यागी बनेगा···तू भी साधु बन जायेगा ! तू भी अपनी बहू को ऐसे ही तड़पायेगा··· वियोगिनी बनायेगा······!'

किन्तु कुमुद माँ की ओर देख रहा था और हँस रहा था।

यह देख, रजनी ने उसे गोद में उठा लिया। उसने तभी माँ के पास जाकर कहा—'माँ, तुम मुझे भी उन्हीं के पास भेज दो । मुझे भी उनका हाथ बँटाने दो ।'

उस समय माँ आसन पर बैठी हुई माला फेर रही थी। रजनी की ओर देख, वह हर्ष के साथ बोली—'तेरा यह गृहस्थ ही कम सेवा-क्षेत्र नहीं है, बहू ! तू इसीकी सेवा कर। तू अब इसीकी देख-भाल कर। देख तो, जमींदारी है, लेन-देन है, यह घर है । यह सब आत्मा नहीं समझेगा । यह सब तुम्हींको देखना और समझना है ।'

रजनी ने हँसते हुए कहा—'गृहस्थ का दायित्व तो उन्हें भी समझना चाहिए, माँ ! उन्हें मुझसे अधिक जानना चाहिए ।'

इतना सुनकर, माँ ने माला रख दी । वह रजनी की ओर देख-कर बोली—'बहू, पुरुष को घर के बाहर भी देखना पड़ता है। उसे धर्म और समाज के कामों में भी योग देना पड़ता है । और मेरा आत्मा तो भाग्यशाली है । उसने समझदार और पढ़ी-लिखी बहू पाई है । तब वह क्यों न बाहर की सेवा करे । तब वह क्यों, घर की चहारदीवारी

में बैठा रहे ।'

रजनी ने फिर आलोड़ के साथ कहा—'माँ, मुझे भी जाने दो। उनका काम देखने दो। उनके पैरों से अपने पैर मिलाने दो।'

माँ ने कहा—'हां, हां, तू भी जाना। अब की बार आत्मा आये तो तू भी बाहर घूम-फिर आना।'

उसी समय बाहर से आवाज आई—'आत्मा की माँ!'

सुनते ही, माँ ने कहा—'स्वामीजी आये हैं, बहू! उनके लिए आसन बिछा दो!'

स्वामीजी भीतर आ गए। बहू ने उनके चरण-स्पर्श किए। स्वामीजी ने कहा—'आत्माराम मुझे मिल गया। दोपहर से पूर्व ही, मेरे पास पहुँच गया।' और उन्होंने तब रजनी की ओर देखकर कहा—'आज आत्माराम उदास था। बेटी, उससे तुमने तो कुछ नहीं कहा?'

रजनी ने इतना सुना और माँ की ओर देखा।

माँ ने कहा—'नहीं, स्वामीजी! भला बहू को क्या कहना था! आत्मा वैसा ही है। अपने-आप खुश होता है और अपने-आप उदास बन जाता है।'

'उसने बहुत सेवा की, आत्मा की माँ! आशा से अधिक सहायता दी!' स्वामीजी ने कहा।

माँ ने कहा—'यह आपके आशीर्वाद का फल है।'

स्वामी जी ने कहा—'मैं तुमसे पाँच सौ रुपये और लेने आया हूँ। तुम्हारे पास हों तो दो। मुझे प्रातः ही अन्न के लिए देने हैं।'

इतना सुना, तो माँ ने एकाएक कुछ नहीं कहा।

स्वामी जी ने कहा—'मैं समझा, तुम्हारे पास नहीं हैं। तो दूसरी जगह जाऊँगा। मैं आजकी रात में ही रुपया पाने की चेष्टा करूँगा। ये पाँच सौ रुपये भी एक-एक और दो-दो लोगों की बाँट में आयेंगे। आत्माराम कल आ जाएगा। सचमुच, उसने बड़ा त्याग किया। महान् कर्म सम्पादित किया।'

माँ ने रजनी की ओर देखकर कहा—'अब रुपया मैं नहीं रखती, रजनी रखती है। यही आय-व्यय का लेखा समझती है।' वह बोली—'बहू तेरे पास रुपया हो, तो स्वामी को दे दो। यह इस अवस्था में कहाँ जाएँगे। इस कष्ट को दूर कर दो।'

इतना सुनकर, रजनी उठी और अपने कमरे में गयी। जब वह लौटकर आई, तो पाँच सौ रुपये उसके हाथ में थे। जब वह रुपये उसने स्वामीजी को दिये, तो कहा—'यह मालगुजारी के आए थे, आपके अर्पण कर दिये।'

स्वामी जी ने कहा—'बहू, तुम्हें असुविधा हो तो मत दो।'

रजनी ने कहा—'नहीं, अब ले जाइये। अपना काम कीजिए।'

इसके उपरान्त स्वामीजी उसी समय वहाँ से चले गये।

माँ ने कहा—'बहू, सरकार के खजाने में क्या जायेगा? अमीन आएगा, तो कुर्की करेगा!'

रजनी ने कहा—'तुम चिंता न करो, माँ! मैं अपनी चीजें बेच दूँगी। कुर्की न आने दूँगी।'

यह सुनकर, माँ ने रजनी की ओर देखा। उसने जैसे अपना अपराध स्वीकार किया। क्योंकि उसी के कारण घर में पैसा नहीं रहा। उसने रजनी की उन सलोनी आँखों को देखते हुए कहा—'बहूरानी, अब तक हुआ, सो हुआ, पर अब यह मुझसे नहीं होगा। अपनी फूल-सी सुकुमार बहू को पैसे के लिए चिंतित देखना मैं सहन न करूँगी। आज तुम इस घर के लिए अपनी चीज बेच दोगी, कल को·· ···!'

रजनी ने छूटते ही कहा—'मैं इस घर के लिए अपने को भी बेच दूँगी, माँ!'

'बहू! मेरी बहूरानी! न, न, मैं अब तुझे यह नहीं करने दूँगी। मैं अपनी आँखों के सामने तुझे चिंतित नहीं देखूँगी। तुझे हँसती हुई देखूँगी।' और तभी उसने दूसरी ओर देखते हुए कहा—'मैं भी कैसी अन्धी हूँ! जानती-पूछती हुई भी, तुम्हें नहीं रोक पाई। स्वामीजी

का मुँह देखकर कुछ भी नहीं कह सकी ।'

रजनी ने कहा—'स्वामीजी महान् हैं । वह पुण्यात्मा हैं ।'

यह सुनते ही, माँ ने फिर रजनी की ओर देखकर कहा—'तेरा पति जैसा-कुछ दीखता है, वह इन्हीं स्वामीजी की कृपा है ।'

रजनी ने कुमुद को माँ की गोद में दे दिया । अपने कमरे में जाकर उसने मेज पर रखे चित्रों का अलबम उठा लिया । उसमें विपिन के चित्र थे । उन चित्रों में विपिन विभिन्न पोशाकें पहने हुए था । किन्तु आत्माराम प्राय: एक-सी पोशाक में था । सभी में सरल भाव से मुस्करा रहा था । सब चित्र देखकर, जब रजनी ने एलबम रख दिया तो अपने-आप ही, एकाएक कहा—माँ इन्हें योगी बनाना चाहती है । देश-सेवक बनाना पसन्द करती है । वह इसी परम भावना में अपने पुत्र को देखना चाहती है । उसने क्षण भर रुकने के बाद ही, बाहर के शून्य आकाश की ओर देखा । उसने फिर कहा—पुत्र को माँ के आदेश पर चलना है । उन्हें माँ का कहना ही अक्षुण्ण और सत्य दिखाई देता है । यह कहते हुए रजनी के मन की आँखें भर आईं । वह खिड़की का सहारा लेकर बोली—एक मैं हूँ कि जो अपनी इच्छा से इस घर में आकर बैठी हूँ । रजनी ने सिर को हथेली पर रख लिया और कहा—और मैं स्त्री हूँ । मैं एक बच्चे की माँ हूँ । जाने मैं कैसी स्त्री हूँ ! कैसी माँ हूँ ! सच, निरी दुर्भागिनी ! निरी हतभागिनी !

इस प्रकार रजनी एकाएक उमस से भर गयी । वह उसी क्षण विपिन का ध्यान कर फिर अपने-आप बोली—विपिन भी नहीं आया ! शायद उसने नहीं आना चाहा ! वह अब क्यों आयेगा ! सच, वह जाने कितना गहन और गूढ़ दिखाई दिया । उसने जो कुछ पाया, जितना पा सका, उसे अपने हृदय की गहराई में लेकर चल दिया । वह फिर नहीं आया ! यह कहते हुए रजनी ने लम्बी साँस भरी और कहा—अरे, विपिन बाबू ! तुम ! तुम ! निरे भोले कहीं के ! तुम रजनी को पाकर भी न पा सके ! इसे देखकर भी नहीं देख सके ! और तुमने अभी तक

अपना विवाह भी नहीं किया है। शायद यह व्यापार पसंद नहीं किया। उफ़ ! तुम जाने कैसे हो ! प्रेम के भूखे और निरे दीन ! तुम अब भी ऐसे ही बने हो !

तभी रजनी ने सामने के खुले अन्तरिक्ष की ओर देखकर कहा—तुम आओ, विपिन बाबू ! आओ ! तुम एक बार तो आओ, अपनी इस दुर्बोध और न समझी जाने वाली भाभी के पास ! तुम इसकी सुनो, अपनी कहो !

उसी समय माँ ने आकर कहा—'यह कुमुद रो रहा है, बहू ! इसे दूध दो !'

रजनी ने बाँह फैलाकर कुमुद को ले लिया। उसे छाती से लगा लिया। अपनी छाती के एक स्तन को उसके मुँह में देते हुए, सामने की ओर देख, जैसे तब उसके मन में कुछ नहीं था—कुछ नहीं ! उस समय वह केवल माँ थी और उसका बच्चा छाती का दूध पीने में लग गया था।·········

: १२ :

दूसरे दिन के प्रातःकाल में आत्माराम घर लौट आया। जब आया, तो उसके कुछ देर बाद ही, कुमुद को गोद में लेकर बैठ गया। उसी समय माँ ने हँसते हुए पूछा—'अरे, कुमुद भी तुझे याद आया ?'

यह सुनकर, आत्माराम केवल मुस्कराकर रह गया। वह तभी अपने कमरे में चला गया। उसके पीछे ही, रजनी ने आकर कहा—'तुमने माँ को बताया नहीं। अब बताओ, सच, तुम्हें कुमुद याद आया अथवा नहीं ?'

उस अवस्था में आत्माराम ने रजनी की ओर देखा। उसकी हँसती

हुई उन सलोनी आँखों का स्पर्श किया। उसने कहा—'जिसे देखा ही नहीं, वह कैसे याद आता ? हाँ, तुम्हारे इस पुत्र को देखने का विचार कई बार मन में आया।'

'लेकिन तुम तब भी नहीं आए। एक रात के लिये भी नहीं दिखायी दिये !' रजनी ने जैसे तड़ित बनकर कहा।

आत्माराम ने कहा—'हाँ, मैं इच्छा करके भी नहीं आ सका, रजनी ! वह काम ही ऐसा था। कार्य का विस्तृत-क्षेत्र था। इन्सान की जैसी दुर्दशा मैंने वहाँ देखी, वैसा करुण और वीभत्स दृश्य क्या कभी पहले देखा था ! न, कभी नहीं !' इतना कहते हुए आत्माराम गम्भीर हो गया। वह जैसे अपने मन की अवस्था में ही डूब गया। उसी में झकझोरे खाता हुआ, विचलित हुआ, वह फिर बोला—'रजनी देवी ! सचमुच ही, मैं वहाँ जाकर सभी कुछ भूल गया। अपने को भी भूल गया। स्वामीजी ने मेरे जीवन पर बड़ा भारी अहसान किया। उन्होंने मुझ पर बड़ा उत्तरदायित्व डाल दिया। क्या इतनी बड़ी सेवा के करने योग्य मैं था ! इस जीवन में ऐसा सुअवसर पा सकता था ! कदापि नहीं ! अब लगता है कि मैंने गंगा में गोता खाकर अपना जीवन पखार लिया। उस जन-सेवा से मेरा मानस जन्म-जन्म के लिये सुवासित और प्रफुल्लित बन गया।'

रजनी ने कहा—'तुम्हारी सूरत भी बदल गयी। रंग भी बदल गया !'

आत्माराम ने कहा—'इतने समय में, मैंने चौबीस घण्टों में दो-चार घण्टों से अधिक आराम नहीं किया। रात की नींद के लिये भी मुझे ठीक से समय नहीं मिला। कभी-कभी तो रात-रात भर जागता रहा। इन्सान किस प्रकार मरता है, किस प्रकार मरकर भी सड़ता है, उसका नश्वर शरीर किस प्रकार सियार, चील और गिद्धों द्वारा खाया जाता है, यह भी मैंने वहाँ देखा। मानव की तड़प देखी, मानव का अट्टहास देखा ! मानव भूख से मरता देखा ! मानव मौत से डरता

देखा ! नारी की चीख सुनी, बच्चों का करुण नाद सुना !'

रजनी ने साँस भरी और कहा—'परमात्मा की इच्छा ! उसके राज्य में क्या-कुछ नहीं होता !'

आत्माराम ने कहा—'सचमुच, मैंने वहीं पर जैसे परमात्मा को पाया। उसे भी रोता पाया। मैंने तो प्रत्येक मरने वाले के मन में परमात्मा का आवरण पाया। मुझे वहीं पर भगवान का दर्शन हुआ।' यह कहते हुए, आत्माराम ने कुमुद के सिर पर हाथ फेरा। वह उसकी ओर देखकर तनिक हँस दिया।

रजनी ने प्रसन्न भाव में कहा—'इसमें तुम्हारा ही रूप है। वैसी ही नाक, वैसी ही आंखें !'

यह सुनते ही, आत्माराम हँस पड़ा। रजनी ने फिर कहा—'लेकिन जानते हो, मैंने क्या सोचा है ! अगर अपने पिता की तरह यह भी योगी रहा, तो मैं इसका विवाह नहीं करूँगी। भला देश-सेवक विवाह क्यों करे ! वह तो योगी रहे !'

आत्माराम और जोर से हँस दिया। उसने कहा—'तो तुम मुझ पर व्यंग कर रही हो। परन्तु तुम भूलती हो। गृहस्थी ही देश-सेवक बनता है। वही दूसरों के दुःख-दर्द समझ पाता है।' यह कहते हुए आत्माराम की हँसी लोप हो गयी। मुँह पर फिर गम्भीरता आ गयी। उसी अवस्था में वह बोला—'तुम सोचती हो, मैं तुम्हें याद नहीं करता था। मैं नित्य ही, तुम्हें अपने सामने देखता था। तुम्हारा यह हँसता हुआ और मुस्कराता हुआ चेहरा सदा मेरी आँखों के सामने रहता। अपितु, मैं तुमसे प्रेरणा पाता था। तुम्हारी सरीखी नवयौवना तरुणी जब अपना पति खोकर बिलखती, बच्चा छिना कर चीखती, तो तब, मैं उसके पास जाता और नितान्त सदय भाव में, उसे समझाने का प्रयत्न करता। मैं उसे धीर बँधाने की चेष्टा करता। उसे भगवान का नाम लेने की प्रेरणा देता। हाँ, रजनी ! तुम्हारी कोमल भावनाओं के सदृश मैं उन नारियों की इच्छाओं का भी खून होता हुआ ! उस समय मैं पाता

भगवान् की करुणा, उसकी भर्त्सना और उसकी हृदयहीनता का जैसे नग्न नर्तन देखता ! मैं जब मासूम बच्चों को प्राण तोड़ते पाता, तो मेरा मन चीख उठता ! हा-हाकार से कांप उठता ! मेरे मानस में ऐसा कोलाहल व्याप्त होता कि सचमुच, मैं भूल जाता कि जीवित हूँ या मरा हूँ ! मानव हूँ या पत्थर ! इसलिये, भला बताओ तो, मैं तुमको कैसे भूल पाता ! कैसे अपने मन से निकाल पाता ! मुझे इतनी ममता तो तुमने दी। भावना तुम्हारे पास से प्राप्त हुई।'

छूटते ही, रजनी ने आलोड़ के स्वर में कहा—'झूठ ! निरा झूठ !'

आत्माराम ने इतना सुना और वह आँखों से हँस कर रह गया।

उसी समय रजनी ने कहा—'क्या कुछ दिन हम लोग बाहर नहीं घूम आयेंगे ? मन बहल जायगा।'

अत्माराम ने कहा—'हां, हां, क्यों नहीं। हम कल ही बाहर चलें। बोलो, कहाँ चलोगी ?'

रजनी ने कहा—'कहीं भी !'

आत्माराम बोला—'पहले विपिन के यहाँ। फिर और कहीं !'

रजनी ने इसे स्वीकार कर लिया।

उसी दिन आत्माराम ने माँ से कहा—'हम कुछ दिन बाहर घूम आयें, माँ ! कहो तो चले जायें ? रजनी का मन भी बहल जायगा।'

माँ ने प्रसन्न बनकर कहा—'हां, हां, तुम रजनी को कुछ दिन बाहर घुमा लाओ। बस, कुमुद का ध्यान रखना।'

आत्माराम हँस दिया। उसने कहा—'यह मेरा काम नहीं है, माँ ! यह तुम्हारी बहू का काम है। उससे कह देना।'

फलस्वरूप, आत्माराम ने रजनी से चलने के लिए कह दिया। दूसरा दिन आया और उन्होंने गाँव से प्रस्थान कर दिया। वह उसी दिन शहर पहुँच गये। जब ताँगा विपिन के घर पहुँचा तो विपिन कचहरी गया था। घर पर उसकी फूआ थी, जिसने रजनी का स्वागत किया। कुछ देर बाद ही विपिन भी कचहरी से लौट आया।

रजनी और आत्माराम को देखते ही वह हँस दिया। उसने तुरन्त कुमुद को गोद में उठा लिया। उसी समय उसने अपनी फूआ को सुनाकर कहा—'तुम बहुत आत्माराम की बहू को याद करती थीं। लो, अब आ गयी, यह भाभी ! अब इन्हें सहेज लो ! जो कुछ इन्हें खिलाना है, खिला दो ! इतना खिलाओ कि इनका पेट फूल जाये ! बदहजमी हो जाये !'

रजनी ने कहा—'बाप रे ! ऐसा मैंने क्या कसूर किया !'

विपिन ने कहा—'तुमने बहुत बड़ा कसूर किया, भाभी ! भैया आत्माराम को योगी से संसारी बना दिया। अपने चिर-परिचित पथ से हटा दिया ! एक भले इन्सान को बदल दिया !'

रजनी ने व्यग्र बनकर कहा—'नहीं, नहीं, मैंने कुछ नहीं किया ! मैंने इन्हें नहीं रोका।'

फूआ ने विपिन से कहा—'बहू अच्छी है। जैसी सुनी, वैसी देखी।'

आत्माराम ने कहा—'तुम विपिन के लिये भी ऐसी ही बहू ला दो, फूआ !'

फूआ ने कहा—'यह काम तो तुम्हारा है, भैया ! औरतें क्या बहू देखने जाती हैं।' उसी समय वह बोली—'तेरी बहू को देखने के लिये भी मैंने जाने कितनी बार तुझसे कहा—अरे, बहू नहीं दिखायेगा ! तू उसे एक बार भी शहर नहीं लायेगा, क्या ! तो हँसकर उड़ा देता। मुझे बहका देता, गाँव की है, फूआ ! न बोलना आवे, न उठना-बैठना आवे। झूठा कहीं का ! तेरी बहू कैसी तो चाँद-सी और पढ़ी-लिखी है। समझदार है।'

यह सुनकर, रजनी तो हँस रही थी, तब आत्माराम और विपिन भी हँस दिये।

उसी समय विपिन ने कुमुद को फूआ की गोद में दे दिया।

फूआ ने पूछा—'क्या नाम रखा है, इसका ? इस बन्दर का ?'

विपिन ने कहा—'कुमुद !' वह बोला—'ठीक आत्माराम पर गया है।'

'अच्छा, अच्छा, बहू तुम कपड़े बदल लो। मुँह हाथ धो लो।' फूआ ने रजनी की ओर देखकर कहा—'यहाँ किसी बात का संकोच न करना। इस घर को अपना ही समझना! विपिन तो तेरा देवर है ही, मुझसे भी अधिक न लजाना! बहू यह घर तो आदमियों का भूखा है! आज-कल इस घर पर श्राप पड़ा है।'

उस समय आत्माराम अखबार देख रहा था। विपिन ने आत्माराम की ओर देखकर कहा—'तुमने बड़ा काम किया। बहुत समय दिया!'

आत्माराम ने अखबार की ओर देखते हुए कह दिया—'हाँ, बहुत समय लगा!'

'लेकिन भाई, यह सौदा मँहगा है! तुम्हारी परिस्थिति के भी विपरीत है। काम एक ही हो सकता है। चाहे घर का करो, चाहे बाहर का!' विपिन ने कहा।

आत्माराम ने फिर पूर्ववत् अवस्था में कह दिया—'हाँ, काम एक ही हो सकता है।' और उसने तभी रजनी तथा विपिन की ओर देखकर कहा—'मैं रजनी के साथ आ तो गया, परन्तु मुझे अभी घर पर रहना था। वहाँ का काम देखना था। मैं कल चला जाऊँगा। कुछ दिन के लिए रजनी और कुमुद को यहीं छोड़ जाऊँगा।'

रजनी ने कहा—'वाह-वाह!'

आत्माराम ने कहा—'न, रजनी! मुझे घर का भी काम देखना है। तुम यहाँ रहना। मैं जल्दी आ लूँगा।'

फूआ ने कहा—'बहू आई है, तो अभी नहीं जायेगी। मैं नहीं जाने दूँगी!'

आत्माराम ने हँसकर कहा—'अच्छा, अच्छा!'

उसी समय रजनी फूआ के साथ दूसरे कमरे में चली गयी। उसी समय विपिन ने कहा—'भाई, तुम भी अजीब हो! इतने दिन बाद घर लौटे हो! भला बताओ, तुम रजनी के प्रति अपने उत्तरदायित्व को समझ सके हो!'

आत्माराम ने कहा—'रजनी मुझे समझती थी। पहले से जानती थी।'

विपिन को आत्माराम का उत्तर संगत नहीं लगा। उसने कहा—'यदि भाभी के स्थान पर तुम होते, तो निश्चय ही, इस उत्तर को पसंद नहीं करते।'

विपिन की इस बात को सुन, आत्माराम विचलित नहीं बना। वह मुस्कराकर रह गया।

उसी समय विपिन को याद आया कि आत्मा के प्रति स्वयं रजनी से उसने एकान्त श्रद्धा और ममत्व की बात पाई थी। इसलिए रजनी में क्या अब भी आत्माराम के प्रति वही विश्वास है, ममता है, यह जानने की उत्कण्ठा उसे स्वाभाविक रूप से हुई। और रजनी पत्नी के अतिरिक्त अब माँ है, बड़ा उत्तरदायित्व अपने सिर ले लिया है। तो जरूर उसके मन की भावना बदल गयी होगी। रजनी अब गम्भीर बन गयी होगी। उसी समय, विपिन ने आत्माराम को फिर टंकोरा—'तुम रजनी के प्रति उदासीन बन सकते हो, परन्तु कुमुद के लिए? अपने आत्मज के लिए?'

आत्माराम ने जैसे स्थिर स्वर में कहा—'मैं किसी के लिये भी उदास नहीं हूँ। मैं सचेत हूँ। ममता रखता हूँ। निस्सन्देह, मैं योगी नहीं, पूरा ससारी हूँ। राग-द्वेष और स्वार्थ को मानता हूँ।'

उसी समय नौकर चाय की ट्रे, फल और मिठाई लाया। फूआ और रजनी ने भी उस कमरे में प्रवेश किया। उस समय रजनी गुलाबी रंग की साड़ी बदल आई थी। उसके कानों में पड़े हुए ईयरिंग झूल रहे थे। गले में नेकलिस चमक रहा था। जिस ब्लाउज को रजनी ने पहना, वह भी उस बारीक साड़ी से चमक रहा था। रजनी के हाथ की गोरी और मुलायम उँगली में जो नगदार अँगूठी थी, तो वह भी शोभायमान थीं। निःसन्देह, उस कमरे में रजनी जगमग दिख रही थी। उसी समय विपिन ने रजनी की ओर देखा और बलात् मुस्करा दिया। उसने

कहा—'आत्मा भाई बाहर क्या गये, तो तुम्हें भी दुबली बनने का बहाना मिल गया !'

रजनी ने बात सुनी और अपने मोती सरीखे दाँतों से आत्माराम की ओर देखकर हँस दिया। उस समय आत्माराम स्वयं भी प्रसन्न था। वह रजनी की ओर देख, आँखों से मुस्करा रहा था।

: १३ :

रात के समय आत्माराम अधिक नहीं सो सका। निकट ही, दूसरे पलंग पर विपिन सो रहा था। वह खुर्राटे भर रहा था। आत्माराम के सामने प्रश्न था कि वह घर जाये, तो माँ उसे अच्छा पति नहीं बतायेगी। रजनी को यहाँ छोड़ता है, तो इसे भी कुछ-न-कुछ अन्याय समझेगी। किन्तु अपने घर पर ही आत्माराम ने विपिन का रजनी के नाम पहुँचा हुआ पत्र देख लिया था। उसे इस बात का भी पता था कि रजनी ने कई पत्र विपिन को लिखे। निःसन्देह, रजनी की इच्छा थी कि विपिन उसके पास पहुँचे, अथवा वह स्वयं पहुँच जाये ! अत-एव, उस रात के समय आत्माराम के मन में बात थी कि क्या यही सत्य है कि मैं रजनी को यहाँ छोड़ जाऊँ······स्वतन्त्र कर जाऊँ ! निःसन्देह, आत्माराम को इस अवस्था में तनिक भी भय नहीं था। उसे रजनी पर सन्देह करने का कोई भी कारण नहीं दिखता था। यद्यपि विपिन और रजनी के पत्र एक विपरीत दिशा का संकेत अवश्य देते थे, परन्तु आत्माराम जिस प्रकार के स्तर पर खड़ा था, वहाँ ऐसा सोचने का अवसर नहीं था। रजनी के मन में जो बात उठी, उसे वह हल्की मानता······हवा में उड़ने वाली देखता ! उसे स्वप्न में भी ऐसा नहीं सूझा कि रजनी के मन में कुछ है और विपिन में कुछ है ! किन्तु विपिन

द्वारा की गयी अपनी आलोचना को सुनकर उसे यह अच्छा नहीं लगा कि पत्नी द्वारा या मित्र द्वारा वह वाध्य किया जाये और एक ही सीमा में बँधने के लिये विवश समझा जाऐ। अभी उस दिन, जब माँ ने उसे फटकार दिया और रजनी ने माँ के सामने ही, उससे घर पर रहने के लिये अनुरोध किया, तो यह सब ही मानो एक कौतुक और अप्रत्याशित भावना का प्रदर्शन ही उसे दिखाई दिया। वह स्वत: रजनी से प्रेम करता है, किन्तु उसकी माँ ने बचपन से उसके मन:प्रदेश में जिस अनूठे बीज को आरोपित किया, वह अब पनप गया है। वृक्ष बन गया है। उसमें शाखाएँ फूट निकली हैं। आत्माराम उस विशाल वृक्ष के नीचे खड़ा है। वह शांति और सुख का अनुभव करता है। इसीसे विपिन ने जब आत्माराम के समक्ष अपने पत्र के अनुरूप, उसकी आलोचना की, तो बरबस ही आत्माराम ने इस बात का निश्चय कर लिया कि रजनी यहाँ रहेगी, मेरे न रहते भी रहेगी।

किन्तु जब रात को आत्माराम के समक्ष फिर यह प्रश्न आया, तो उसने अपने निश्चय पर पुन: विचार करना आरम्भ किया। वह यह नहीं चाहता था कि रजनी कोई और बात सोचे। यद्यपि, उसकी दृष्टि में यह भी उचित नहीं था कि घर पर उसने रजनी के नाम का पत्र पढ़ लिया। यह भी विवेकपूर्ण काम नहीं था। परन्तु जब वह एक भूल कर चुका, तो दूसरी करने के लिये तैयार नहीं था। निदान, उसे भय था कि अवश्य ही, जब वह चला जायगा, तो रजनी चिन्तित बनेगी। हो सकता है कि फिर जल्दी ही यहाँ से जाने की बात सोचेगी।

परन्तु जो हो, आत्माराम का निश्चय अटल था। उसने रजनी को विपिन के घर कुछ दिन छोड़ना पसन्द किया। वह रजनी और विपिन के मध्य से दूर रहना पसन्द करता था। वह विपिन को भी अबसर देना चाहता था। उसने अब तक नारी को दूर से देखा था, अब पास से देख सकता था। यदि उसका विवेक सो गया, तो रजनी को निकट पाकर जाग सकता था। वह विवेक-भ्रष्ट हो निष्क्रिय हो, ऐसा आत्माराम

को एक क्षण के लिये भी भरोसा नहीं था। वह रजनी और विपिन में से किसी एक को भी भारी नहीं मानता था। इसीलिये आत्माराम का मत था कि रजनी के समान विपिन भी यही चाहता है। रजनी में जो कोमल तत्व है, जिसे विपिन ने नहीं पाया है, उसे अब देख लेगा। समझ लेगा। उसने कहा, रजनी पत्नी है, विपिन मित्र है। दोनों अपने हैं। दोनों अनन्य हैं। मैं दूसरे लोगों के समान नहीं सोचता। ऐसा कुछ नहीं दीखता।

प्रातः होते ही, आत्माराम ने रजनी के पास जाकर कहा—'मैं जा रहा हूँ। तुम रहो। एक सप्ताह में आऊँगा। तुम्हें ले जाऊँगा।'

रजनी ने कहा—'तुम्हारा भरोसा क्या! मुँह पर कुछ, पीछे कुछ! देखना!'

'नहीं, नहीं, रजनी! मेरी रानी! मैं जल्दी आऊँगा।' कहते हुए आत्माराम फिर विपिन के पास गया और उससे भी विदा लेकर चला गया।

इसके बाद ही, विपिन रजनी के कमरे की ओर आया। वह रजनी को देखकर मुस्करा दिया। रजनी ने कहा—'विपिनबाबू, तुम यहाँ बैठो, मैं आती हूँ। तुम कुमुद की रखवाली करो।' रजनी कमरे से निकली और स्नान करने के लिये गुसलखाने की ओर चली गयी। विपिन कुमुद के पास बैठ गया। फूआ ऊपर थी। वह नौकर को आदेश देते हुए घर के काम करा रही थी।

लेकिन जब रजनी लौटकर आई तो बलात् विपिन ने उसके कमर पर फैले हुए लम्बे केशों को लक्ष करके कहा—'अजीब बात है कि आत्मा भाई आए और तुम्हें इस प्रकार छोड़कर चले गए।'

रजनी ने यह बात सुनी तो मत नहीं दिया। विपिन वहाँ से उठ गया। किन्तु लगा कि जैसे रजनी के मन का चोर जाग गया। वह रजनी के मन में यहाँ से वहाँ दौड़ लगाने लगा। मानो छुपने की चेष्टा करने लगा। इस आकस्मिक दुर्भावना के आते-आते जैसे रजनी तड़प

गयी। वह एकाएक ही जीवन के अँधेरे में चली गयी। उसका पति आत्माराम इतना गूढ़ है, ऐसा गहरा है, इसका रजनी को उस समय अनुभव हुआ। जिसका परिणाम यह हुआ कि आत्माराम सरल तथा भोले रूप को छोड़ नितान्त विकराल और रौद्र रूप में रजनी के सामने आकर खड़ा हो गया। वह अपनी तेज आँखों से रजनी को घूरने लगा। दाँतों से होंठ काटने लगा। उस आत्माराम के हाथों में जैसे कोई तेज हथियार था, वह चमचमा रहा था। उस हथियार को दिखाते हुए ही, उसने रजनी को संकेत किया। उसने जैसे क्रोधपूर्ण बनकर चीखते हुए कहा—अरी, तू! तू रजनी! चुड़ैल कहीं की! डायन! विश्वास की घातक! पति-द्रोही! तू···तू··· !'

उसी समय रजनी जैसे चीख पड़ी, वह पलंग पर गिर पड़ी। उसने अपना मुँह ढँक लिया। आँखों से आँसू बह चले और वह फूट-फूट कर रो पड़ी। वह देर तक रोती रही। उसी प्रकार पड़ी रही।

लेकिन जब विपिन कहीं जाने के लिये तैयार होकर वहाँ आया तो उस समय रजनी हाथ की हथेली पर मुँह रखे हुए बैठी थी। विपिन कोट-पैण्ट पहने, नेकटाई लगाये और सिर पर हैट रखे वहाँ आया। आते ही, उसने कहा, 'भाभी, आत्मा भाई कब आने को कह गये हैं? घर गये हैं?'

रजनी ने अपना मुँह उठाया। उसने अपने मन की स्थिति को बरबस छुपा लेना चाहा। निदान, रजनी ने हँसने तथा मुस्कराने का भी प्रयत्न किया। उस अवस्था में ही उसने कहा—'कह गये हैं कि एक सप्ताह में आयेंगे। घर गये हैं।'

विपिन ने कमरे की चौखट पर अपने जूते की ठोकर मारी और कहा—'अजीब बात है! यह भी अजीब समस्या है! वर्ष भर में तो आये हजरत और फिर चल दिये!' वह बोला—'पर तुम यहाँ सुस्त मत रहो, भाभी! हँसो, बोलो। आज शाम को सिनेमा चलेंगे! यह तुम्हारा ही अपना घर है।'

किन्तु रजनी ने इतनी बात सुनकर भी अपना मत नहीं दिया।

विपिन ने कहा—'तुम काँप रही हो, भाभी ! कपड़ा ओढ़ो, जलपान करो।'

रजनी तब भी मौन थी। वह सिर झुकाए बैठी थी।

विपिन ने कहा—'मैं आज कचहरी नहीं जाऊँगा। अभी लौट आऊँगा। तुम्हें यहां के दर्शनीय स्थान भी दिखा दूँगा।'

रजनी ने आतुर मन से कहा—'मैं कहीं नहीं जाऊँगी, विपिन बाबू ! आज नहीं !'

'अच्छा, अच्छा ! आज न चलना। पर कपड़ा तो ओढ़ लो। तुम काँप रही हो।' कहते हुए विपिन हँसा। तदन्तर फिर बोला—'दिखता है, तुम आत्मा भाई के जाने से खिन्न बनी हो। उन्हीं का पाठ पढ़ रही हो ! आत्माराम-जैसी बन रही हो, भाभी !'

इतना सुनकर, रजनी ने फिर विपिन की ओर देखा। उसने तब सामने के खुले आकाश की ओर देखकर कहा—'इस रजनी का अब उन सरीखा बनना ही काम है, विपिनबाबू ! इसकी वही राह है।'

विपिन ने चौखट पर फिर जूते की ठोकर मारी और कहा—'नारी की यह आस्था भी पुरानी है। चिर-पुरातन है। हमारे घरों के लिये यही उपादेय है।' वह तभी आतुर तथा चंचल बनकर बोला—'किन्तु मैं सोचता हूँ, इस अवस्था ने नारी को कुछ दिया नहीं, लिया है। नारी को ठगा है। पददलित किया है। मैं नहीं समझता कि नारी ही क्यों इस दिशा पर चलती रहे···पुरुष पथ-भ्रष्ट रहे !'

रजनी ने इतनी बात सुनी, तो वह जैसे चकित रह गयी। वह सहम भी गयी। मानो विपिन से डर गयी। उसके मन में शंका उत्पन्न हुई कि यह विपिन जाने आगे क्या कहेगा······अपने मन की बात को अब और किस रूप में और किन शब्दों में प्रकट करेगा ! कदाचित इसी आशंका से आविभूंत होकर उसने धीर भाव में कहा—'विपिन बाबू, मैं यह सब नहीं जानती ! मैं इससे आगे कुछ भी नहीं समझती !

मैं तो अपनी ओर देखती हूँ। जितना सीखा है, मैं उसी को तो उच्चारित कर सकती हूँ। मैं उसी को अपने जीवन पर उतारती हूँ।'

एकाएक साँस भरकर विपिन ने कहा—'भाभी, तुम…!'

'हां, विपिन बाबू! तुम्हारी इस भाभी की तरह अधिकांश नारियों की यही बात है। यही अवस्था है। वे नारियाँ कहती नहीं हैं। रोती हैं। वे अपने आँसू बहाकर मन की वेदना को चुपचाप ही शान्त कर लेती हैं। वे नारियाँ अपने आँसुओं में जीवन की कहानी को सँजोती हैं। उसे पढ़ती हैं और ठण्डे साँस भरकर रह जाती हैं!'

इतना सुनकर, विपिन कुछ नहीं बोला। मानो उसके पास कहने के लिए कोई शब्द नहीं रह गया। वह स्वयं कातर बन गया। रजनी की मानसिक स्थिति में खो गया। उसने चौखट से अपना पैर हटा लिया। वह निरुद्देश्य-भाव से सामने की ओर देखने लगा। मानो वह मूर्त्त बन गया। निरा नादान!

उसी समय रजनी ने कहा—'हमारे विवाह के पहले ही जब मैंने तुम्हारे भाई को देखा और समझा, उसे मैं आज भी याद करती हूँ। मैंने स्वयं ही उनके समक्ष प्रस्ताव रखा। मैंने स्वयं ही उनका हाथ पकड़ लिया। मैं जानती हूँ, वे विवाह के लिए तब भी तैयार नहीं थे। वे तो मेरे द्वारा तैयार किये गये थे। कोई कहे कि उन्होंने मुझे ठगा, यह गलत है। मैंने उन्हें ठगा, यह सही है। उन्होंने मुझे कोई मानसिक सन्ताप नहीं दिया। तुमने भी जो पत्र लिखा, उसके शब्द मुझे आज भी याद हैं। मेरा मत है, वह पत्र भावावेश में लिखा गया। वास्तविकता को भूलकर लिख दिया गया। आश्चर्य है कि इतने दिन साथ रहकर भी, तुमने अपने भाई को नहीं समझा! तुमने व्यर्थ ही सत्य पर पर्दा डालने का प्रयत्न किया………!'

विपिन ने गम्भीर भाव में कहा—'भाभी, मैंने यही समझा। तुम्हारे कष्ट को देखकर भी खिन्न बन गया।' कहते हुए वह रुक गया। तदन्तर ही, उसने मुस्कराकर कहा—'वैसे जानता हूँ कि तुमने

बहुत अच्छा किया। तुमने आत्माराम को पा लिया। तुमने एक सुन्दर और सरल पति प्राप्त कर लिया, भाभी !' कहते हुए विपिन चल दिया। वह उसी समय घर से बाहर चला गया।

: १४ :

उस दिन इच्छा करके भी विपिन रजनी के पास नहीं गया। वह दिन भर बाहर रहा। संन्ध्या समय घर आया, खाना खाया और जब सोने के लिए अपने कमरे की ओर जाने लगा, तो तभी, वह रजनी के कमरे के द्वार पर जा खड़ा हुआ। रजनी उस समय कुमुद को दूध को पिला रही थी। उसे सुलाने का भी प्रयत्न कर रही थी। विपिन को आता देखकर, रजनी ने बलात् उठने का प्रयत्न किया। विपिन ने कहा—'न, न, तुम आराम करो, भाभी ! मैं भी थका हूँ, जाकर सोता हूँ।'

रजनी ने कहा—'लगता है, तुमने भोजन का समय भी नहीं बनाया। जब आये, तभी खा लिया। ऐसे तो भोजन भी ठण्डा होता है। भूख का समय भी चला जाता है।'

विपिन ने कहा—'भाभी, इतना विचार मैं नहीं कर पाता ! फूआ वृद्धा है। नौकर करता है। वह जैसा दे देता है, वही पेट में चला जाता है। पेट भरना है। मेरे जीवन का ऐसा ही रास्ता है।'

इतना सुना, तो रजनी को जैसे विपिन के जीवन का अभाव प्रत्यक्ष दिखाई दिया। वह विपिन की वाणी के स्वर में भी फूट पड़ा। कदाचित् इसीसे, उससे एकाएक कुछ नहीं कहा गया। उसने उसी ममत्व भरे भाव में विपिन की ओर देखा। उसने समझा, इतना बड़ा महल बेकार पड़ा है। खाली है। इसमें रौनक नहीं ! बच्चों का स्वर

नहीं। आदमियों का नाद नहीं। पैसा है, तो वह भी सड़ रहा है। इस विपिन का जीवन जैसे नीरस और बेकार बन रहा है।

विपिन ने कहा—'आज कोई कष्ट तो नहीं हुआ ? भोजन कर लिया ?'

रजनी मुस्कराई—'मैं पराये घर में थोड़े ही आई हूँ। अपने घर में हूँ।'

'हां, हां, यही मैं कहता हूँ, भाभी! यह घर तुम्हारा है। यह विपिन तुम्हारा है। आत्मा भाई देर से मेरा अनन्य बन चुका है। उसे और तुमको मेरे ऊपर अधिकार है।' इतना कहते हुए विपिन अपने कमरे की ओर बढ़ गया। वह कमरे में जाकर पलंग पर पड़ गया। तदुपरान्त वह सो गया।

अगले दिन दस बजने से पूर्व ही, विपिन कचहरी चला गया। तब तक रजनी अपने कमरे में थी। वह खाना खाने रसोई घर में नहीं पहुँची थी। वह प्रातः से कमरे से बाहर भी नहीं दिखाई दी। इसलिए, जब विपिन चला गया, तो फूआ रजनी के कमरे में आई। उसने आते ही कहा—'आत्मा की बहू ! क्या कर रही हो ? विपिन कचहरी भी गया और तुमने अभी स्नान भी नहीं किया। अब उठो।'

उस समय, अन्य बातों के साथ, फूआ से, रजनी ने जितनी बात सुनी, उसमें 'आत्मा की बहू' का सम्बोधन उसके कानों में गूँज गया। उसने रजनी के तन-मन को प्रसन्न कर दिया। उसी भावना से पूरित बनकर उसने फूआ से कहा—'हाँ, अभी उठती हूँ, फूआ! सच, अभी।'

फूआ ने कहा—'हां, बहू ! आ चल, आज विपिन कहता था कि आत्माराम दो दिन में लौट आयेगा। दिखती है, तू रात को नहीं सोई! तू जागती रही। पगली बहू···आँख लाल-लाल बना लीं···!'

रजनी ने जल्दी से कहा—'नहीं फूआ ! मैं खूब सोई। रात भर सोई' इतना कहते हुए रजनी उठ बैठी। वह गुसलखाने की ओर स्नान करने चली गयी। उसी ओर जाते-जाते वह अपने आप बोली—'भला

इस फूआ को क्या पता है कि रात का सारा समय मेरा रोने में बीता है। रात भर जाने कैसी-कैसी बातों में मेरा मन उलझा रहा है। काँपता रहा है, मेरा मन !

रजनी स्नान करके लौट आई। नौकर देर से कुमुद को बाजार ले गया था। अब वह उसे लौटा लाया। लाकर रजनी को दे दिया। उस समय कुमुद भूखा था। रो रहा था। यही नौकर ने कहा—'बहूजी, मुन्ना भूखा है। दूध माँगता है।'

रजनी ने बिना कुछ कहे, कुमुद को दूध पिलाना शुरू कर दिया। कुमुद तब भी रो रहा था। किन्तु जैसे रजनी का ध्यान कहीं और था। वह जिस बात को रात भर लिए रही, उसी को फिर लिए हुए, उसने सामने की ओर देखते हुए कहा—निश्चय ही, वह रूठकर गये हैं। वह कुछ मन में लेकर गये हैं। शायद वह इस बात को लिये हैं कि मैंने क्यों इस विपिन को पत्र लिखे। क्यों इसे बार-बार बुलाने के निमन्त्रण दिये। उन पत्रों में अनुरोध किये !

उसी समय क्षणेक रुककर उसने फिर कहा—बस, यही तो ! हाँ, यही !

और कुमुद तब भी रो रहा था। वह बार-बार रजनी के स्तन को झिझोड़ रहा था ! उसे नोंच रहा था। किन्तु रजनी ने उसकी ओर बिना देखे ही, दूसरा स्तन उसके मुँह से लगा दिया। कुमुद को शान्त करने का प्रयत्न किया। उसका वह प्रयत्न सफल भी हुआ। कुमुद को उस स्तन में दूध मिल गया। वह पीने लगा।

उसी समय रजनी ने खुले स्वर में जहा—नारी का एक यह भी अपराध है, रजनी ! वह पति हैं, देवता हैं ! दिखता है, मेरी इच्छा पर ही, उन्होंने तुझे यहाँ छोड़ दिया। तुझे अपनी इच्छा भोगने के लिए स्वतन्त्र कर दिया।

यह कहने के साथ ही, लगता था कि जैसे, रजनी का सम्मान स्वयं उसकी दृष्टि में चूर-चूर हो गया। वह सचमुच ही टूक-टूक होकर

रजनी के सामने बिखर गया। और वह सम्मान मानो तड़प रहा था। रजनी की ओर देख रहा था। वह जैसे चीत्कार करता हुआ, रजनी को सुना रहा था—अरी, रजनी, तू! निरी दुर्भागी! निरी अभागिन तू!

लेकिन इसके बाद ही, रजनी में जिस प्रतिक्रिया का रूप जाग्रत हुआ, वह मानो बरबस ही, उसको सबल बनाने में समर्थ हो गया। रजनी का मुँह ऊपर उठ गया। माथे में बल पड़ गये। आँखें चढ़ गयीं। दो दिन से जिस भूचाल में वह उड़ रही थी, और व्यथित बन रही थी, वह भूचाल दबने लगा। वह अपने मानस की उस हीनता को भूलकर, निरे उपेक्षा-भरे भाव में बोली—'अरे, यह कुछ नहीं··· हाँ, कुछ भी नहीं! पुरुष दम्भी है! वह अविश्वासी और सन्दिग्ध है! पुरुष नारी को इसी दृष्टि से देखता है। वह नारी में सदा दोष ही निकालता है। निरा पाखण्डी······निरा मूर्ख······!'

'तब! हाँ, तब!' इसीके कुछ देर बाद ही, रजनी ने फिर अपने से प्रश्न किया। उसने कहा—तब क्या? कुछ नहीं! वह आयेंगे और कुछ कहेंगे, तो मैं कह दूँगी, आखिर तुम पुरुष जो हुए—तुम एक नारी के स्वामी जो हुए! इसे उँगली पर नचाओ। मन चाहे तो इसे तोड़ दो, मन चाहे तो फेंक दो! तुम साधु जो ठहरे······आदर्शवादी······लोक-कल्याणकारी······!

उसी समय नौकर ने आकर रजनी को खाना खाने के लिए कहा।

रजनी ने तब भी, निरे विक्षिप्त भाव में कहा—'हाँ, भाई, चल! खाना तो जरूर खाना है। जब जीवित रहना है, तो खाना है।'

सुनकर, नौकर ने जैसे अनजाने कहा—'क्या बहू जी!'

रजनी ने सूखे होठों से मुस्कराकर कहा—'अरे, खाना खायेंगे, तो जियेंगे, नहीं तो मर न जायेंगे!'

नौकर ने कहा—'हां, हां, यह तो तुमने ठीक कहा, बहू जी!

सब-कुछ खाने के लिए करना पड़ता है।' वह बोला—'मैं अपने घर से पाँच सौ कोस दूर पड़ा हूँ—तो इसी पेट के लिए! बूढ़े माँ-बापों को घर छोड़ आया हूँ। हर महीने कौड़ी-कौड़ी जोड़कर उन्हें भेजता हूँ। अपना फर्ज अदा करता हूँ।'

रजनी ने कहा—'सभी अपना फर्ज अदा करते हैं, भैया!' और उसने तभी अपने मन में कहा—'और तू भी, रजनी! सच!' इतना कहा और रजनी का मानस फिर तड़प गया। जैसे सचमुच ही, उसके अन्दर कोई फोड़ा था, वह सूज गया था। उस पर जरा-सी ठेस लगते ही, अपार वेदना का रजनी को आभास होता था।

उसी समय नौकर चला गया। वह रजनी को जल्दी आने के लिए कह गया। वह बता गया कि थाल परोस दिया है। खाना ठण्डा हो रहा है।

रजनी रसोई में पहुँच गयी। ब्राह्मणी ने कहा—'बहू जी, तुम्हारी कटोरियों का दाल-साग भी ठण्डा हो गया। रोटियाँ भी। लाओ, दाल और साग गरम कर दूँ। इन रोटियों को नौकर खा लेगा। तुम्हें गरम बनाती हूँ।'

रजनी ने कहा—'नहीं, नहीं, मैं ठण्डी खाती हूँ। मैं तो गाँव की हूँ।'

ब्राह्मणी ने हँसकर कहा—'आत्माबाबू भी यही कहते हैं। उन्हें जैसा मिल जाये, उसी में सन्तोष कर लेते हैं। ऐसा आदमी मैंने कोई और नहीं देखा। इतना नेक, इतना सलीकेदार! एक बार, जब मेरी लड़की का विवाह था, तो मुझे परेशान देखकर, सौ रुपया तुरन्त अपनी जेब से निकालकर दे गये। वह रुपये महीने भर की पढ़ाई के लिए माँ ने उन्हें दिये थे। पर मेरी चिन्ता दूर कर दी। अपनी चिन्ता बढ़ा ली। वह तो देवता हैं, रानी! आदमियों के सरताज! सच, तुम्हारा बड़ा भाग्य है! ऐसा पति क्या हर स्त्री को मिल सकता है—न, कभी नहीं! लाखों में भी एक-दो को नहीं!'

इतना सुना, तो जैसे रजनी के मानस में व्याप्त समुद्र में एकाएक ही ज्वार-भाटा आ गया। उसने रजनी के मन की समस्त दुर्बल भावना को झिंझोड़ दिया। अपने साथ बहा लिया। रजनी प्रसन्न थी। वह खाना खा रही थी। उसने खूब मन भरकर खाना खाया। रात फूआ ने उसे ताना दिया था। कहा था—'तू कुछ नहीं खाती! शर्माती है।' किन्तु उस समय, ब्राह्मणी की बात सुनने के साथ, जब रजनी ने भोजन करना आरम्भ रखा, तो तब, पास बैठी फूआ को शिकायत करने का मौका नहीं मिला। जब वह भोजन कर चुकी, तो हँसकर फूआ से कहा—'फूआ, मैंने अब तो कम नहीं खाया? देखा, कि खूब खाया।' किन्तु फूआ ने तब भी कहा—'बहू, क्या खाया! तू तो अभी जवान है। इतना तो कलेवा होता है।' रजनी ने सुना और उसने खिलखिलाकर हँस दिया।

किन्तु रजनी जब फिर अपने कमरे में लौट गयी, तो तब, एकाएक ही, उसके मन ने फिर कहा—घर पहुँचने पर माँ ने पूछा होगा कि बहू कहाँ है? तब क्या कहा होगा? कह दिया होगा, विपिन के यहाँ! और तब, जरूर, माँ ने कहा होगा, यह अच्छा नहीं किया! हाँ, माँ ने यही कहा होगा। किन्तु उनकी आदत तो मैं जानती हूँ। स्वभाव समझती हूं। कह दिया होगा, रजनी की यही इच्छा थी!

उसी समय, फूआ कुछ फल लाई। बोली—'इन्हे खा, बहू!'

रजनी ने कहा—'अभी पेट भरकर आई हूँ, फूआजी!'

फूआ ने कहा—'तो ठहरकर खा लेना।' फूआ ने फल रख दिये और चली गयी। रजनी कमरे से मोरी पर गयी। वह जब लौटी, तो मन में उसके बात थी। वह देख नहीं सकी, खम्भे से टकरा गयी। बरबस, मुँह से चीख निकल गयी। माथे से खून निकल आया। उस चीख को फूआ ने और नौकर ने सुना। आते ही देखा। फूआ ने छूटते ही कहा—'हे राम! यह क्या कर लिया, बहू! खिलाये का नाम नहीं, रोने का नाम! राम-राम! आत्मा देखेगा, तो क्या कहेगा! विपिन आयेगा, तो वह

भी, मुझ पर लाल-पीला बनेगा ! ला, पट्टी बाँध दूँ । तू पड़ जा ! तेरा कोई भी काम हो, मुझसे कह । इस रामू नौकर से कह ।'

रजनी ने कहा—'ऐसा कुछ नहीं, फूआ ! माथा जरा-सा छिल गया है । ठीक हो जायगा ।'

फूआ ने माथे पर पट्टी बाँध दी । रजनी पलंग पर पड़ गयी । फूआ बोली—'सच, तेरा मन नहीं लगा । तू कुछ सोचती है । आज सुबह से उदास है । शायद समझती है कि दूसरा घर है । दूसरी जगह है । नहीं, बहू ! मेरे लिए आत्मा और विपिन दो नहीं है । दोनों भाई-भाई हैं । जैसा वहाँ, ऐसा यहाँ !'

रजनी ने कठिनाई से कहा—'नहीं, फूआ ! मैं कुछ नहीं सोचती । मैं ऐसा नहीं समझती ।'

उसी समय विपिन कचहरी से लौट आया । जब वह घर में आकर रजनी के कमरे के सामने पहुँचा, तो उसे देखते ही फूआ ने कहा—'अरे विपिन, देख तो, इस तेरी भाभी ने क्या कर लिया । खम्भा मार लिया ।'

सुनते ही, विपिन रजनी की ओर बढ़ गया । वह झुककर बोला—'भाभी···'

'विपिन बाबू, अधिक चोट नहीं आई । मैं यकायक टकरा गयी ।'

फूआ ने कहा—'आज सुबह से उदास भी रही ।'

विपिन ने कहा—'बताओ भाभी ! क्या बात है ! तबीयत खराब है ? डाक्टर बुलाऊँ ?'

रजनी ने व्यस्त स्वर में कहा—'नहीं, नहीं, मैंने अभी तो खूब मन भरकर रोटी खाई । जरा-सी चोट लगनी थी, लग गयीं । मैं देखकर नहीं चली, तो सजा पा गयी ।'

विपिन ने हँसकर कहा—'यही इस जीवन का व्यवधान है । अन्धा बनकर क्या जीवन-पथ पार होता है ! जरा-सी भूल में आदमी जाने कहाँ-से-कहाँ पहुँच जाता है । खो जाता है !'

रजनी ने कहा—'तुम ठीक कहते हो। जीवन की जरा-सी भूल आदमी को रुलाती है। जीवन भर आदमी को तड़पाती है।'

उसी समय फूआ कुमुद को गोद में लेकर बाहर चली गयी। विपिन ने देखा कि रजनी की धोती पर खून का धब्बा है। देखते ही, उसने खूंटी से दूसरी धोती उतारी और रजनी से धोती बदल लेने को कहा।

रजनी ने कहा—'रख दो। पहन लूंगी। अभी बदल दूंगी।'

विपिन बोला—'नहीं, उठो। खून का धब्बा भद्दा लगता है।'

यह सुनते ही, रजनी ने विपिन की ओर देखा। जैसे उसे फिर समझना चाहा।

विपिन ने कहा—'इस ब्लाउज पर भी खून की बूंद पड़ी है। अरे राम-राम! तुम यहाँ आईं पीछे, पहले अपनी काया इस तरह चुटीली बना ली। उठो, बदलो ब्लाउज! लाओ, मैं पहना दूं।'

रजनी ने कहा—'तुम पहनाओगे! तुम!' वह बोली—'वह खूंटी पर ब्लाउज है। उतार लो। पहना दो।'

'हां, तुम्हारे हाथ से चोट में ठेस लगेगी, भाभी!'

रजनी ने कहा—'हां, हां, कह तो रही हूँ, तुम ब्लाउज पहना दो।'

इतना कहते हुए रजनी उठ बैठी। विपिन ने उसका पहना हुआ ब्लाउज उतार दिया। दूसरा पहना दिया। धोती स्वयं रजनी ने पहन ली। जब विपिन वहाँ से जाने लगा, तो रजनी बोली—'जाते हो! आओ, बैठो! मेरी इच्छा है कि तुम मेरे पास बैठो और कुछ कहो, कुछ सुनो।'

इतना सुनते ही विपिन मुस्करा दिया। वह बोला—'आज कैसी-कुछ बन गयी हो, भाभी! कैसी बात करती हो?' इतना कहते हुए विपिन फिर बैठ गया।

रजनी ने कहा—'वहाँ कुर्सी पर नहीं, मेरे पास बैठो, विपिनबाबू!'

विपिन तब पलंग पर बैठ गया। वह आश्चर्य से भरा और चकित बना हुआ रजनी की ओर देखने लगा।

उसी समय रजनी ने कहा—'तुम जानते हो विपिन बाबू, तुम्हारे भाई क्यों गये हैं ? वह मुझे क्यों यहाँ छोड़ गये हैं ?'

विपिन ने कहा—'मैं तुम्हारी बात नहीं समझा, भाभी !'

'हां, तुम नहीं समझे हो ! तुम पुरुष हो !' रजनी ने सामने की दीवार को देखते हुए कहा—'तुम अभी स्त्री की अवस्था से दूर हो। तुम नारी को रहस्य की वस्तु मानते हो। पर मैं तो जानती हूँ कि वह क्यों गये है। क्यों मुझे यहाँ छोड़ गये हैं। तुम्हें बताऊँ ?' कहते हुए रजनी ने फिर विपिन की ओर देखा।

आतुर स्वर में विपिन ने कहा—'हां, हां, कहो भाभी ! वह क्या भेद है ? मुझे भी बताओ।'

रजनी ने विपिन की ओर से मुँह हटाकर उदास स्वर में कहा—'वह सोचते है कि मुझमें तुम्हारे लिए कोई इच्छा है। तुममें मेरे लिए कोई चाहना है !'

'भाभी···!'

'हां, विपिनबाबू ! यही सोचकर वह मुझे यहाँ छोड़ गये हैं। जो मैने और तुमने सोचा है, जो कुछ मन में दबाये रखा है, वह अब फले-फूले ! वह एक-दूसरे के समक्ष निर्विरोध बनकर कार्य में परिणत हो ले।'

एकाएक विपिन ने अप्रतिभ होकर कहा—'मैं आत्मा को नहीं समझा ! सच, मैं आज तक उसे नहीं देख पाया। अब लगा, वह जो कुछ है, ऊपर ही नहीं है। ऐसा सन्दिग्ध और विषम है, आत्माराम !'

रजनी ने कहा—'लेकिन मैं तो उनकी पत्नी हूँ। मैं उन्हें समझती हूँ।'

बरबस ही, विपिन ने रोषपूर्ण होकर कहा—'उसमें पाने लायक और देखने लायक कुछ नहीं है। हां, वह धूर्त है ! वह कोरा आदर्शवादी है !'

रजनी ने फिर अपने स्वर में और अधिक कोमलता लाकर कहा—'रोष में मत आओ, विपिनबाबू ! तुम शान्ति से मेरी बात सुनो। तुम

अपनी भी कहो। जिस भाई को तुमने अच्छा कहा है, उसे बुरा कहकर भी अपना मन और शब्द-भण्डार गन्दा मत करो। तुम इस बात को भी अपने मस्तिष्क से मत निकालो कि जिस व्यक्ति के लिये तुम कहते हो, उसकी पत्नी तुम्हारे समक्ष बैठी है। और पत्नी का कर्त्तव्य है कि पति की बुराई न सुन पाए! उसका प्रतिकार करे! पर मैं तो तुमसे यह भी कहती हूँ कि तुम्हें जब-जब देखती हूँ तो हर्षती हूँ, सुख मानती हूँ। और तुम? तुम बताओ अपनी बात? तुम भी अपनी भाभी को देखकर हर्ष अनुभव करते हो या नहीं? बताओ, मेरे लिये तुम क्या-कुछ सोचते हो?'

इतना सुन, विपिन ने रजनी की ओर देखा। वह उसी प्रकार देखता रहा।

रजनी ने फिर कहा—'उन्होंने जो-कुछ सोचा और देखा, सचमुच वह मुझे अनुपयुक्त और असंगत भी नहीं दीखता। लेकिन भला यह संगत कहाँ है! यह मेरे लिये और तुम्हारे लिये उपयुक्त कहाँ! शिव कहां!'

जिस प्रकार विपिन रजनी की ओर देख रहा था, बात सुनने के बाद फिर दूसरी ओर देखने लगा।

रजनी बोली—'अपराध मेरा है। मैं नारी हूँ। मैंने अपनी सत्ता को स्वयं भुला दिया। और मैं नहीं समझती कि तुम कैसे वकील हो। पत्नी के सामने ही, तुमने उसके पति की—उसके जीवन की आलोचना की। विवाह के ऊपर भी अपनी सम्मति दी! अपने पत्र में तुमने यही तो लिखा। वह पत्र उन्होंने भी देखा, पढ़ा। मैं चाहती तो उसे फाड़ देती। परन्तु मुझे तो अपने पति से कुछ भी नहीं छिपाना था। इस जीवन को चोर बनाकर मुझे न लज्जित करना था, न अपमानित। विपिन बाबू'—रजनी ने साँस भरी और कहना आरम्भ किया—'मैं समझती हूँ कि तुम इस भाभी को देखना चाहते हो। भला इसमें कैसा अपवाद कि तुम इसे अपने पास नहीं बैठाना चाहते! परन्तु

जो समाज का और नारी-समाज का विधान है, तुमने उसे नहीं पढ़ा । शायद नहीं समझा । तुमने अपने प्रत्येक पत्र में उस विधान का उल्लंघन किया । और मैं तो हूँ ही पगली ! सच, निरी अबोध, जो अब भी इस दुनिया की रीत को न समझ पायी हूँ, न अभी देख पाई । भला तुमने देखी या सुनी भी ऐसी कोई युवा नारी, जो दूसरे युवा पुरुष से अपनी ब्लाउज उतरवा ले और दूसरी पहन ले । काश, तुम्हारी फूआ, नौकर या ब्राह्मणी मेरे और तुम्हारे इस अभिनय को देखतीं तो निःसन्देह, यह विषय चर्चा का बनातीं ! इस मुहल्ले भर में फैलातीं । तब सर्वत्र यही बात सुनी जाती कि विपिन बाबू के घर में दोस्त की बीवी आई हैं, जो चरित्रहीन है···विपिन बाबू को चाहती है ······!'

एकाएक विपिन ने कहा—'तुम क्या कहती हो, भाभी !'

रजनी ने धीर और गम्भीर स्वर में कहा—'न विपिनबाबू ! मैं सच कहती हूँ । मेरी बात वास्तविकता पर आधारित है । लोक-लाज और लोक-चर्चा कोई-न-कोई आधार माँगती है । मैं कहती हूँ, मैंने जो-कुछ अभी किया, वह इस जगत में यहाँ नहीं निभता । नहीं दीखता । यह तुम्हारी भाभी भले ही सोचे कि इसके देवर—'तुम विपिन बाबू—निरे सात्विक हो । इसके अपने ही एक सच्चे और पवित्र आत्मीय हो, लेकिन यह निभता नहीं है । कहने वाले की जबान नहीं पकड़ी जाती । बस, यही मेरा दोष है । यही मेरे जीवन का पाप है । अब समझी मैं, मुझे तुम्हें पत्र नहीं लिखने थे । तुम्हें इस प्रकार के उत्तर नहीं देने थे । क्योंकि अब तो तुमने देखा, अब मेरे पास क्या है ! मेरे पास यौवन कहाँ है ! अब मेरे स्तन मेरे नहीं हैं । मेरे कुमुद के हैं । इनमें दूध है । इनमें कुमुद का आहार है ! अब मेरी कोई इच्छा नहीं । समझो, मातृत्व को छोड़ अब मेरे पास यौवन की कोई उमंग नहीं···आकांक्षा नहीं···!'

उठकर विपिन ने साँस भरी और कहा—'तुमने बहुत कहा ।

मैंने बहुत सुना, भाभी ! अब आराम करो। तुम्हारे सिर में दर्द होगा। विश्वास करो, मेरे मन में कुछ नहीं है—सच, कुछ नहीं !'

रजनी ने फिर अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'तुम अपने भाई को पत्र लिख दो कि भाभी बीमार है—आज ही !'

विपिन ने वहाँ से जाते-जाते कहा—'यह भी तुम्हारा घर है भाभी ! आत्माराम स्वयं आयेंग'''किसी दिन भी आ जायेंगे।'

: १५ :

शहर से चलकर जब आत्माराम घर पहुँचा, तो उसे अकेला देखकर माँ को अचरज हुआ। उसने रजनी और कुमुद के लिए पूछा।

आत्माराम ने बताया—'रजनी शहर में विपिन के यहाँ है। उसे कुछ दिन वहीं रहना है।'

किन्तु पुत्र से यह सुनना माँ को अच्छा नहीं लगा। उसने रोष तथा कुण्ठित भाव में आत्माराम को देखा।

माँ के मन की बात समझकर आत्माराम ने कहा—'तुम्हारी बहू को वहाँ कोई कष्ट नहीं होगा, माँ ! वहाँ विपिन की फूआ है। वह बहुत समझदार है।'

परन्तु माँ को आत्माराम की इतनी बात सुनकर भी सन्तोष नहीं हुआ। जब वह पूर्ववत् पुत्र को घूरती रही, उसे अपराधी समझती रही, तो तब आत्माराम ने फिर सफाई देने तथा अपने को निरपराध बताने के अभिप्राय से कहा—'माँ, रजनी की भी यही इच्छा थी। उसके मन में था।'

माँ ने मानो तड़पकर कहा—'उसके विचार पर तुझे भी सोचना था। आँख मूँदकर बहू की बात नहीं माननी थी ! त बहू को छोड़

आया, अच्छा नहीं किया ।'

आत्माराम ने फिर धीर भाव म कहा—'तुम्हें किस बात का भय है माँ ! वह भी अपना ही घर है ।'

माँ ने कहा—'यह भय का प्रश्न नहीं है, आत्माराम ! यह लोक-चर्चा का विषय है । विपिन अभी अविवाहित है । रजनी भोली है और अजान है ।

अपनी माँ के सन्दिग्ध भाव को देख आत्माराम हँस दिया । उसने कहा—'रजनी न भोली है, न अजान है । वह चतुर है । अपना उत्तर-दायित्व समझती है ।'

माँ ने कहा—'तुम कल ही जाओ और वहू को ले आओ ।'

आत्माराम बोला—'कल ही !' उसने कहा—'न, माँ ! विपिन पर सन्देह करना भी उसका अपमान है । ऐसे तो वह मुझसे टूट जायगा । दूर हो जायगा ।' उसने कहा—'मैंने तो सोचा कि वहाँ कुछ दिन रहकर रजनी का मन भी बदल जायगा और विपिन भी रजनी के सम्पर्क में रहकर स्त्री और पुत्र की महत्ता पहचान लेगा । वह विवाह नहीं करता। फूवा परेशान है । मेरा मत है कि रजनी के द्वारा उसे विवाह करने का उत्साह मिलेगा ।'

किन्तु एक बार माँ के मन में जो रोष आया तो वह एकाएक नहीं मिटा । वह टिका रहा । उसने आत्माराम से सफाई की पूरी बात सुनकर भी रोषपूर्ण स्वर में कहा—'तुझे विपिन का ध्यान है, बहू का नहीं ! अपने बच्चे का नहीं ! इस घर की प्रतिष्ठा का नहीं !'

इतना सुनकर, आत्माराम मौन रह गया । वह एकाएक उत्तर नहीं दे सका । वह कातर और दयनीय भी बन गया । जैसे माँ के सामने वह झुक गया । निरुत्तर हो गया ।

माँ ने फिर मन में कहा—अजीब बात है, यहाँ से दोनों साथ-साथ गये । बाहर घूमने गये । और बाबूजी अब अकेले हाथ हिलाते हुए आ गये ! उसने आत्माराम की ओर देखकर कहा—'मैं कहती हूँ तू बैल-सा

बढ़ गया है, कभी शऊर से भी चलेगा। इस दुनिया की रीति-नीति भी समझेगा! बहू वाला बन गया है, बेटे का बाप बन गया है, तो इतने पर भी कोरी भावना में डूबेगा! मैं कहती हूँ, ऐसे रहा, तो तू भूखा मरेगा! अपने हाथों फजीता करेगा! वह शहर का छोकरा विपिन—निरा बाबूजी—तेरी निगाह में ऐसा बन गया······जैसे गंगा का जल! राम-राम! सच, तूने तो अपनी बुद्धि को ताक में उठाकर रख दिया··· रे, आत्मा! तू पति है, बच्चे का पिता है! सोच तो, तेरे सिर पर कितना बड़ा उत्तरदायित्व है। तू दूसरों के विचार पर, दूसरों की इच्छा पर ही, अपना घर लुटा देगा, क्या? तू इतना पढ़-लिखकर भी बुद्धू रहा! तू अब भी नासमझ रहा, आत्माराम!'

लेकिन आत्माराम माँ के उस क्रोध को सरलता से पी गया। जैसे उसे इसका पूरा अभ्यास था। वह तब भी हँसकर बोला—'अच्छा, अच्छा! मैं तुम्हारी बहू को ले आऊँगा। जल्दी ले आऊँगा,—बस!' यह कहते हुए आत्माराम ने दूसरी ओर देखा। उसी ओर देखते हुए, उसने आर्त्त बनकर कहा—'तू यों ही रुष्ट होती है, माँ! सोचती है न, कि आत्मा सीधा है। यह तो माँ की भी सुनता है और बहू की भी सुनता है। हाँ, मेरा काम ही सुनना है। और वह बहूरानी है, जो मुझसे ब्याही गयी, उसकी इच्छा-पूर्ति करना भी मेरा काम बन गया है।' यह कहते हुए आत्माराम ने माँ की ओर देखा। वह निरे दीन भाव में माँ को लक्ष करके बोला—'इस आत्मा की अजीब मुसीबत है! कभी कुछ, कभी कुछ!'

माँ ने तब बलात् हँसकर, ममता के साथ आत्माराम को देखा। उसने कहा—'अरे, मेरे बेटे! तू सोचता तो है नहीं, स्त्री आदमी की इज्जत है। पल में धुल जाय···पल में मिट जाय!'

इतना सुनकर, आत्माराम मौन रह गया। तदन्तर ही, वह अपने कमरे में चला गया। वहाँ जाकर, उसने एक किताब उठा ली और पढ़ने लगा। किन्तु देर तक पढ़ने के बाद भी, वह नहीं जान सका कि उसमे

क्या पढ़ा। उसके मस्तिष्क में तब भी माँ का कथन घूम रहा था। उसे बार-बार यही याद आता कि स्त्री आदमी की इज्जत है। जो पल में धुल जाय……पल मे मिट जाय। निदान, जब वह किताब नहीं पढ़ सका, तो उसे बन्द करके रखदी और कमरे में घूमने लगा। एक बार वह कमरे की खिड़की के पास जा खड़ा हुआ और सामने दूर तक दृष्टि डालकर देखने लगा। इस प्रकार देखते हुए, एकाएक उसके मन ने कहा—'यह सब क्या है, आत्माराम ! दिखता है. जीवन कठिन है—दुर्बोध है।' यह कहते ही, आत्माराम स्वयं अपने-आप में अधीर हो गया। वह रजनी के प्रश्न पर टिक गया। लेकिन आश्चर्य तो यह कि वह एक पल के लिए भी रजनी को दोषी नहीं पा सका। वह तब भी न माँ की बात से सहमत हुआ और न कह पाया कि उसने जो कुछ किया है, वही सत्य है, वही ध्रुव और अटल है।

लेकिन वह खिड़की से हटकर फिर कुर्सी पर बैठ गया, तो अपने दोनों हाथों की उँगलियों को सिर के बालों में देता हुआ बोला—'जब यह है, तो सामाजिक जीवन क्या है ? उसका महत्व क्या है ? आदर्श की भी सीमा है। इस जीवन में आकर हमें कुछ नियमों का पालन भी करना है। बस, माँ की भी यही तो बात है ! पुत्र को वही माँ चाहिए जिसने कि उसे पैदा किया है। वही पिता ! और फिर भी कहते हैं लोग कि सभी अपने हैं ! सभी वसुधैव कुटुम्बकम् में बँधे हैं ! आत्माराम ने खुले स्वर में कहा—निरा झूठ ! पाखण्ड ! सभी जुदे-जुदे खानों में बन्द है। सभी सीमा निर्धारित किये हैं। तभी यह पाप है ! दुर्विचार है ! अविवेक है ! सन्देह है ! इसी दुर्भावना पर नारी की व्यवस्था की गयी है। वह निरी कोमल और सन्देह की वस्तु बनायी गयी है। इसलिए जब ऐसी अवस्था है, तो निश्चय ही, मैंने भी अच्छा नहीं किया। शायद अपने बोझ को रजनी पर डाल दिया। और सुनते आये हो तुम कि नारी शक्ति-रूपा है। जब रजनी इतन दुर्बल है, निस्तेज है, तो उसे माँ बनने का ही क्या अधिकार था ! जमाना कहता

आया है कि स्त्री, जीवन म एक बार ही अर्पित और समर्पित होती है। फिर रजनी तो पत्नी के साथ माँ है। उसका जीवन क्या हल्का है! नहीं, मैंने ठीक किया। उचित किया। इतना कहते ही, आत्माराम बाहर चला गया। वह मुख्तार के पास जाकर बोला—'मालगुजारी दी, या नहीं ?'

मुख्तार ने कहा—'पिछली कल ही गयी है। इस बार की चिंता है।'

'चिन्ता क्यों ? क्या किसानों ने रुपया नहीं दिया ?'

'इस बार भी मालगुजारी कठिनाई से दी है। किसान नहीं दे रहे हैं। कुछ असमर्थ हैं, कुछ चोर हैं।' मुख्तार ने कहा।

यह सुनकर, आत्माराम असमंजस में पड़ गया। उसने चिन्तित भाव से कहा—'तो किसान बिलकुल नहीं दे रहे हैं!'

मुख्तार ने कहा—'न देने के बराबर है। अम्माजी एक वर्ष से आधा रुपया दे रही हैं।'

'इस प्रकार कब तक चलेगा!' आत्माराम स्वतः ही बोला—माँ देती रहेगी और सरकार का खजाना भरता रहेगा। एक दिन आयेगा कि यह घर भूखा मरेगा। वह सीधा माँ के पास गया और बोला—'मैं अब जमीन का काम देखूँगा, माँ! अपना पूरा समय दूँगा। ऐसे तो एक दिन कुछ भी नहीं रहेगा। सब कुछ नष्ट हो जायगा।'

माँ ने कहा—'मैं तुझसे कब से कह रही हूँ कि जमींन का काम देख! अब तुझे यह भी देखना है, बेटा!'

आत्माराम फिर अपने कमरे में चला गया। उस समय वह चिन्तित था। उसने कहा, आदमी के पास रोटी है, तो सब-कुछ है। उसने मुख्तार के पास आकर कहा—'मुख्तारजी, दया और धर्म का पालन तभी शोभता है कि जब पेट को रोटियाँ मिल जायें। जब आपको इस जमींन का व्यापार करना है, तो रुपया भी चाहिए। दिखता है, आप भी माँ का पाठ पढ़ गये हैं। इस दया को आप भी मानते हैं। तब पैसा नहीं आयेगा। आपको कोई भी किसान मालगुजारी नहीं

देगा। वह सदा ही गरीबी का बहाना करेगा। आपको मूर्ख बनायेगा!'

मुख्तार ने कहा—'आप ठीक कहते हैं, आत्माबाबू! इस काम में दया का नाता नहीं निभ सकेगा। उसका रास्ता और है। बिलकुल और!'

आत्माराम बोला—'जब किसान आपकी जमींन जोतता है, तो वह पैसा जरूर दे। न दे, तो जमींन छोड़ दे। वह और किसी को जोतने दे।'

मुख्तार ने कहा—'हमें सख्ती से भी काम लेना चाहिए।'

आत्माराम बाहर जाता हुआ बोला—'हाँ, हमें इस उपाय का भी अवलम्बन करना चाहिए। जरूर करना चाहिए।'

उस मुख्तार ने जीवन में प्रथम बार आत्माराम के मुँह से सेवा और धर्म के प्रति जिस प्रकार की उपेक्षा पायी और समझी, तो वह उसी को मन में लिए-लिए मुस्कराया। मानो एक बार फिर वह जीवन में मनुष्य की परिस्थिति का कायल बन गया। उसी अवस्था में उसने कहा—परिस्थिति का सरा नाम ही जीवन है······आदमी इसी पर आश्रित है!

: १६ :

एक दिन प्रातःकाल होते ही, जब रजनी की आँख खुलीं, तो उसने देखा कि उसके ऊपर गरम चादर पड़ी है। और वह चादर विपिनबाबू की है। यह देखते ही, उसने अपने से प्रश्न किया—विपिन बाबू कब आये? क्यों आये? रजनी को तभी अपने शरीर की दिगम्बर-प्राय स्थिति की कल्पना करते हुए लज्जा आई। उसे देर तक यह बात पसन्द न आई कि विपिनबाबू चुपचाप ही, चोर की तरह उसके

कमरे में आये और चले गये ! रजनी ने माथे में बल डालकर कहा—यह बुरा है ! यह तो विपिनबाबू की चरित्र-भ्रष्टता है ! शिः ! भला यह भी कोई बात है ! अब वह आयें, तो मैं उनसे कहूँगी, आप ऐसे देवर हैं······आप ऐसे सभ्य और भले आदमी हैं······!

इस प्रकार रजनी एकबारगी कुपित होकर काँपने लगी। वह क्षण भर मति में भ्रम-सी बनकर फिर बोली—विपिनबाबू के मन में क्या है ! इन्होंने क्या सोचा है !

उसी समय विपिन घर में आया। वह रजनी के कमरे के सामने आकर खड़ा हो गया और बोला—भाभी, सुकड़ी पड़ी थीं। ऐसे में सर्दी लग जाने का डर होता है। दिखता है, सोते समय तुम्हें कपड़ा ओढ़ने का भी होश नहीं रहता !

यह सुनते ही, जो कुछ रजनी के मन में था, विपिन के प्रति रोष का भाव था, वह जिस रास्ते से आया, लौट गया। वह तब शान्त बन गयी। उसने मुस्कराते हुए विपिन की ओर देखा। सरल भाव में कह दिया—'धन्यवाद आपको !'

विपिन ने पूछा—'सिर का क्या हाल है ? अब ठीक है ?'

रजनी ने कहा—'हाँ, अब ठीक है।'

उसी समय विपिन ने कमरे की चौखट पर एक पैर रख लिया। उसके जूते से किवाड़ की संकल हिलाता हुआ बोला—'आत्मा भाई ने न पत्र दिया, न आने का नाम लिया। सच, मैं तो उन्हें आज तक नहीं समझ पाया !'

विपिन की उस अप्रत्याशित और अकल्पित बात को सुनकर, रजनी ने उसकी ओर देखा। तब तुरन्त ही, विपिन की ओर से आँख फेरकर उसने पास में सोये हुए कुमुद को लक्ष्य करते हुए कहा—'मनुष्य क्या सोचता है, वह कब, क्या कुछ चाहता है, इसका कोई विज्ञान हो, तो हो; मैं नहीं जानती। पर सुना है कि आदमी का काम ही यह है कि जीवन भर कुछ पाये, कुछ खोजे। सो, तुम्हारे भाई भी इस प्रयत्न

में लगे हैं।' इतना कहते ही वह होठों से हँसी और विपिन की ओर देखने लगी।

उस अवस्था में ही, विपिन ने भी रजनी की ओर देखा। लगता था कि वह अपने-आप में कुछ लज्जित भी हो गया। कदाचित् उस समय भी उसने चाहा कि रजनी स्वयं आत्माराम के विरुद्ध कुछ कहे। वह सुने। लेकिन उस समय भी जब उसने रजनी को पूर्ववत् पाया, आत्माराम के प्रति एकनिष्ठ पाया, तो वह सचमुच ही, जैसे निरुत्तर बन गया। उसका मानस अपने-आप ही करुण और द्रवित हो उठा। अपितु हुआ यह कि विपिन के मन में यह भय उपज आया कि कहीं इस रजनी के मन में यह भाव तो नहीं आया कि मैं पत्नी को पति के विरुद्ध करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। कोई जालसाजी का खेल इस रजनी के साथ खेलने चला हूँ। किन्तु उसने तो तब भी, रजनी को पूर्ववत् हँसती और मुस्कराती हुई पाया। उसी समय, उसने रजनी से फिर सुना—'विपिन बाबू, इसमें अपवाद कैसा कि न चाह कर भी, किसी से सहमत हुआ जाये! तुम्हारे भाई तो मुझसे स्वयं कहते थे कि परिस्थितियाँ आदमी को ढालती हैं। सो, वह कथन मुझे आज भी याद है। वह सत्य लगता है। हम सब निरन्तर ही, जीवन के पल-पल में ढलते हैं, बदलते हैं।'

किन्तु विपिन के पेट में बैठी हुई बात, जैसे अविराम गति से चंचल और निर्भीक बनी थी। वह इच्छा न करके भी, बार-बार उसके मुँह पर आती। फलस्वरूप, जब रजनी ने फिर आत्माराम के पक्ष में बात कही, तो वह बोला—'आत्माराम ने सचमुच ही, अविवेकी और अदूरदर्शी काम किया है। मैं यह कहना नहीं रोक सकता। मैं कहता हूँ कि क्या इसीलिए उसने विवाह किया? इसी अभिप्राय से तुम्हें अपने जीवन के साथ बाँध लिया? मेरा मत है कि यह बुरा है! नारी के साथ अन्याय है!'

इतना सुना, तो रजनी के होठों की मुस्कराहट दूर हो गयी।

मानो वह उद्दण्ड विपिन से हार गयी। लेकिन तब भी, वह गम्भीर बने हुए विपिन की ओर देखकर बोली—'आप भ्रम में हैं, विपिन बाबू! तुम्हारे भाई ने मुझे नहीं, बल्कि मैंने ही उन्हें बाँध लिया है। उन्होंने जाने कितनी बार दर्पण की तरह अपने को मेरे सामने रख दिया। यह विवाह मेरी इच्छा से हुआ।'

उसने फिर कहा—'और रही इस विरोध की तथा असहमति की बात, मैं इसे भी अपने ऊपर लेती हूँ। मैं सदा की तरह, इस बार भी उनके सामने नत हो जाऊँगी। मैं अपने किये को स्वयं ही भोगूँगी!'

यह कहते हुए, रजनी का मुँह बरबस खिल गया। उसने प्रफुल्ल हुए भाव में, तब कुमुद की ओर देखकर कहा—'सुख और ऐश्वर्य की गोद में सभी रहना चाहते हैं। भला बताइये तो, मनुष्य बनकर, दरिद्रनारायण की सेवा में कितने लगते हैं? कितने उसके चरणों में सिर झुकाते हैं? मेरे पति उसी ओर बढ़े हैं। अब वे मुझे निकट से दीखते हैं। मैं कहीं भी रहूँ, वे सदा मेरे सामने रहते हैं। वह मैंने अनेक रातों में, क्षुधा पीड़ित प्राणों के लिए रोते देखे हैं। इसीसे वह अपने जीवन के प्रति निर्मोही और उदासीन बने हैं। फिर मैं कौन! जो पाप है, वह मेरा है। वह मैंने किया है। वह मेरे अन्दर व्याप्त है, विपिनबाबू!' इतना कहते हुए रजनी का स्वर अवरुद्ध बन गया। उसकी आँखों में भी जल भर आया।

उसी समय रजनी ने अपनी आँखें पोंछकर कहा—'वह आज मुझे सपने में भी दिखाई दिये हैं। निश्चय ही, वह मुझसे और मेरे कर्म से सुखी नहीं हैं। वह दुःखी हैं।'

विपिन ने कहा—'मैं आज पत्र दूँगा। भैया आत्माराम को बुलाऊँगा।'

'नहीं, बाबू! वे स्वयं आयेंगे। निश्चय ही, वह एक-दो दिन में ही यहाँ दिखाई देंगे। मैं उन्हें और उनका हृदय पहचानती हूँ।'

रजनी की उस अटूट आत्म-विश्वास भरी बात को सुनकर, विपिन कदाचित् जीवन में प्रथम बार, एक नारी के समक्ष झुक गया। वह अपने में ही एकाएक समाधिस्थ हो गया। अपनी उस अवस्था में, जब वह अपने कमरे में जाकर बैठा, तो देर तक, अपनी पहली स्थिति में नहीं आ पाया। वह बार-बार अपने मन में लजा रहा था और पश्चात्ताप की आँधी में उड़ा जा रहा था। उसने अपने-आप कहा— मैंने अच्छा नहीं किया। पत्नी के समक्ष ही, आत्माराम का निरादर किया। उसे कायर बता दिया! तुम रजनी में जिस इच्छा को देखना चाहते थे, उसका एक बार भी आभास नहीं मिला। मानो रजनी यौवनमयी नहीं······जवानी की आँधी में उड़ती हुई नहीं! यह तो प्रौढ़ा है! अपना और पति का आध्यात्मिक और शाश्वत जीवन ही समझना पसन्द करती है। वही मनाती है। और तुम्हारा स्वार्थ है— रजनी? आत्मा की बहू?'

अपने से ऐसा प्रश्न करते ही, विपिन एकदम जड़ बन गया। वह कातर हो गया। उसका मानसिक स्थर भी जैसे चूर-चूर! उसकी आँखों में अँधेरा था। विचार-भ्रष्ट-सा जैसे बैठा था, उसी प्रकार बैठा रहा। उसके हाथ में पेन्सिल थी। सामने कागज था। वह उस पर बेजाने ही कई जगह लिख गया—रजनी······आत्माराम······ आत्माराम······रजनी······!

उस समय, विपिन सचमुच ही खिन्न था। उसका मन बार-बार चीख रहा था। आँखों में उद्वेग था। जब वह अधिक अधीर हुआ, तो बरबस ही, फफककर रो पड़ा। वह रोता रहा।

अवसर की बात कि उसी समय, रजनी ने विपिन के कमरे में पैर रखा। विपिन को रोता हुआ देख, उसने चकित तथा स्नेहानिल स्वर में कहा—'तुम रो रहे हो, विपिनबाबू! बताओ, क्यों?'

किन्तु इतना सुनकर भी, विपिन नहीं रुका। उसका मन जैसे सचमुच ही मचल गया। उसके अन्तर में आँसुओं का जो भरा हुआ

कुआँ था, वह अपने-आप ही, ऊपर आ गया। वह बहने लगा।

लेकिन, इतना देखकर तो, रजनी स्वयं भी आर्त्त बन गयी। उसका कोमल मन भर आया। उसने कहा—'क्या मेरी बात पर रोये ? तुम······विपिनबाबू······!'

विपिन ने सामने की ओर देखते हुए कहा—'दोष मेरा है भाभी। तुम्हारा नहीं। तुम मुझे क्षमा कर दो।'

रजनी ने तड़पकर कहा—'कुछ बताओ तो ! कुछ कहो !'

उसी समय, विपिन ने रजनी की ओर देखा। उसकी आँखों को देखते हुए, उसने कहा—'तुम बैठो, भाभी ! बैठो !'

रजनी कुर्सी पर बैठ गयी। विपिन ने कहा—'आत्मा भाई के लिए जो कुछ मैंने तुमसे कहा, मुझे भय है कि मैंने स्पर्धा और उपेक्षा के भाव में तो नहीं कहा ! उसे तुमने मेरी दुर्भावना तो नहीं समझा। इसी से, अब सोचता हूँ, मैंने क्यों कहा। मुझसे ऐसा क्यों कहा गया !'

'बस, यही ! इतना ही !' रजनी ने कहा—'तुम भी भावुक बन रहे हो, विपिनबाबू ! जो मन म आता है, कहते हो और सोचते हो !' इतना कहते हुए वह हँसी और बोली—'भला तुमने क्या कहा ! कुछ अपने मन में कहा हो, तो दूसरी बात। मुझसे तो नहीं कहा। क्या तुम इतने अनजान हो ! इतने अविवेकी हो ! न, कभी नहीं ! तुम तो वकालत करते हो ! कानून को मानते हो ! भला समाज के नियम तुम भूल सकते हो !'

इतनी देर में विपिन पूर्ववत् बन गया। उसका मन शान्त हो गया। वह रजनी की ओर देख, निरी शुष्कता के साथ हँस दिया।

रजनी ने फिर कहा—'इस रजनी के लिए तुम सौगात हो इसके देवर हो, तुम ! मुझे पति द्वारा ही तुम भेंट में मिले हो। और आज तुम रोये हो—छिः !'

विपिन ने कहा—'मैं सन्देह और भ्रम में था। वह अब दूर हुआ। मैं स्वयं ही, दुर्भावना में फँस गया था, भाभी !'

किन्तु भावनापूर्ण बनकर रजनी ने कहा—'इस भ्रान्ति और भ्रम का दूसरा नाम ही अँधेरा है, पाप है। मैं कहती हूँ, ऐसा क्यों बना जाय! क्यों इस प्रकार के शीशे में अपना मुँह देखा जाय! भला ऐसे क्या जीवन कटता है। दूसरे की सम्पत्ति देखकर क्या हमें कुछ प्राप्त होता है? ईर्षालु बनना, चोर बनना, इस जीवन का सबसे बड़ा घातक कर्म है, विपिनबाबू! तुम समझो, हम सब एक निमित्त मात्र ही, इस धरती पर आ गये हैं। हमारे कुछ कर्म हैं। कुछ श्रेष्ठताएँ हैं, हमारी! जगत की इस अपार लीला में, सभी अपना अभिनय करते हैं। इसी में लीन बनकर, समाज, धर्म और नैतिक-जीवन का पाठ पढ़ते हैं। जिस चरित्र की नींव पर हमारा यह शरीर रूपी महल खड़ा है, भला सोचिये तो, निर्बल नींव पर यह महल कब तक खड़ा रहेगा। एक दिन जरूर गिर जायगा। मैं नहीं जानती कि जो हमारा विवेक है, हमारा दीन है वह कितने भारी धरातल पर टिका है। लेकिन यह तो सत्य है, जिस प्रेम ने और जिस अपनत्वता की कड़ी ने हम सबको एक सूत्र में बांध रखा है, वह आज भी अक्षुण्ण और अमिट है। हम सब जीवन के जिस किनारे पर खड़े हैं, उस पर अपने-पराये सभी साथी हैं।' इतना कहते हुए रजनी ने सांस भरी और उल्लासपूर्ण तथा भावमापूर्ण स्वर में कहा—'कदाचित् तुम यह देखते और समझते कि रजनी तुम्हारी भाभी है, तुम्हारे निकट के एक मित्र की पत्नी है, तो निश्चय ही, तुम रोते नहीं। तुम हँसते और अपनी भाभी से निःसंकोच बनकर अपनी बात कहते। तुम इस प्रकार अपने मन और वाणी के मध्य छिपाव या दुराव भी नहीं करते!'

विपिन ने एकाएक दीन बनकर रजनी की ओर देखा। उसने कहा—'भाभी······!'

'हाँ, विपिनबाबू! सच, मुझे तो लगता है कि तुम इस रजनी से दूर नहीं हो। तुम इसके ही एक अलभ्य और अनोखे आत्मीय हो!'

'हां, हां, मैं तुम्हारा हूँ। मैं तुम्हारा और आत्मा भाई का सेवक

हूँ ।' विपिन ने आतुर बनकर कहा ।

रजनी ने कुर्सी से उठकर, बाहर जाते-जाते कहा—'मुझे सेवक नहीं चाहिये, मुझे विपिन चाहिये ! हँसता और मुस्कराता हुआ विपिन !'

तब विपिन रजनी की ओर जैसे निपट अजान बच्चे के समान देखता का देखता रह गया ।

: १७ :

विपिन के पास से लौटकर, रजनी फूआ के पास जा बैठी । फूआ कुमुद को फीडिंग बोतल से दूध पिला रही थी और स्वयं भी उससे हँस-बोल रही थी । फूआ के पास बैठते ही, रजनी ने विपिन के विवाह का प्रसंग छेड़ा । उसने कहा—'अपने जीते-जी विपिन बाबू का विवाह कर दो । इस घर का बोझ किसी और के कन्धों पर डाल दो ।'

फूआ ने कहा—'विवाह कैसे हो, बहू ! विपिन नहीं मानता ।'

यह सुनते ही, रजनी ने आश्चर्य से भरकर कहा—'वाह ! यह भी कोई बात है ! न, फूआ ! विपिन बाबू ने ऊपरी मन से कह दिया होगा । भला विवाह कौन नहीं चाहता ? और इस जवानी में कौन नहीं एक से दो बनना पसन्द करता ?'

किन्तु फूआ ने तब भी उदास भाव में कहा—'क्या जाने, बहू ! आजकल की दुनिया ही न्यारी है । सब अपनी बात करते हैं । लड़का हो या लड़की, सभी अपनी बात को बड़ा समझते हैं । ऐसे में कौन कहे । इस विपिन को कौन समझाये ।'

उसी समय, कुमुद रजनी की गोद में आगया । उसके सिर पर हाथ फेरते हुए रजनी बोली—'मैं भी विपिन बाबू से कहूँगी । उन्हें

समझाऊँगी ।'

'हां, बहू ! तेरा कहा मान ले, तो मान ले !' उत्साह भाव में फूआ ने कहा ।

रजनी वहाँ से उठकर अपने कमरे में चली गयी । उसी समय कुमुद सो गया । रजनी ने उसे पलंग पर सुला दिया । सामने आते हुए नौकर को रोककर रजनी ने कहा—'देखना, विपिन बाबू हैं ?'

उसने कह दिया—'जी नहीं हैं । बाहर गए हैं ।'

यह सुनकर, रजनी ने हाथ की हथेली पर मुँह रख लिया । कुछ देर पूर्व के रोते हुए विपिन की कल्पना करके उसने कहा—'जाने क्या सोचते हैं, विपिन-बाबू ! इतना सब पाकर भी सुखी नहीं । सन्तुष्ट नहीं ।'

रजनी ने अपना मुँह हाथ से हटा लिया । तत्क्षण ही, उसने साँस भरकर, बड़ी दीन और कातर दृष्टि से सामने के हरे आसमान की ओर देखा । उसने सदय भाव में कहा—दिखता है, विपिन-बाबू में अब हँसी नहीं रही । अब जैसे मन में कुछ उलझा है । कोई गाँठ बन गयी है । वह न सुलझती है, न सुलझाने का प्रयत्न ही किया जाता है । यह कहते हुए रजनी ने आसमान की ओर से अपना मुँह फेर लिया । उसमें प्रबलता के साथ यह विचार भी उठ आया कि विपिन आज रोया क्यों ? वह ऐसी किस कठोर वस्तु से टकरा गया ? किस वेदना ने उसे ग्रस लिया ? उसने जितना कहा, शायद वह सत्य नहीं था ! वह बनावटी था ! इस रजनी के साथ छल था ! वह······!'

निश्चय ही, रजनी ने देर तक नहीं समझा कि यह है विपिन-बाबू के रोने का रहस्य···उसकी वेदना का अर्थ !

उस समय रजनी की दृष्टि कमरे की दहलीज पर टिकी थी। कमरे के फर्श पर लगे संगमरमर के पत्थर को लक्ष्य कर, उसने कहा—विपिन बाबू ने जो सोचा है, वह गलत है । उन्हें विवाह करना है । अपना घर बसाना है । बाल-बच्चेदार बनना है । आज तो फूआ

है, तो घर खुला है। इतने बड़े घर में प्रकाश होता है। नौकरों से क्या काम चलता है। तब तो भरा घर भी श्मशान का ढेर लगता है ! घर माँगता है, नारी·········उसी से जगमग होता है। हँसता है, मुस्कराता है।

लेकिन उसी समय रजनी के मन में शंका उठी। वह उसे पाकर, और गम्भीर बन गयी। तुरन्त बोली—जो रजनी एक बच्चे की माँ है, इस मातृत्व को छोड़ भला अब इसके पास क्या है ! इसके लिए अब और क्या शेष रह गया है !

यह कहते हुए, रजनी ने स्वयं अपने को तो सन्तोष दे लिया किन्तु जिस विपिन की भावना को लक्ष्य करके इतना कहा, उसके लिए, उसे तब भी सन्तोष नहीं हुआ। उसे याद आया कि फूआ ने जाने कितने दीन और भयभीत हुए स्वर में कहा, तुम्हारा कहना मान ले, तो मान ले, मेरा नहीं मानता ! वह विवाह करना नहीं चाहता।

तभी रजनी ने स्पष्ट स्वर में कहा—कुमुद और इसके पिता की निधि को छोड़कर, इस रजनी के पास और क्या है ! विपिन बाबू देखें और इस रजनी की स्थिति को समझें। जो कुछ भी इसके पास है, वह इसका अपना नहीं हैं। पराया है। वह बोली—मैं नारी हूँ। एक पुत्र की ममता पाकर, अब यह भी समझती हूँ कि एक विपिन बाबू क्या, विश्व का कोई भी व्यक्ति, मेरे ममत्व को पाने का अधिकारी है। कुमुद के पिता ने मुझे सदा यही कहा है। उन्होंने एक बार क्या, अनेक बार अपनत्वता का पाठ दिया है। उन्होंने पत्नी-प्रेम के उपहार में यही मन्त्र प्रदान किया। जो मेरे जीवन में मिल गया है। मुझे अन्त तक संजोये रखना है। मुझे इसी अमर भावना पर अपना उत्सर्ग करना है।

उसी समय रजनी ने प्रफुल्ल बनकर कहा—तू बड़ी सौभाग्यवान है। तू पति और पुत्र के प्रेम को पाकर निहाल बन गयी है। जगमगा रही है। पति के निर्देशित मार्ग पर चल रही है। तू इसी आधार पर

टिकी हुई, इस विपिन बाबू के घर आई हूँ । यहाँ भी तेरा काम है । विपिन बाबू को समझा, उसे सांसारिक बना । कदाचित् उन्होंने (आत्माराम ने) भी मौन भाव में यह काम मुझे सौंपा है ।

फलस्वरूप, रजनी विपिन बाबू के आने की प्रतीक्षा में लग गयी । वह उसी विचार में लीन हुई, सोते हुए कुमुद के सिर पर जाने कितनी गहरी ममता के साथ हाथ फेरने लगी और उसके मुँह की ओर देखने लगी । उस समय, निश्चय ही, रजनी को यह देखकर अपार सुख मिला । उसके मन को सन्तोष हुआ कि उसके कुमुद की नाक, होठ, माथा, आँखें—वे सब आकार—आत्माराम सरीखे थे । उसीके प्रतिरूप ! तभी उसके मन ने कहा, जब मेरा बच्चा, पति के रूप पर है, तो मुझे अभाव क्या है······पति का रूप तो मुझे प्रतिक्षण दीखता है !

यह कहते हुए, रजनी अपने-आप हँस दी और उसी प्रसन्नता में गद्गद हुई, कुमुद की ओर झुक गयी ।

: १८ :

एकाएक, आत्माराम सभी ओर से छूटकर घर के कामों में लग गया । अब उसे माँ का भी यही आदेश था । घर की आर्थिक स्थिति दिन-पर-दिन विषम बन रही थी । माँ अधिक चिंतित थी । आत्माराम ने स्वयं अनुभव किया कि जब जीवन है, तो इसकी पतवार को खेने के लिए, जीविका-साधन भी ढूँढ़ना है । फलस्वरूप, वह जमींदारी के काम स्वयं भी देखने लगा । जिन्दगी की उस नई व्यवस्था पर आकर आत्माराम सन्तुष्ट हो, उसके अन्दर के परमेश्वर ने कदाचित् एक दिन भी, इसे अनुभव नहीं किया । वह जब अपने जीवन और विचारों की ओर देखता, तो अपने को सर्वथा ही जमींदारी

और घर के प्रति अयोग्य पाता। क्योंकि वह जमींदारी से पैसा कमाना चाहता था। जो हिंसा, पाप तथा अत्याचार का आश्रय लेकर ही प्राप्त किया जा सकता था। अपनी इस नई स्थिति पर आकर आत्माराम कई दिन तक उलझा रहा। वह जंगलों में भटकता रहा। पेड़, पक्षी तथा जंगली पशुओं तक से अपनी बात का उत्तर माँगता रहा। क्योंकि वह स्वयं तो दया, ममता और अपनत्वता का प्रतीक था। वह हिंसा नहीं कर सकता था। और पैसा इस प्रकार नहीं आता। अपितु, उसने तो देखा कि आदमी तो दूर, पशु-पक्षी सभी जैसे उसी हिंसा के प्रतीक थे। वे उसीके आश्रित थे। वे सभी हिंसा के प्रणेता...... हिंसा के उपासक थे।

अतएव, आत्माराम जहाँ कहीं देखता, अनाचार और पाप ही पाता। वह जब तालाब के किनारे जाता, तो बड़ी मछलियों द्वारा छोटी मछलियों का भक्षण देखता। उसे लगता कि सभी भक्षण करते हैं......जीव को खाकर अपनी उदर-पूर्ति करते हैं! मनुष्य तो स्वयं आत्माराम भी था। अपने समाज का क्रूर और मदान्ध व्यापार वह सर्वत्र देखता। स्वार्थ और स्वच्छंदता का व्यापार देख पाता था!

एक दिन जब सन्ध्या आई और गायें जंगल से आकर रँभाती हुई घरों की ओर दौड़ रही थीं, तो तभी, आत्माराम अपने कमरे में बैठा हुआ एक उपन्यास पढ़ रहा था। उसके सामने नायक के चरित्र-चित्रण का प्रकरण चल रहा था। नायक अपनी प्रेमिका को लक्ष्य करके कह रहा था—'क्या यही मेरा स्थायित्व है, यही है मेरा जीवन !' उसने मन के विपरीत बन, पुकारकर कहा—'नहीं, जीवन का स्थायित्व उस ओर है—अनन्त की ओर !' और मानो नायक अपनी इस बात पर रुक गया। मानो वह अपने-आप में खो गया! उसका अन्त कहाँ है, यह जानने में भी असमर्थ बन गया! वह पृथ्वी-पुत्र पृथ्वी पर ही खड़ा रहा। धरती की ओर ही, आकांक्षित बनकर देखता रहा।

यहीं पर आत्माराम ने किताब को बन्द कर दिया। वह कुर्सी

छोड़ कर खड़ा हो गया। पलंग की पटट्टी पर एक पैर रख लिया और कहने लगा—'जाने मैं भी क्या हूँ ! क्यों व्यर्थ में इस मनुष्य योनि में आ पड़ा हूँ। लोग कहते हैं कि यह योनि श्रेष्ठ है। बड़े अच्छे संस्कारों से प्राप्त होती है। परन्तु मैं कहता हूँ यह भी निरुद्देश्य है ! पाप है ! क्रूरता और बर्बरता का ही एक खेल है,—यह मनुष्य-जीवन !

उसी समय, मुख्तार वहाँ आया। उसने आते ही कहा—'चार दिन में ही मालगुजारी दाखिल करनी है, बाबू ! वसूली न कुछ के बराबर हुई है। माँ मौन है। वह अब कुछ देने मे असमर्थ है।' यह कहते हुए मुख्तार ने फिर कहा—'माँ का कहना भी ठीक है। वह अब कहाँ तक दे। उसकी भी सीमा है।'

'तब क्या हो ! क्या हो, मुख्तारजी !' आत्माराम ने एकाएक चिन्तित बनकर कहा। वह उस पैसे की समस्या में लीन बन गया। अपने-आप बोला—'यह भी एक बोझ है ! मुझे ही उठाना है। माँ ने अब यही कहा है। अच्छा !' कहते हुए वह विषादपूर्ण ढंग से हँसा। वह तभी मुख्तार की ओर देखकर बोला—'मुख्तारजी, कुछ-न-कुछ होगा ही ! निश्चिन्त रहिये !'

मुख्तार ने कहा—'हां, बाबू ! कल तक हो जाये, तो ठीक है।'

'अच्छा, अच्छा !' कहते हुए आत्माराम मुख्तार के साथ ही, कमरे से बाहर गया। वह स्वयं जंगल की ओर चल दिया। घर से कुछ दूर जाकर उसने अपने-आप कहा—अभी तुम जिन्दगी से और उसकी वास्तविकता स दूर हो, आत्माराम ! तुम कोरी भावना और अनुभूति पर टिके हो। तुम जैसे जीवन भर इसी में रहना चाहते हो।

इतना कहते-कहते आत्माराम ने सामने की ओर देखा कि एक स्त्री है, उसके साथ एक छोटी लड़की है। वह औरत शायद उसकी जमींन जोतने वाले हरिया की बहू है और बच्ची उसकी लड़की है। बहू ने आत्मा को देखकर घूँघट कर लिया। जब आत्माराम उन माँ-बेटी के पास पहुँचा और आगे निकलने लगा, तो पीछे से हरिया की लड़की

ने कहा—'बाबू—!'

आत्माराम ने सुना, तो वह रुक गया। मुड़कर लड़की की ओर देखने लगा। लड़की ने भी उसकी ओर देखा और माँ द्वारा इंगित होकर उसने कुछ कहना चाहा।

किन्तु इससे पूर्व ही, आत्माराम ने कहा—'क्यों मुन्नी, कुछ कहना है ? मुझसे कहना है ?'

हरिया की बहू ने लड़की की ओट लेकर कहा—'बाबू से कहो—क्या अब पहले-पहल हम पर सख्ती करोगे ! अब इस तरह मार-पीट-कर सब-कुछ छीन लोगे ! हम गरीब तो हैं, पर बेईमान नहीं हैं। माल-गुजारी जरूर देंगे। पाई-पाई देंगे।' यह कहते हुए, हरिया की बहू का गला भर आया। उसी भर्राये स्वर में उसने फिर कहा—'फसल में कुछ हुआ नहीं ! घर में खाने को दाना नहीं ! और जो इस लड़की का बाप है, वह पन्द्रह दिन से बीमार है। आज मुख्तारजी बीसियों गालियाँ और धमकी देकर गये हैं। वह हमें अच्छी तरह जलील कर गये हैं ! भरे मुहल्ले में हमारी आबरू उतार गये हैं !'

आत्माराम ने इतना सुना, तो जैसे उसके पैरों तले की मिट्टी खिसक गयी। मुख्तार को ऐसा नहीं करना चाहिए था। विवश और बीमार व्यक्ति को अपमानित नहीं करना था। गालियाँ देना भी क्या अच्छा था ! किसी के सम्मान पर ठोकर मारना किसी प्रकार भी न्यायोचित नहीं कहा जा सकता ! उसी समय आत्माराम ने देखा कि बात करते हुए, हरिया की बहू का घूँघट ऊपर चढ़ गया है। उस युवा और दीन बनी हुई नारी की आँखों में ओस सरीखी बूँदें झिलमिला आई हैं। उसकी आँखों में पीड़ा है।

उसी समय, उसे स्वयं मुख्तार की बात याद आई। आज ही उसने कहा कि हरिया भी कुछ नहीं दे रहा है। बहाना बनाकर पड़ा है। अपने को बीमार बताता है। किन्तु जब उसकी बहू की वे आँखें देखीं, उन आँखों की दीनता देखी, तो बलात् आत्माराम के मन ने

चीखकर कहा—नहीं, झूठ ! हरिया बीमार है ! यह बहू दुःखी है ! इसके बदन पर ठीक से लाज ढाँकने लायक वस्त्र भी नहीं है !

उस समय आत्माराम यह देखकर भी द्रवित बन गया कि माँ को रोती पाकर उसकी बेटी ने भी रोना आरम्भ कर दिया। उसने भी रोते-रोते आत्माराम की ओर देखा। तभी हरिया की बहू बोली—'बाबू, तुम मालिक हो ! चाहे उजाड़ दो···चाहे बसा दो !'

'हरिया की बहू !' एकाएक आत्माराम ने कहा—'मुझे नही पता कि मुख्तार ने क्या कहा। सच, पैसा नहीं आता ! कोई भी नहीं देता ! इस प्रकार मैं नहीं जानता कि क्या होगा···कैसे होगा !' और तभी उसने अपने स्वर पर झटका खाकर कहा—'तुम मुख्तार की बात भूल जाना ! तुम चाहो, तो मुझे कह लो। मुझे क्षमा करना।' यह कहते हुए उसने कुरते की जेब से हाथ निकाल लिया और उस रोती हुई लड़की की ओर देखकर बोला—'क्यों, मुन्नी ! तू भी रो पड़ी ! पगली ! ऐसा नहीं करते। हँसा करते हैं। लो यह पाँच रुपये,—हरिया की दवा-दारू के लिये ! तुम इनसे काम लेना। तुम हरिया की राजी-खुशी की खबर भी देना। अब जाओ !'

रुपयों की ओर देखकर हठात् बहू ने कहा—'बाबू—'

'हाँ, हरिया की बहू ! देखो, हरिया हमारा है। सबकी तरह वह भी गाँव का है। वह हमारा भाई है। मैं क्या करूँ ! माँ परेशान है ! बेचारा मुख्तार भी परेशान है। पैसा कोई नहीं देता। शायद है नहीं; इसलिए नहीं दिया जाता। पर मुख्तार तो कहता था, कोई देना नहीं चाहता। लेकिन मैं तो सोचता हूँ, ऐसा कोई नहीं है,—हाँ, कोई भी नहीं !' कहते हुए उसने लड़की की ओर देखा और मुस्कराकर बोला—'क्यों री, मुन्नी ! अच्छा, अब जाओ ! घर जाओ !' कहते हुए आत्माराम वहाँ से चल दिया। वह तेज चाल से चल, फिर आगे बढ़ गया।

: १९ :

आत्माराम एकाएक हरिया की बहू की बात नहीं भूल सका। उसकी आँखों के सामने तब भी, उस बहू की रोती हुई आँखों का वह करुणापूर्ण दृश्य घूमता रहा। जंगल में दूर तक जाकर वह घर वापस आ गया। भोजन करके वह कुछ देर बाद ही सो गया। गाँव के ऊपर का आकाश तारों से भरा था। वह जैसे फूलों का थाल सजाये खड़ा था। निःसन्देह, उस समय आसमान हँस रहा था। चन्द्रमा जगमग हो रहा था। उसकी धवल चाँदनी चारों ओर फैल रही थी। दिखता था कि चारों ओर प्रसन्नता तथा मोहकता का साम्राज्य स्थापित था।

तभी आधी रात होते-होते एकाएक आत्माराम जाग गया। वह सोने की अवस्था में जिस स्वप्न को देखने लगा, उसीने उसे जगा दिया। आँख खोलते ही, उसने कमरे में देखा और अपने-आप कहा— 'हरिया की बहू ! तू !' आत्मा को याद आया कि स्वप्न में हरिया की बहू रो रही है। वह आत्मा के समक्ष अपनी दीनता तथा अवशता प्रगट करती हुई असहनीयता का बखान कर रही है। उस अवस्था में ही उसका घूँघट खुल गया था। हरिया की बहू की आँखों में जितनी पीड़ा थी, और अन्तर का कोलाहल था, मानो वह सभी-का-सब, आत्माराम ने देख लिया। इसलिए, जब आँख खुल गयी, तो आत्माराम उठकर बैठ गया। वह बाहर चन्द्रमा के प्रकाश को देखने लगा। अजीब बात थी, आत्माराम की यह कितनी बड़ी कठिनाई थी कि इतना अच्छा मौसम पाकर भी, वह प्रफुल्ल नहीं बना। उसका मन हर्ष से परिप्लावित नहीं हुआ। अपितु, उसे लगा कि जैसे वह आकाश का चन्द्रमा आग उगल रहा था······उसकी चाँदनी में शीतलता का नाम भी नहीं था। और आत्माराम का ध्यान भी उस समय कहीं और था। वह जड़ था, जैसे मूक !

अपनी उस विषम बन आई मनःस्थिति के साथ ही, आत्माराम

एकटक होकर बाहर की ओर देखता रहा। लगता था कि हरिया के प्रश्न को लेकर, उसका मन कसक रहा था। वह प्रश्न उसे मानसिक और आत्मिक वेदना पहुँचा रहा था। इस प्रकार आत्माराम उद्वेलित और अशान्त बन गया। फूल सरीखे खिलते हुए आकाश की ओर देखकर भी, वह जैसे उसे नहीं देख रहा था। उस अवस्था में ही, आत्माराम ने कहा—मैं भी इस सड़न भरी जिन्दगी की माँद का एक कीड़ा हूँ······मैं भी रुपया चाहता हूँ ! सबकी तरह, मैं भी इस भोगवाद से प्रसन्न हूँ !

यह कहने के बाद ही, आत्माराम का मन और अधिक जटिल बन गया। उसे जैसे किसी ने झिझोड़ दिया। जिसके साथ ही, उसने अपनी छाती को भींचकर, और आधी मिची हुई आँखों से सामने की ओर देखकर कहा—आत्माराम, तुम तो प्रगति और अनुभूति चाहते हो, भाई ! फिर ऐसा क्यों ! इतना अन्याय क्यों ! तुम्हारी इतनी बड़ी आवश्यकता क्यों ! तुम किसानों में और मजदूरों में रहकर भी, न किसान हो, न मजदूर हो। तुम उन सबसे ऊपर हो ! अपने को श्रेष्ठ समझते हो ! उन पर शासन करना चाहते हो। राज्य और धनिकों के समान तुम शोषण करने पर तुले हो ! तुम धरती माता का क्रय-विक्रय करते हो ! लोगों को धरती किराये पर देते हो ! तुम धरती के स्वामी बनना चाहते हो ! धरती के,—माता के ! शस्य श्यामला पृथ्वी माता के······!

उसी समय आत्माराम के समक्ष फिर हरिया का प्रश्न आया। वह बोला—जो व्यक्ति पैसा नहीं देता है, उससे नहीं दिया जाता है, बताओ आत्माराम, उससे कैसे पाओगे ! क्या उसकी जान लोगे ! उसकी खाल नोंच लोगे ! यह कहते ही, उसने तारों भरे आसमान की ओर देखा और बड़े दीन तथा कातर स्वर में बोला—मुझसे यह कैसे हो पायेगा ! न, न, इस पैसे और रोटी के लिये, क्रूरता, बर्बरता और अमानुषिकता का व्यवहार मुझसे नहीं हो सकेगा ! क्या परमात्मा इतना

बड़ा पाप मुझसे करायेगा !

आत्माराम ने उस जगमगाते हुए चन्द्रमा की ओर बड़े भावपूर्ण ढंग से देखा। उस अवस्था में ही, वह बोला—आत्माराम, तुम्हारा पथ और है। यह नहीं है। इस पर तो सभी चलते हैं। इस परम्परा का अन्त क्या अभी होता है ! न, इसका विकास तो सहस्रों वर्षों से हुआ है ! धर्म और समाज का ज्ञाता यह इंसान जाने कितनी देर से अपने स्वार्थ के लिये दूसरों का शोषण करता आया है ! अपनी स्वेच्छा का पेट भरने के लिये इसने सदा ही दूसरे के पेट पर घूँसा मारा है··· यह पूँजीवादी और बुद्धिवादी इन्सान, इसी प्रकार चला है···चलता आया हैं ! स्वार्थ के लिए सदा वध हुए है। युद्ध हुए हैं। इन्सानों के रक्त बहे हैं ! राज्य लड़े है। जातियाँ लड़ी है। व्यक्ति लड़े हैं। यह कहते हुए, आत्माराम के सिर की नसें जैसे तन गयीं। उन नसों का बहता हुआ खून रुक गया। जैसे वे नसें फट पड़ने की स्थिति में आ गयीं। आत्माराम बेचैन हो गया। उसने फिर कहा—आत्माराम, तुम्हारा जन्म इसलिये नहीं हुआ ! कुत्ता बनने के लिए नहीं ! तुम हड्डी चसने के लिए पैदा नहीं हुए। भोंकने के लिये भी नहीं। नियति तुमसे तो यह नहीं चाहती। वह कुछ और चाहती है। तुम वही दो। तुम अपने जीवन से, इस समाज को यही पाने दो, आत्माराम ! जाने कितने जन्मों के, कितने अनुष्ठानों के फलस्वरूप, तुम फिर यह शरीर पा गये हो—तुम मनुष्य जीवन को पा सके हो ! इसे व्यर्थ मत जाने दो। तुम यों ही, बहते हुए तिनके के सदृश, जीवन की लहरों में मत मिल जाओ। तुम अपना अस्तित्व देखो।

मन की ऐसी ही स्थिति में आकर, आत्माराम को जैसे शांति मिली। उसने फिर कहा—तुम जो कुछ देखते और सुनते हो, उस सबको ही, अपने ईश पर, तुम परमात्मा पर छोड़ दो, आत्माराम ! तुम अपने को उसी के अर्पण कर दो। कर्म करते चलो, फल की इच्छा मत करो !

लेकिन अजीब मुसीबत थी उस आत्माराम की, कि इतना कहने के बाद भी, उसके मन का फोड़ा फिर दुःख गया। वह फिर विचलित बनकर, एकाएक भारी हुए स्वर में बोला—जाने कितने जीवन आये और गये ! लेकिन जो दासता है, जो जीवन की विषमता है, वह न कल मिट पायी, न आज ! नित्य की तरह यह मानव आज भी मरता है। यह जीवन के लिये अपने को आज भी खपाता है और फिर भी इससे कहा जाता है, इसे फिर भी सुनाया जाता है कि ईश्वर है, उसका स्वामी है, उसका सृष्टा है ! यह कहते ही, आत्माराम बड़ी कड़वी मुस्कराहट में बोला—यह कंकाल और निरा दीन बना हुआ मानव जाने कितनी आस्था, अनुभूति से पूरित बनकर, अपने परमेश्वर को पूजता है और खोजता है। यह सदा की तरह आज भी उसी के चिन्तन में लीन बना हुआ, पाप और पुण्य का भागी बना हुआ दीखता है···।

आत्माराम खिड़की के पास जाकर, सामने के शून्य पथ की ओर देख रहा था। उसी ओर देखते हुए, वह बोला—जिस ईश्वर की गरिमा और महत्ता नित्य ही, इस कंकाल और रोटियों के मोहताज मानव को बतायी जाती है, मैं कहता हूँ, वह सत्य नहीं ! उपादेय नहीं ! सार्थक नहीं ! वह कभी भी साकार और मूर्तिमान नहीं बनी ! जो शून्य है, अदृश्य है, उसकी उपासना करके हमने क्या पाया ! व्यर्थ समय खोया ! अपनी श्रद्धा को एक गलत प्रवाह में बहने दिया ! ईश्वर तो धनिकों का मनोविनोद है। यह उन्हीं की रचना है। जो फालतू हैं, निठल्ले हैं, उन्हींने इस सूत्र का आविष्कार किया है। यह उन्हीं का छद्म वेष है। और इन निर्धनों को क्या ! ईश्वर हो तो, न हो तो ! झोंपड़ियों में, भूख से तड़पते हुए, जीवन के अंधकार में लीन, बुभुक्षित इन्सानों ने भी क्या कभी ईश्वर पाया ! न, कभी नहीं ! मैंने यही तो पिछले दिनों देखा ! मैंने भूख से तड़पते देखे ! मरते देखे ! बच्चों की हीन दशा देखी ! स्त्री-पुरुषों की करुण कथा सुनी ! कहीं भी तो ईश्वर नहीं आया। न मरने वालों के पास···न जीवितों के पास ! आत्मा ने हाथ

की मुट्ठियाँ भींच लीं और कहा—भगवान् पीड़ितों के पास नहीं आता। वह उनकी अधोगति पर दया और ममता नहीं दिखा पाता। वह बोला—जो व्यक्ति समर्थ है, जिन्दगी के व्यवसायों में लीन हैं, भगवान् उन्हीं का मनोविनोद है। कदाचित् उन्हींके पास आता है। यदि ईश्वर होता, तो निःसन्देह, वह सभी का त्राता बनता। मुक्तिदाता होता। पर आज तो लगता है कि पीड़ितों के जख्म पर यह ईश्वर के नाम का फाया रखा जाता है·····उन्हें भरमाया जाता है! उनसे कहा जाता है, घबड़ाओ नहीं, भगवान् सभी का है······वह तुम्हारा है··· !

तत्क्षण ही, आत्माराम फिर बोला—मैं भी यही सोचता हूँ। इसी दुर्बल भावना पर आश्रित हूँ। सबकी तरह मैं भी जानता हूँ कि इस प्रकार की सद्भावना छिपे हुए साँप की तरह डंक मारती है। जोंक की तरह लोगों का खून चूसती है। इसलिए, इस तरह से इस इन्सान का गुजारा नहीं हो सकता। यह जीवित नहीं रह सकता। और फिर भी कहा जाता है, लोगों को सुनाया जाता है, धर्म का नाम लो······ भगवान् का आश्रय ग्रहण करो! क्यों? किसलिए? क्या अभी स्वार्थियों का पेट नहीं भरा? उनकी स्वेच्छा का अन्त नहीं हुआ! जब इस परिपाटी पर चलकर भूखे को रोटी नहीं मिली, तो फिर क्यों, बरबस ही, इसे इन्सान के गले के नीचे उतारा जाय! मैं इसे नहीं मानूँगा। मैं अब किसी के भी आँसू नहीं देख पाऊँगा। मैं हरिया की बहू के सदृश, किसी भी नारी के चरणों में अपने को विर्सजित कर दूँगा! मैं दुनिया की ओर नही, अपनी ओर देखूँगा! यह आत्माराम अपने को भ्रष्ट और कलंकित नहीं होने देगा। ऐसे तो यह मर जायगा! यह तब स्वयं ही, अपना अन्त कर लेगा। माँ, स्त्री और पुत्र के लिये आत्माराम अपनी आत्मा की वाणी को नहीं भूल सकेगा। आँखों देखते, यह अपने जीवन का खून नहीं होने देगा!

तब ? क्या हो ? उसी समय आत्माराम ने अपने से प्रश्न किया। तब क्या यह जो कुछ है, जसा-कुछ दीखता है, वैसे ही होता रहेगा!

इसका रूप नहीं बदलेगा ! इन्सान मरता रहेगा······इन्सान मारता रहेगा···?

इसके बाद ही, आत्माराम फिर बिस्तर पर पड़ गया । उसी अवस्था में उसने कहा—इन्किलाब आ रहा है । आँधी उठ आई है । क्षितिज घिर रहा है । अँधेरा छा रहा है । ऐसे रहा, तो यह सजा-सजाया संसार धूल-धूसरित बन जायगा ! ऊँची बुर्जियों का सिर झुका दिया जायगा ! इन्सान मारा जायगा, तो उसका स्वार्थ खून में डूबा हुआ अपना साँस तोड़ता नजर आयेगा······भगवान् को धोखा दिया जा सकता है, लेकिन यह भूखा इन्सान, एक दिन अवश्य ही भेड़िया बनेगा······यह इन्सान की हड्डियों को कट-कट और कच-कच करके चबा जायेगा······!

तत्पश्चात् आत्माराम सो गया । वह जिस उत्तेजित अवस्था में सो सका, तो कुछ देर बाद ही, फिर चौंककर जाग गया । आँख खोल-कर, कमरे की प्रत्येक वस्तु को घूरने लगा । उसी प्रकार देखते हुए उसने कहा—खून और मांसहीन निरी हड्डियों के कंकाल में यह मानव जैसे निरा खण्डहर बन गया है । इन्सान दीन और याचक हो गया है ! यह कहते ही, आत्माराम के मन का उद्वेग आँखों में उतर आया, क्योंकि उसका मन देर से भारी था । वह जिस प्रकार आँख मूँदे पड़ा, तो सोया क्या, जरा आँख झपकने की स्थिति में पहुँच गया । इसलिए, जब चौंका, तो वह अपने को चेष्टा करके भी नहीं सम्भाल सका । अतएव, वह रो पड़ा । उसका मानसिक धरातल अत्यन्त विक्षुब्ध बन गया । उसी दशा में, उसने कहा—यह दीनता की साकार मूर्ति मानव, शान्त और स्थिर कहाँ है ! उसे याद आया कि अकाल के क्षेत्र में, उसने स्वयं कई माताओं और पत्नियों को अपने पति और पुत्र से छुटती हुई अवस्था में कहा था, 'घबराओ मत ! ईश्वर पर भरोसा रखो !'

और उस समय आत्माराम रो रहा था । वह उस दृश्य को याद कर रहा था । लगता था कि उसके हृदय में जो फोड़ा था, वह तब

बेजाने ही कसक गया। वह दुःख रहा था और आत्मा को बेचैन बना रहा था। वह बोला—आत्माराम, एक तुम भी हो, जो अपने परिवार के लिये चिन्तित हो! अधिक-से-अधिक सुख और समृद्धि चाहते हो, तुम इस सीमित परिवार की बात ही सोचते हो। इतना कहते हुए, आत्माराम जैसे ही बिस्तर छोड़कर खड़ा हुआ, तो वह नीचे फर्श पर बैठता हुआ बोला—मैं अपने बच्चे का, स्त्री का और माँ का मोह नहीं करूँगा। मैं इनके कारण शेष संसार से अपना नाता नहीं तोड़ लूँगा! यह कहते हुए, आत्माराम ने अपने सिर को झुका लिया। उसने कहा—आह! यह मेरा देश! इतना विभिन्न! ऐसा कातर! आज मेरा देश दुखी है। त्रस्त है। परतन्त्र है! आत्माराम सिर झुकाए बैठा था। क्षितिज पर प्रातः की उर्णिमा का रंग आ गया था। उसी समय माँ ने कमरे में प्रवेश किया। आत्मा को सिर झुकाये हुए बैठा देख, उसने पास आकर कहा—'बेटा आत्माराम!'

आत्माराम ने चौंककर माँ की ओर देखा। हाथ बढ़ाकर माँ के चरण छू लिये। माँ ने आशीष दिया—'जीते रहो! तुम्हारी बड़ी आयु हो!' किन्तु उसी समय माँ ने आत्माराम की खिन्न आँखें और मुखाकृति देखकर अनुभव किया कि जैसे, इसके मन में कुछ है। यह रात भर ऐसे ही बैठा रहा है। जागता रहा है। अतएव, उसने स्नेहानिल स्वर में कहा—'ऐसे रहोगे, तो अपने देश और समाज को कैसे उठाओगे, बेटा! तुम अपना मन स्वस्थ करो। ऊँचा करो। तुम्हारी शक्तियाँ तो सीमित हैं। तुच्छ हैं। वह तो न होने के बराबर हैं, आत्माराम! तुम उठो। तुम जितना कर सकते हो, करो। दुनिया बड़ी है। अनन्त है।'

माँ की बात सुनकर, आत्माराम ने बाहर की ओर देखा। उसे लगा कि जैसे उसकी माँ ने अन्तर्यामी के सदृश उसके मन का चित्र देख लिया। उसके मनस्ताप की कहानी को समझ लिया। वह उठकर खिड़की के पास जा खड़ा हुआ। बाहर की ओर देखने लगा। उसी

अवस्था में माँ को सुनाकर बोला—'मैं क्या करूँ, माँ ! मैं दुःखी हूँ। चिन्तित हूँ। मैं तुम्हारा घर सँभालने योग्य नहीं हूँ। मैं······!'

'नहीं, मेरे बच्चे ! तू समर्थ है। तू व्यर्थ ही, अपने को तोड़ता-मरोड़ता है। तू मेरा बच्चा है। मैंने तुझे सब-कुछ दिया है। मैंने तुझे आदमी बनाया है, आत्माराम !'

यह सुनकर, आत्माराम ने माँ की ओर देखा। वह मुस्करा नहीं सका। जैसे उस माँ के गौरवान्वित मनःलोक को देखने लगा।

किन्तु उस समय माँ के मन में था कि उसका आत्मा सभी का है। सर्वत्र फैल गया है। विशाल बन गया है। उसने पुत्र-रूप में छोटा-सा वृक्ष लगाया था, अब वह विशाल बन गया है—सुन्दर और जवान आदमी ! जिससे बहुतों को लाभ पहुँचा है ! मेरा आत्मा सभी की चिन्ता करता है। सभी को सन्तुष्ट और सुखी देखना चाहता है। यह कहते हुए माँ ने आत्माराम के सिर पर हाथ रखा। उसने कहा—'तुम रात भर जागे हो, रोये भी होगे, भला तुम्हारे स्वास्थ्य के लिये यह उचित है, क्या ! ऐसे, इस घर का भार तू कैसे सँभालेगा ! तू योगी और संन्यासी नहीं है, तू एक बच्चे का पिता है !'

: २० :

अपनी उस मनोदशा को लिये, आत्माराम घर से निकला और जंगल की ओर चल दिया। अब वह हल्का हो गया था। उसके मस्तिष्क में जो आँधी का झोंका आया, तो वह उतर गया। प्रातः की सुहावनी मन्द हवा के झोंके उसके मुँह पर आ रहे थे। उसे प्रफुल्लित और आनन्दित बना रहे थे। रात में जिस ईश्वर के प्रति उसका मन उपेक्षा और ईर्ष्या से भर गया था, अब प्रकृति के विराट् रूप को

देखकर, अनायास, उस अलौकिक ब्रह्म की कल्पना में लीन हो गया। कहीं पर मृग चौकड़ी भरते दीखते थे और कहीं कोयल कूकती।

एक बाग में जहाँ कोयल कूक रही थी, जैसे प्रभाती गा रही थी, तो वहीं पर, मोर नृत्य कर रहे थे। वे मंत्र-मुग्ध की भाँति जैसे अपने आप में ही विभोर थे। इस प्रकार आत्माराम के हृदय-तन्त्री के तार-तार झंकृत हो उठे। प्रभात की उस सुरभित बेला में जैसे सभी पक्षी गुनगुना रहे थे,—गा रहे थे। मानो प्रकृति की ओर से उन्हें यही वरदान मिला था। यही उनका सुख था। एक पेड़ पर तोते असंख्य संख्या में बैठे थे। वे चहक रहे थे। अपनी भाषा में गा रहे थे। उनका वह कर्णप्रिय स्वर आत्माराम के मन में जैसे कोलाहल पैदा कर गया। वह उस बाग के मध्य में खड़ा हो गया। रात गयी, नया प्रातः आया, तो जसे इन्सानों के सदृश उस पशु-पक्षी का जगत् भी उस नये दिवस का स्वागत कर रहा था,—उसका अभिनन्दन कर रहा था। वे सभी प्रकृति के गीत गा रहे थे। जीव-जगत् के त्राता, उद्धारक भगवान की लीला का बखान कर रहे थे। एक पेड़ की डाल पर दो पक्षी आपस में अपनी चोंच मिलाये आँख मूँदे बैठे थे। आत्माराम उस स्वर्गीय और जाने कितने युग-युगान्तरों के उस अनित्य मिलन को देख, अपने-आप में डूब गया। वह हर्षित बन गया।

उसी समय, एकाएक, आत्माराम को रजनी का ध्यान आया। उसे कुमुद भी याद आया। उसने कहा कि एक सप्ताह से ऊपर हो गया, न रजनी का पत्र आया और न ही वह स्वयं उसके पास गया। यह सोचते ही, आत्माराम घर की ओर मुड़ चला। रास्ते में, रजनी की बात पर उसने कहा—मैं अब उसे ले आऊँगा। मै आज ही, या कल चला जाऊँगा।

इसके अतिरिक्त, आत्माराम इधर कई दिनों से विपिन के प्रति भी सोचता था। उसके लिये जिस धारणा पर टिका था, उसी को फिर अपने सामने देख, एकाएक उसने कहा—रजनी आ जायेगी। वह

आयेगी ही ! और विपिन ! उसने कहा—वह शायद अब भी अपनी बात पर है । वह अपनी निश्चित दिशा पर और विचारों पर केन्द्रित है । वह उन्हीं पर टिका है । जब वह रजनी के रहते भी न तिल भर घटा, न तिल भर बढ़ा, तो उसे पूर्ववत् रहना है । आत्माराम ने कहा—ऐसे तो मर जायगा, विपिन ! वह इस प्रकार जीवित नहीं रहेगा । मुझे दीखता है कि वह रजनी से लजा गया । जो मन में लिये था, वह उससे नहीं कह पाया । और रजनी तो है ही नारी,—निरी डरपोक; युग-युग से पतिव्रत की पगी-पगायी ! निःसन्देह, वह विपिन से कुछ नहीं कहेगी । उसे एक बार भी बैठकर नहीं समझायेगी—क्यों विपिन बाबू, तुम ऐसे क्यों अधीर हो ? तुम क्यों चिन्तित हो ? तुम इस रजनी में क्या देखते हो···तुम इसे क्या समझते हो··· ?

'रजनी ! कुमुद की माँ !' हठात् आत्माराम ने चलते-चलते रुक-कर कहा—दीखता है, तुम विपिन को नही समझाओगी ? तुम एक भले और सभ्य व्यक्ति को वापस लौटने के लिये बाध्य न कर सकोगी ! तुम कैसी नारी हो । तुम कैसी माँ हो, रजनी !

इस प्रकार विपिन की समस्या में उलझा हुआ आत्माराम घर पहुँच गया । वह जैसे ही, द्वार पर पहुँचा कि बैठक खाने से मुख्तार और अन्य कई व्यक्तियों के जोर-जोर से बोलने का स्वर सुनायी दिया । तब घर में न जाकर आत्माराम वहीं गया । देखा, मुख्तार ने गाँव के किसानों को बुलाकर मालगुजारी देने के लिये कहा । जो नहीं दे रहे थे, उन्हें फटकारा और बुरा-भला भी कहा जा रहा था । उन्हीं किसानों में उसने हरिया की बहू को भी देखा । बैठकखाने के बाहर हरकारा हाथ में अपने सिर से ऊँची लाठी लिये खड़ा था । वह अपनी मूँछें मरोड़ रहा था । आत्माराम को देखते ही, कुल किसानों ने एक स्वर में कहा—'जमींदार बाबू, अब यह कैसा जुल्म है । जब घर में दाना नहीं और खेतों ने कुछ दिया नहीं, तो फिर हमें क्यों बुलाया गया है ! हम कहते हैं, अगली फसल पर सभी दे देंगे । चुकता कर

देंगे। इस घर का हम पैसा भी नहीं रखेंगे।'

इतनी बात सुनकर, आत्माराम कुर्सी पर पीछे को झुक गया। वह किसानों को लक्ष्य करके कुछ कहने चला था कि तभी मुख्तार ने हरिया की बहू से पूछा—'अरी, तू लायी! ला, दे।'

हरिया की बहू ने अपनी लड़की के द्वारा कहा—'अब तो हमारे पास कुछ नहीं है।'

सुनते ही, मुख्तार ने लाल होकर कहा—'कैसे नहीं है। क्यों नहीं है? क्या मुफ्त की जमींन है! बोया और काटकर घर में भर लिया। मैं कुछ नहीं सुनूँगा। मैं अब तेरी एक नहीं मानूँगा।' इतना कहते ही, मुख्तार ने हरकारे से कहा—'मलखान जा, हरिया के बैल खोल ले।'

उसी समय, आत्माराम सीधा बैठा। आगे को हुआ। वह कुछ कहने को प्रस्तुत हुआ। उसके मस्तिष्क में फिर द्वन्द्व-युद्ध छिड़ गया। आदर्श बोलने लगा···अपना स्वार्थ बोलने लगा। वह दोनों की बात सुनने लगा। उनमें किसकी बात ठीक थी, शीघ्रता में इसका निर्णय भी नहीं कर सका।

आदर्श कह रहा था—नहीं! यह अन्याय है! पाप है! जब हरिया बीमार है, और स्वयं ही दाने-दाने को मोहताज है, तब कहाँ से दे? कैसे दे?

लेकिन स्वार्थ अपनी बात लिये था—तो तुम कहाँ से दोगे? अब माँ के पास पैसा नहीं। सरकार तुमसे लेगी। न दोगे, तो जेल जाओगे। तुम्हरा घर नीलाम होगा। और तुम्हारे परिवार का काम भी कैसे चलेगा?

इस प्रकार परिस्थिति की उस ऊहापोह में पड़कर, आत्माराम मौन था। जैसे उस क्षण जड़ बन गया था। रात में जितना कहा, वह अब निर्बल बन गया। वह भूल गया।

उसी समय, मुख्तार ने कहा—'तुम सब सोचते हो, जमींदार

कुछ कहते नहीं, तो क्यों पैसा दें ! मार लें ! गरीब बनकर दाँत निपोर दें ।'

एक किसान ने कहा—'मुख्तारजी, हरिया सचमुच बीमार है। वह मौत के मुँह में पड़ा है ।'

दूसरे ने कहा—'उस पर जरूर रहम करो। उसकी इस दुःखी स्त्री को कुछ मत कहो। इसे घर जाने दो ।'

किन्तु मुख्तार ने और अधिक लाल होकर कहा—'स्वयं तो भीख माँगने आये हो, और दूसरे को बचाते हो। मुझे उपदेश देते हो। ऐसे भले हो, तो भुगता जाओ । अपना और हरिया का पैसा दे जाओ ।'

मुख्तार ने जिस किसान की बात के उत्तर में कहा, वह जीवन में पहली बार ही, मालगुजारी न देने की असमर्थता प्रगट करने आया था। किन्तु मुख्तार की बात सुनकर उसका सम्मान तड़प गया । वह उसी क्षण क्रोध में भरकर बोला—'जरा सोच-समझकर बात करो, मुख्तारजी ! गाँव में चोर नहीं बसे हैं ।'

परन्तु मुख्तार तो लेने वाला था। उसका दिल ऊँचा था। सिर भी ऊँचा। अतएव उसने फिर ताना देते हुए कहा—'हां, हां, चोर क्यों बसे हैं, तुम जैसे साहूकार बसे हैं। जो खेत काटकर भी पैसा नहीं देते। मैं आज तुम सबके बैल और गाय-भैंस खुलवा लूँगा । उन्हें नीलाम पर चढ़ा दूँगा ।'

'मुख्तारजी !' वह किसान तुरन्त लाठी लेकर खड़ा हो गया । लाठी के कुन्दे को जमीन में मारकर बोला—'हम चुप हैं। जमींदार सिर झुकाये बैठे हैं और तुम कहे जाते हो। तुम सबको एक ही लाठी से हाँकते हो ?'

लेकिन मुख्तार भी कायर नहीं था। उन्हीं लोगों में रहता था। और सचमुच ही, आत्माराम चुप था। वह तब तक भी अपने मन और मस्तिष्क के चक्कर में पड़ा हुआ था। मानो उस क्षण वह स्वयं

बुद्धि-भ्रष्ट हो गया। तभी उस किसान ने जब लाठी उठाकर पटकी, तो मुख्तार ने पास रखी हुई बेंत को उठाकर कहा—'रजुआ के बच्चे······!'

'मुख्तारजी!' आत्माराम ने उठकर रोषपूर्ण हो, चीखकर कहा—'तुम इतने······'

किन्तु आत्माराम की बात पूरी होने से पूर्व ही, उस रजुआ ने मुख्तार की बेंत उठाने की जो हिम्मत देखी, तो उसने तुरन्त ही, लाठी का प्रहार किया। किन्तु अवसर की बात, अथवा होनी की बात, कि वह रजुआ की लाठी का प्रहार मुख्तार पर नहीं, बीच में आये आत्माराम के सिर पर पड़ गया। सिर फट गया। देखते-देखते आत्माराम खून से सराबोर हो गया। उसके मुँह से चीख निकली और वह कुर्सी पर टिक गया। यह देखते ही, बैठकखाने में कोलाहल मच गया। जो किसान वहाँ जमा थे, उन सभी का मुँह एकबारगी काला पड़ गया। अचरज और दुःख के साथ सभी का मन भर आया।

उसी समय, रजुआ ने आत्माराम के पैर पकड़ लिये—'जमींदार बाबू···!'

आत्माराम ने क्षीण और मर्माहत हुए स्वर में कहा—'हाँ, रजुआ भाई, तुम घर जाओ! जब पैसे हों, तो दे देना। तुम मुझे और मुख्तारजी को क्षमा करना।'

किन्तु उस रजुआ ने आत्माराम के पैरों पर सिर रख दिया। वह रो पड़ा। आत्माराम और अधीर बन गया। उसे ऊपर उठाया। उसने कहा—'रजुआ, जाओ। तुम सभी जाओ, भाई!' यह कहते हुए आत्माराम उठा। वह किसानों की भीड़ को पार कर घर में जाने लगा। जब वह हरिया की बहू के पास से निकला, तो न जाने कितने करुण भाव से उस बहू की ओर देखकर बोला—'हरिया की बहू, सच, मैंने बुरा किया। मैंने चुपचाप ही, तुम सबको अच्छा-बुरा सुनने दिया। मैं अपनी आँख और कान खोले हुए भी, तुम्हारा अपमान

सुनता रहा।'

उसी समय, किसानों से आवाज उठी—'हम रुपया देंगे। अपने को बेचकर देंगे। तुम घर में जाओ, बाबू! अब हमें ज्यादा लज्जित न करो।'

और आत्माराम जब खून से भरा हुआ, घर में पहुँचा, माँ के समक्ष जाकर खड़ा हुआ, तो वह एकबारगी जैसे खो गयी···शून्य में चली गयी। मानो उसके जीवन का तत्व ही, किसीने बरबस ही, छीन लिया था··· ···

: २१ :

माँ को उस अवस्था में देखकर, कठिनाई से आत्माराम बोला—'मुझे सहारा दो, माँ! मेरे सिर में पट्टी बाँध दो।'

अधीर तथा खिन्न बनकर माँ ने पूछा—'यह क्या हुआ ? अरे, यह कैसे सिर फूटा।' कहते हुए उसने आत्माराम को पकड़ लिया।

आत्माराम बैठ गया। माँ ने रेशम का कपड़ा फूँककर उसके जख्म में भरा। पट्टी बाँध दी। कुरता उतार दिया।

उसी समय मुख्तार और कुछ किसान घर में आ गये। माँ को सब किस्सा मालूम हो गया। गाँव का एक बड़ा भाग उस घर में आकर एकत्र हो गया। खबर लगी, तो रजनी के पिता भी दौड़े आये। जिस रजुआ की लाठी से आत्माराम घायल हुआ, वह भी, वहीं आकर खड़ा था। वह आत्माराम की माँ से कह रहा था, 'कसूर मेरा है। मुझे दण्ड दो। पुलिस में भेज दो। चाहो तो तुम मुझे मार दो।' सचमुच, वह रजुआ पश्चाताप की आग में जल रहा था।

रजनी के पिता ने आते ही कहा—'पुलिस को खबर दो! आदमी

भेज दो।'

आत्माराम पलंग पर पड़ा था। माँ सिरहाने बैठी थी। उस कमरे में और उसके द्वार पर गाँव के नर-नारियों का समूह एकत्र था। आत्माराम के चोट लगी, इसका सभी को दुःख था। वह गाँव का बड़ा जमींदार तो था ही परन्तु साधु समझा जाता था। सभी के लिए वह प्यार की वस्तु था।

लेकिन आत्माराम ने जब पुलिस बुलाने की बात सुनी तो उसने आँख खोलकर माँ की ओर देखा। माँ के पास ही, रजनी की माँ खड़ी थी, उन्हें उसने प्रणाम किया। आत्माराम माँ की ओर देखकर बोला—'तुम रोती हो, माँ! क्या सबकी तरह तुमने भी यह सीख लिया है? पाप मेरा था कि किसानों का सम्मान मैंने जाता हुआ देखा। मैं कायर बन गया था।' इतना कहते हुए उसने साँस भरी और पलंग की पट्टी से लगे, अपराधी के सदृश बने हुए, रजुआ को देखकर वह बोला—'ये किसान भी सम्मान रखते हैं। इज्जत रखते हैं, माँ! ये हमारे हाथों नहीं बिके हैं।' कहते हुए उसने आँखें बन्द कर लीं। उसने दूसरी तरफ करवट फेर ली।

उसी समय हरिया की बहू वहाँ आई। वह आते ही, आत्माराम की माँ के पैर पकड़कर बैठ गयी और रो पड़ी। वह अपने आँचल में ली हुई चाँदी की चीजें माँ के पैरों में उँडेलकर बोली—'अम्माजी, तुम हमें माफ कर दो। चाहे मार दो!'

माँ ने हरिया की बहू और उसकी चीजों को देखकर कहा—'ना बहू! तुझसे क्या कहना! यह भी होना था! आज मुझे यही देखना था।'

'अम्माजी!' रोते-रोते बहू ने फिर कहा! उससे आगे नहीं बोला गया। उसी समय आत्माराम ने करवट बदल ली और पूछा—'क्या है, माँ?'

माँ ने कहा—'यह हरिया की बहू चाँदी की कुछ चीजें लाई है।'

हरिया की बहू ने कहा—'अब उनके (हरिया के) बचने की आशा नहीं है। पर तुम्हारा रुपया तो देना है। वह जियें तो ! मैं जियूँ तो !'

माँ ने कहा—'आत्मा, हरिया बीमार है। यह बहू इन चीजों से मालगुजारी देना चाहती है।'

आत्माराम ने कातर बनकर कहा—'माँ, इनसे कहो, पहले हरिया की बीमारी दूर करें। मालगुजारी की चिन्ता न करें।'

हरिया की बहू की रोती हुई आँखें देखकर, मां ने कहा—'रोया नहीं करते, बहू ! धीरज से काम लेते है। ऐसे समय, सभी ईश्वर का भरोसा करते हैं ?'

इतना सुनते ही, बहू के मर्म पर जैसे और ठेस पहुँची। वह उस सान्त्वना को पाकर और अधिक जोर से रो पड़ी।

यह देखते ही, अवरुद्ध कण्ठ से आत्माराम बोला—'माँ !'

माँ ने कहा—'हाँ, बेटा ! हरिया अधिक बीमार है। यह बहू चारी······!'

आत्माराम मौन रह गया। उसने अपनी भरी आंखों को चादर से ढँक लिया।

उस समय, वहाँ से बहुत आदमी लौट गये थे। रजनी के पिता बैठे थे। माँ भी थी। आत्माराम की माँ उठी और घर में गयी। जब वह फिर लौटकर आई, तो बीस रुपये हरिया की बहू को देकर बोली—'इनसे हरिया की दवा करना। अब जा तू, मुझे भी खबर देती रहना'।

दीनता और कृतज्ञता के साथ हरिया की बहू ने माँ की ओर देखा। उसने कहा—'अम्माजी ! तुम रहने दो ! कल शाम को बाबूजी ने पाँच रुपये दिये। आज मेरे ही कारण बिस्तर पर पड़ गये। मैं तो कलंकित हूँ, अम्माजी !'

माँ ने रुपये और चीजें हरिया की बहू के आंचल में रख दीं। वह बोली—'तेरा क्या कसूर ! यही होना था ! भगवान को मंजूर था !

तू जा !'

उसी समय आत्मा ने कहा—'हाँ, बहू ! यह रुपये ले लो। यह कर्ज नहीं है। यह हरिया के लिये हैं। ईश्वर तुम्हारा भला करेगा। वह अवश्य तुम्हारे सोहाग को बनाये रखेगा।'

हरिया की बहू ने रुपये ले लिये। कड़े, पछेली और बाजूबन्द घर से उठा लाई थी, वे भी सँभाल लिये।

उसी समय आत्माराम ने कमरे के अन्य आदमियों की ओर देखा। वह उस समय एकान्त चाहता था। किन्तु वे सब तो उसके प्रति सहानुभूति लेकर आये थे। अतएव, उसने पास बैठे हुए रजुआ को लक्ष्य करके कहा—'आज तुम खेत नहीं गये ? अपना काम देखते भाई !'

रजुआ ने कहा—'बाबू, आज मुझे कुछ अच्छा नहीं लगता। मुख्तार तेज न बनते, तो शायद मुझसे इतना गुनाह भी न बन पाता !'

आत्माराम ने उसके हाथ पर अपना हाथ रखा और कहा— 'तुम मुझसे उम्र में बड़े हो। तुम्हारा मुझे मारना भी शोभता था।'

उस समय मुख्तार बाहर था। किसान रुपये दे रहे थे, वह ले रहा था। रजुआ ने कहा—'मैंने अपना लड़का एक रिश्तेदार के यहाँ भेजा है। रुपये मिले, तो शाम तक दे जाऊँगा।'

आत्माराम ने कहा—'तुमने ठीक नहीं किया। रिश्तेदार से रुपया नहीं माँगना था। इस बार न था, तो न देना था।'

रजुआ बोला—'बाबू, तुम्हारे चोट क्या लगी, गाँव भर के दिल पर चोट लगी है। कोई किसान अपनी स्त्री के जेवर बेच रहा है, कोई अनाज। सभी का कहना है, आज रुपया दे देंगे। अपने ऐसे देवता-स्वरूप जमींदार को कष्ट न होने देंगे।'

आत्माराम की माँ ने कहा—'राम-राम ! अनाज बेच देंगे, तो खायेंगे, क्या !'

आत्माराम ने कहा—'माँ, तुम उन्हें समझा दो। मुख्तार को बुला-

कर भी कह दो। सख्ती करने से रोक दो।'

उसी समय हरिया की बहू चली गयी।

आत्माराम ने कहा—'गरीब का दिल साफ होता है। पवित्र होता है, माँ !'

इतना सुनकर, माँ ने अपना मत नहीं दिया। उसने शून्य क्षितिज की ओर देखा।

आत्माराम बोला—'सचमुच, हरिया अधिक बीमार है !'

माँ ने कहा—'मैं आज उसे जाकर देख आऊँगी।'

'हाँ, तुम जरूर जाना, माँ ! तुम हरिया की बहू को भी समझा आना।'

उसी समय, रजनी के पिता उठे। चलने लगे। रजनी की माँ भी जाने लगी। आत्माराम ने कहा—'आपने बड़ा कष्ट किया।'

पिता बोले—'सुना, तो दौड़ा आया। यह समाचार तो गाँव में बिजली की तरह फैल गया।'

आत्माराम ने कहा—'गाँव में थोड़े-से घर हैं। एक ही परिवार लगता है। शहरों के विपरीत, यहाँ गाँव में, एक-दूसरे के दर्द को अधिक समझा जाता है ! वैसे, मुझ पर सभी की कृपा है। आप जैसे बुजुर्ग का साया तो हर समय दीखता है।'

रजनी की माँ बोली—'रजनी को बुला लो।'

आत्माराम की माँ ने कहा—'हां, उसे बुलाऊँगी। आदमी भेजूँगी।'

आत्माराम ने कहा—'ऐसी चिन्ता क्या है, माँ ! दो दिन में जख्म भर जायेगा। मैं स्वयं चला जाऊँगा ! अब मेरी तबीयत शान्त है। लाओ, दूध दो !'

रजनी के पिता ने जाते-जाते कहा—'कोई काम हो तो खबर देना।'

आत्माराम ने कृतज्ञ भाव में कहा—'जी, अच्छा-अच्छा !'

ी के पिता और माँ चले गये। कमरे से सभी व्यक्ति चले गये। माँ घर में गयी। उसने आत्माराम के लिये दूध भेज दिया। दूध पीकर आत्माराम जब फिर पड़ गया, तो उसने अपने-आप कहा—गरीब के हृदय को जब दबाया जाता है, ठुकराया जाता है, तो वह रोता है। असहाय कुछ कह तो पाता नहीं, आँसू बहाता है। वह बोला, मैंने इसीलिये दण्ड पाया। वही भोगा आज! उसी समय आत्माराम को नींद आ गयी। वह सो गया। देर तक सोता रहा। जब दोपहर हुआ, तो उसकी आँख खुलीं। माँ को पास बैठी पाया।

माँ ने कहा—'अब तबीयत कैसी है, आत्माराम?'

आत्माराम ने कहा—'अब ठीक हूँ, माँ!'

माँ ने कहा—'मुख्तार आया था। कहता था, आधे से अधिक रुपया आ गया। पिछला भी वसूल हो गया।'

इतना सुनकर, आत्माराम मौन रह गया। स्पष्टतः उसे वह प्रसंग अच्छा नहीं लगा।

माँ ने फिर कहा—'अब उठ तू! रोटी खा ले।'

आत्माराम उठा। वह माँ के साथ घर में गया। रोटी खाने बैठ गया। तत्पश्चात् आत्माराम जब बाहर गया, तो कमरे में न जाकर, घर से बाहर चल दिया। वह सीधा हरिया के घर पहुँच गया। उसने वहाँ जाकर हरिया के नाम को पुकारा। सुनते ही, हरिया की बहू बाहर निकल आई। आत्माराम को देखकर वह चकित रह गयी। वह छूटते ही बोली—'तुम क्यों आगये, बाबू!'

आत्माराम ने कहा—'मैं हरिया को देखने आया हूँ।'

बहू बोली—'पर बाबू तुम्हारी तबीयत तो खराब है—सिर में जख्म है!' और वह तभी आत्माराम को घर में ले गयी। बीमार के पास जाकर जब आत्माराम खड़ा हुआ, तो उसे एकाएक चक्कर आगया। उसने दीवार का सहारा ले लिया। सचमुच, हरिया का रोग असाध्य था। वह मौन था।

किन्तु बहू ने आत्मा की अवस्था देखी, तो उसे रोना आया। उसने कहा—'बाबू, तुम जाओ, आराम करो।'

आत्माराम ने कहा—'हाँ, जाऊँगा।' वह चलने लगा। जब वह उस मकान से बाहर निकला, तो बोला—'तुम भी मुझे क्षमा करना, हरिया की बहू! सचमुच, तुम्हारा अपमान हुआ!'

बहू ने कहा—'न, बाबू! कुछ भी नहीं हुआ। गरीबी में जो कुछ होता है, वही तो हुआ!'

आत्माराम ने आहत स्वर में कहा—'पर मेरे द्वारा नहीं होना था! मुझे इतना नहीं देखना था!' वह चल दिया। जब वह घर पहुँचा और अपने बिस्तर पर पड़ गया, तो उसी समय माँ ने आकर कहा—'कहाँ गया था, आत्मा?'

आत्माराम ने लम्बी साँस भरी और कहा—'हरिया को देखने गया था, माँ!'

'तू तो पागल बन गया है, आत्माराम! अपनी चोट तो देखता! आराम करता!'

'मैं उसकी बहू से क्षमा माँगने को गया था, माँ! उसका अपमान हुआ था।'

'तो तू किस-किससे कहता फिरेगा।' माँ ने कहा—'समझता नहीं, इस जिन्दगी में सभी-कुछ चलता है। दण्ड भी दिया जाता है, प्यार भी किया जाता है।'

माँ की बात सुनी, तो आत्माराम मौन रह गया।

माँ ने फिर कहा—'मैं तेरे हृदय की ममता और दया को देखती हूँ!' कहते हुए माँ ने आलोड़ के साथ आत्माराम को थपथपाते हुए कहा—'मेरा बच्चा! सच, तू अब भी बच्चा है! तू अब भी दुनिया की रीति से अनजान बना है!'

इतना सुना, तो आत्माराम बरबस हँस दिया। वह उसी प्रसन्न मुद्रा म माँ की ओर देखता रह गया।

मां ने कहा—'अब तू बहू को ले आ ! उसके बिना घर सूना है। कुमुद क्या गया, मेरा मन भी उसी में अटका रहता है।'

: २२ :

इधर कई दिन से विपिन और रजनी में साक्षात्कार नहीं हुआ। विपिन आता और खाना खाते ही, बाहर चला जाता। रजनी ने कई वार चाहा कि विपिन आये, तो वह उससे बात करे। किन्तु जब विपिन आता, तो प्रायः ऐसे समय घर में प्रवेश करता कि रजनी या तो सोयी रहती या सामने कमरे में बैठी हुई कुमुद को दूध पिलाती होती। विपिन की इस प्रकार की गति-विधि को देख, रजनी बड़ी संलग्नता से सोचती कि आखिर क्या आया है, इस विपिनबाबू के मन में ! यह क्या सोचते हैं ! ये महाशय अब अपनी किस नई प्रेरणा को लक्ष्य करते हैं ! लेकिन अपने मन की इस आशंकापूर्ण अवस्था में रजनी कुछ भी न पाती। वह विपिन को जैसे खाली पाती। निरुद्देश्य देखती। फलस्वरूप, जब कई दिन तक भी विपिन नहीं दिखायी दिया, तो एक दिन बड़े प्रातः उठकर, रजनी स्वयं ही विपिन के कमरे म गयी। क्योंकि उसने नौकर से मालूम कर लिया था कि वे रात में देर से आते हैं और प्रातः में बड़े जल्दी चले जाते हैं।

सचमुच, रजनी ने जाकर देखा कि विपिन उस बड़े तड़के में कपड़े पहन कहीं जाने के लिये प्रस्तुत है। वह चाय पी रहा है। इतना देखते ही, पास जाकर रजनी ने कहा—'विपिनबाबू !'

रजनी का बोल सुनते ही, विपिन चौंक गया। उसने रजनी की ओर देखकर कहा—'क्यों, भाभी ! इतने सबेरे ! मुझे तो काम है। बाहर जाना है।'

रजनी ने पास जाकर, मेज पर झुकते हुए, व्यंगात्मक ढ़ंग से कहा—'हां, इतना बड़ा काम कि मिलने और बोलने का भी अवसर नहीं मिला !'

सुनते ही, विपिन ने, विचलित हुए स्वर में कहा—'हां, भाभी ! म नहीं मिल सका। मैं तुम्हारे पास नहीं आ सका !'

विपिन के उस अप्रत्याशित ढंग को देख, रजनी को लगा, जैसे उसमें कुछ है। विपिन अपने मन में कुछ लिये है। जिसके फलस्वरूप वह अपने-आप ही खिंच रहा है। मानो रजनी से कतराकर चल रहा है। इसलिये, विपिन की उस विस्मयपूर्ण अवस्था को लक्ष्य कर, रजनी ने अनायास कहा—'विपिनबाबू, बताओ तो, तुम क्या सोचते हो ? अपने जीवन में क्या देखते हो ? आजकल तुम दुर्बल भी हो। भला ऐसे किस काम में व्यस्त हो ?'

विपिन ने चाय के प्याले को एक तरफ रख दिया और तब वह रजनी की बात सुनने के साथ, अपने होठों पर सूखी और रसहीन मुस्कराहट लाकर, उसकी ओर देखने लगा।

रजनी ने फिर कहा—'विपिनबाबू, रजनी की यह दिशा नहीं है। वह और है। तुमने जो कुछ सोचा और करना चाहा है, वह कुछ नहीं। बताओ तो, इस गृहस्थ में, दुनिया की भरी बस्ती में भला कोई ऐसे रहता है। अविवाहित ही ! एकाकी और शून्य ही ! उसने आतुर हुए स्वर में कहा—'ऐसे नहीं निभता, विपिनबाबू ! इस प्रकार रहना किसी को अच्छा भी नहीं लगता !'

विपिन ने रुखाई से हँस कर कहा—'जो किसी को अच्छा नहीं लगता, वह इस विपिन को पसन्द आता है, भाभी ! मुझे रुचिकर लगता है।'

इतना सुनकर, फिर रजनी का जैसे माथा ठनक गया। उसे अनुभव हुआ कि यह विपिन किसी प्रकार भी हल्का नहीं है। सरल नहीं है। यह हँसोड़ और चंचल बनकर भी, नितान्त गम्भीर है। इसलिए जब

उसने विपिन की बात सुनी, तो और अधिक उसके समीप हो गयी। वह जाने कितनी बड़ी घनिष्टता और ममता के साथ देखने लगी। उस समय वह अपने-आपको भूलकर, जीवन का समस्त लावण्य और माधुर्य अपनी वाणी में उँडेलकर बोली—'क्या तुम अपनी इस भाभी के कहे पर भी अपना मार्ग न बदलोगे ! जिन्दगी की इस रीति को नहीं छोड़ोगे ! बताओ, विपिन बाबू ! तुम रजनी का अनुरोध भी स्वीकार न करोगे ! पर समझते हो, मैं तुम्हें कभी भी ऐसा नहीं रहने दूँगी। तुम्हें एकाकी जीवन में निपट उजाड़ पाकर, मैं सन्तुष्ट नहीं रहूँगी। मैं तुम्हें जीवन में हरा-भरा और बाल-बच्चेदार ही देखना पसन्द करूँगी।'

रजनी की बात सुनते ही, विपिन हँस दिया। वह उसी प्रकार हँसते हुए रजनी को देखने लगा।

रजनी ने फिर कहा—'बताओ तो बेचारी फूआ पर तुम्हें कब तक भरोसा है। उन्हें आज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों,—एक-न-एक दिन जरूर दुनिया से दूर हो जाना है। उन्हें इस घर से जाना है। इसीलिए, आज उनकी भी यह चिन्ता है। उन्हें कष्ट है। जब वह नहीं रहेंगी, तब तो तुम्ही को इस घर की ओर देखना पड़ेगा। मैं पूछती हूँ, क्या तुम्हें इसी प्रकार घर को और अपने माता-पिता की मर्यादा को बनाये रखना है ! अपने जीवन को भी संजोये रखना है क्या ?' इतना कहते हुए रजनी रुक गयी। वह कमरे के बाहर देखने लगी। उसी समय उसने शान्त हुए मृदुल स्वर में फिर कहा—'विपिन बाबू, तुम्हें जीवन में साथी चाहिए। मिल-बैठने के लिए अपना अनन्य चाहिए। मैं जानती हूँ, तुम योगी नहीं होगे ! तुम कभी भी, इस रंग-बिरंगी दुनिया को छोड़कर जंगलों और पहाड़ों में नहीं जाओगे ! तुम यहीं रहोगे। ऐसे तो, तुम जरूर, स्वयं अपनी दृष्टि में पतित और सन्दिग्ध बन जाओगे ! तुम विपिन बाबू·········!'

रजनी की बात सुनते-सुनते विपिन जैसे अतिशय करुण और वेदना

से पूरित बन गया। उसने छूटते ही कहा—'तुम मुझे परेशान मत करो, भाभी! मैं विवाह नहीं करूँगा। अभी तो नहीं। तुम नहीं समझतीं, शायद तुम नहीं जानतीं कि मैं······!'

'विपिनबाबू!' तभी रजनी ने फिर अधीर और मर्म भरे भाव में कहा—'यह न जानकर भी, मैं तुम्हारी बात को न पाकर भी, तुम्हारी भावना को, तुम्हारे अन्दर बैठी हुई इच्छा को जाने कब से देखती हूँ और समझती हूँ। निःसन्देह, तुममें स्त्री की चाह है। मोह है! लेकिन जिस प्रकार तुम स्त्री को पाना चाहते हो, वह क्या उचित है! वह तो भ्रष्टता है! मन की दुर्बलता है।'

इतना सुनते ही, विपिन जैसे अवाक् रह गया। वह अचरज भरी दृष्टि से रजनी की ओर देखने लगा। उसका मुँह एकबारगी पीला और उदास पड़ गया।

किन्तु रजनी तो जैसे कटिबद्ध होकर अपनी बात लिये खड़ी थी। वह विपिन की स्वीकृति पाने के लिये चंचल थी। इसलिए जब उसने अपनी बात सुनकर विपिन को उदास पाया, तो तब, नितान्त दया और नारी-जीवन की समूची संलग्नता को लिये हुए, सहानुभूति के स्वर में कहा—'हाँ, विपिन बाबू! भला तुम्हारी भाभी इतना भी न समझ पायेगी। दुर्बलता सभी के पास है। मेरे भी, तुम्हारे भी। किन्तु जो निभ जाये, वह तो सफलता है, न! जो न निभे, वह दुर्बलता है! चोरी है! व्यभिचार है! अनैतिकता है। इसलिए, मैं तुम्हारे समक्ष वही प्रस्ताव लेकर खड़ी हूँ, जो तुम्हारे लिए प्राप्य है। सरल है। साध्य है। एक तुम्हारी बात क्या, इस रजनी की भी यही अवस्था है। भला, देखो तो, यदि यही कुछ चाहे, तो वह क्या निभने वाला है। इस रजनी से—कुमुद की माँ से—कि जिसकी छाती में दूध है, आँखों में पानी है। लगता है, अब इस रजनी का इसके पास कुछ नहीं। कुछ भी नहीं! समस्त नारी-जगत् के समान इस रजनी का मानो समूचा शरीर भेंट हो गया है। कुछ पति ने पा लिया, कुछ पुत्र ने पा लिया।

लगता है, यही इस जगत् का धंधा है ।'

विपिन ने रजनी की ओर देखकर, एकाएक कहा—'भाभी ! तुम······सच !'

'हाँ, विपिन बाबू !' रजनी ने उसी प्रकार तटस्थ और निर्विकार भाव में खड़ी रहकर सामने के शून्य अन्तरिक्ष की ओर देखते हुए कहा—'तुम जीवन की वास्तविकता और नैतिक पहलू की ओर देखो विपिनबाबू ! धर्म क्या है, यह मैं नहीं जानती। आओ उठो, तुम भी अपने नये जीवन में प्रवेश करो ।'

उस समय, विपिन का मुँह द्वार की ओर था। उस ओर देखते ही, उसने बलात् कहा—'आत्मा भाई······'

कमरे के अन्दर प्रवेश करते ही, आत्माराम ने कहा—'विपिन, तुम ! वह आगे आ गया और बोला—'अच्छे तो हो !' कहते हुए वह आगे की ओर बढ़ गया। रजनी ने झुककर आत्माराम के पैर छू लिये। आत्माराम ने उसे ऊपर उठा लिया। उसके सिर पर हाथ रखा। बोला—'अच्छी हो, रजनी ! यहाँ मन लग गया ?'

रजनी ने अपना सिर झुकाकर कहा—'जी, अच्छी !'

'दिखता है, कुमुद सो रहा है। फूआ कहाँ है ?' इतना कहते हुए, आत्माराम ने विपिन की ओर देखा। वह हँसा। उससे बोला—'शायद तुमने अब समझा कि यह जीवन दुष्कर है,—आसान नहीं है ।'

विपिन ने मुँह लटकाकर कहा—मैंने कुछ नहीं समझा। आज भाभी के कहने से भी नहीं समझा ।'

आत्माराम ने रजनी की ओर देख, फिर हँसते हुए कहा —'मुझे रजनी का परिश्रम सफल लगता है। शायद इस प्रातः के समय भी वही प्रकरण छिड़ा था ।'

रजनी अन्दर चली गयी। वह प्रसन्न भाव में सोते हुए कुमुद की ओर झुककर बोली—'अरे, तू सो रहा है ! पिताजी आ गये हैं तेरे !' और उसने उसी भाव में आसमान की ओर अपना मुँह उठा दिया।

इस प्रकार वह दिन प्रातः से ही अच्छा रहा। आत्माराम क्या आया, जैसे रजनी का सुख और सन्तोष लौट आया। विपिन कहीं बाहर जाने के लिए प्रस्तुत था, तो आत्माराम के आने पर नहीं जा सका। वह भी हँसता और बोलता रहा। दोपहर का खाना खाने के बाद, विपिन ने आत्मा के कहे पर पियानो बजाया और गाया।

यों, दिन गया और रात आ गयी। रजनी ने अपने कमरे में आत्माराम के लिए दूसरा पलंग बिछवा दिया। आत्माराम देर से बिस्तर पर पड़ा था। वह आँख बन्द किये था।

रजनी मौन थी। वह कुछ देर पहले कुमुद को दूध पिलाकर चुकी थी। जब वह स्वयं बिस्तर पर पड़ गयी, तो तभी आत्माराम ने आँखें खोलीं। रजनी उसी ओर देखकर बोली—'तुमने मुझे यहाँ व्यर्थ ही छोड़ा। इतने दिन क्या हुए, पहाड़ हुए! कटते भी नहीं कट पाये।'

यह सुनकर आत्माराम ने कहा—'हूँ।'

'और मैं तुमसे पूछती हूँ, तुम क्या सोचकर मुझे यहाँ छोड़ गये? क्यों छोड़ गये? जानते हो, यहाँ मैंने न एक दिन शऊर से खाया, न सो पाया।' इतना कहते हुए रजनी का गला भर आया।

किंतु रजनी की उस अवस्था को देखकर ही, आत्माराम बोला—'मैं तुम्हारी और अपनी इच्छा पर ही, तुम्हें यहाँ छोड़ गया था। पर देखता हूँ, तुम्हारा यहाँ इतने दिन में ही मन भर गया। अब शायद ऊब गया, क्यों?' उसने कहा—'मैं इस घर को भी अपना ही घर समझकर तुम्हें छोड़ गया था। परन्तु तुम तो दुबली हो गयीं। जैसे खोयी-खोयी-सी बन गयीं। पगली कहीं की! भला तुम्हें यह कहाँ शोभता है! अपने मस्तिष्क पर जोर देना तुम्हें कहाँ भाता है!'

रजनी ने उद्वेग के स्वर में कहा—'तुमने यह अच्छा नहीं किया। तुमने दो-चार दिन को कहा था और इतने दिन यहाँ रहने को छोड़ दिया। मैं यहाँ किससे बोलती। मैं किसके पास उठती-बैठती। एक बेचारी फूआ हैं, जिनका दिन भर ही पूजा-पाठ में लग जाता है। और

'विपिन बाबू तो हैं ही, अपने मन के मौजी और सैलानी जीव ! आज कई दिन बाद दीखे। वह भी सुबह-ही-सुबह उठकर कमरे में मिल गये। जैसे पकड़ लिये। सो, उनका अपना ही राग है, अपना ही...!'

आत्माराम ने कहा—'मैं विपिन की इसी अवस्था को दूर करने के लिये तुम्हें यहाँ छोड़ गया था। यह मैंने पहले ही निश्चय किया था, जिसके लिए सुयोग भी मिल गया। पर जो होना था, दिखता है, वह पूर्ण नहीं हुआ। विपिन अपने पथ से नहीं हटा। वह वहीं खड़ा रहा। उसी रास्ते पर चलता रहा। तुम्हारा यहाँ रहना सफल नहीं हुआ, रजनी ! बेकार रहा।'

रजनी ने पति से इतनी बात सुनी, तो जैसे उसका माथा चकरा गया। उसे आत्माराम की बात सुनकर, अत्यन्त विस्मय हुआ। अपने मन की उसी अवस्था को लिये हुए, उसने खेदपूर्ण स्वर में कहा—'तुम्हारे मन में क्या था ? बताओ, तुमने किस संकल्प का आयोजन किया ? मुझसे क्या कराना पसन्द किया ?'

आत्माराम ने तब रजनी की ओर मर्म-भरी दृष्टि से देखकर कहा—'वह तुम जानती हो। तुम वही विपिन से कह चुकी हो !'

'क्या ?—क्या ?'

'मैं चाहता था कि विपिन सात्विक हो, विपिन व्यवहारिक और सांसारिक हो। और इतना एक नारी ही कर पाती। तुम कर सकती थीं, रजनी ! परन्तु तुमने नहीं किया। निश्चय ही, तुम्हें सफलता का अवसर नहीं मिला।' संक्षेप में आत्माराम ने कहा।

किन्तु रजनी ने भरे हुए स्वर में कहा—'विपिन विवाह नहीं करेगा। ऐसा ही रहेगा।'

उस समय आत्माराम मौन था। वह कुछ देर के बाद ही, क्षीण तथा आतुर हुए स्वर में बोला—'यह नहीं होगा, तो विपिन मिट जायगा। इसका पतन हो जायगा। इसका यह घर भी आँखों देखते ही धू-धू करके जल जायगा ! इस प्रकार तो विपिन कर्महीन व्यक्ति बन

जायगा।'

रजनी ने आवेग के स्वर में कहा—'तो मैं क्या करूँ! जितना समझती थी, मैं उतना आज तक कर पायी। तुम्हारे आने से पहले कह चुकी।'

यह सुनकर, आत्माराम अपने-आप में गिर गया। वह लज्जित भी हो गया। जब रजनी ने अपनी बात कहने के साथ, फिर उसकी ओर देखा, तो उसने ममता के स्वर में कहा—'न, रजनी, तुम्हारा क्या दोष! तुम इतना ही कर सकती थीं।' इतना कहते हुए आत्माराम रुक गया। वह गम्भीर तो था ही, तब ऐसा लगा कि वह करुणार्द्र भी हो गया। उसी अवस्था में वह बोला—'आज प्रातः में, मैंने जिस प्रकार विपिन का रूप देखा, सचमुच, तुम इतना ही, उसे झुका सकती थीं। और मैं सचमुच ही, कायर बन गया। मै सब-कुछ तुम्हारे सिर पर छोड़कर भाग गया। मैं दूर जाकर खड़ा हो गया। तुम्हारा पौरुष देखने में लग गया।'

इसके बाद ही, आत्माराम फिर कहने लगा—'जो पाप है, वह मेरे द्वारा सम्पन्न हुआ है। विपिन मेरे द्वारा ही, हिंसात्मक दल का सदस्य बना है। मेरे रोकने पर भी, वह उस दल में जा मिला। यह बात मैं जाने कब से अपनी छाती के नीचे दबाये फिरता हूँ। मैं विचलित हूँ। व्यग्र हूँ। इस विपिन को उस रास्ते से हटाने के लिए चिन्तित हूँ। भला आज तक क्या किसी से कह सका हूँ। जानता हूँ कि विपिन फँस सकता है। फाँसी के तख्ते पर भी जा सकता है। आज तुमसे कहा है। कह दिया है। इस बात को नितान्त गुप्त रखना। छाती के नीचे दबा देना। विपिन से भी भूलकर न कह बैठना।' इतना कहते हुए आत्माराम ने साँस भरी और कहा—'मैं जानता हूँ, एक कमला है। जिसने इस विपिन के साथ प्रणय-सम्बन्ध स्थापित करना पसन्द किया है। लेकिन दिखता है, अब तक न उसने कहा, न विपिन को ही उसका पता चला है। और तभी मैंने देखा कि विपिन ने तुम्हें जिन-

जिन पत्रों में बड़ी भावनामयी भाषा के साथ अपना सम्बाद लिखा, अपरिचित की तरह अपने-आप को तुम्हारे समक्ष रखा। तो मैंने सोचा, वह विचार मैंने यहीं आकर निर्धारित किया कि तुम्हें कुछ दिनों के लिये यहाँ छोड़ दूँ। तुम अवश्य ही, विपिन का रास्ता बदल सकोगी। उसे नयी प्रेरणा और उत्साह प्रदान करोगी। विपिन तुम्हारी बात मान लेगा। जरूर मानेगा। किन्तु हुआ और। बिल्कुल और। अच्छा! हमारा यही काम था। हमें विपिन को यहीं तक समझाना था रजनी, सो, वह पूर्ण हुआ। अब हमारे प्रयत्न का अन्त हुआ। तुमने अपने पति को आनन्दित किया। इसे कृतज्ञ बनाया।'

'मैंने कुछ नहीं किया। जितना तुमसे सीखा और पाया, वही तो यहाँ आकर उद्घोषित किया।' रजनी ने साँस भरकर कहा।

'मैं तुमसे यही चाहता था, रजनी! यही चाहता था! वही तुमने मुझे दिया। इच्छा न होकर भी, तुमने विपिन को जाने क्या-क्या सुना दिया। अपनी आत्मीयता का भी उल्लेख किया। सच, यह अच्छा किया। लैम्प मन्दा कर दो। अब सो जाओ।'

यह सुनकर, रजनी ने अपूर्व स्नेह और भावनामयी आँखों से आत्माराम की ओर देखा। उसने कहा—'जो तुमने चाहा, इस रजनी को वही करना था। इसे वही पाना था और देना था। भला, इसका अपना क्या है, जो कुछ है, तुम्हारा है।'

: २३ :

प्रातःकाल के समय, जब आत्माराम विपिन के कमरे में पहुँचा, तो उसने देखा कि विपिन जाने कितनी देर से उसकी प्रतीक्षा में बैठा हुआ है। यह देखते ही आत्माराम ने कहा—'तुम बहुत सबेरे उठे?

क्या अब पहले के समान देर तक नहीं सोते ?'

विपिन ने कहा—'कोई नियम नहीं है। कभी जल्दी उठता हूँ, कभी देर में। एक घण्टा हुआ, बाहर से घूमकर आ बैठा हूँ।'

'तो आओ, चाय पी लें।' आत्माराम ने कहा—'तुम चाय पी लेते। मेरा इन्तजार न करते।'

उसी समय, चाय पीते हुए, आत्माराम ने पूछा—'वकालत चलती है ? कचहरी जाते हो ?'

विपिन ने कह दिया—'हां, जाता हूँ। काम मिल जाता है।'

आत्माराम ने कहा—'रजनी कहती थी, तुम्हारा कोई नियम नहीं है। वकालत का काम भी अव्यवस्थित है।'

विपिन ने उदास भाव से कहां—'जहाँ सभी कुछ अव्यवस्थित हो, तो क्या कहा जाय !'

'तो यों कहो, तुम कचहरी नहीं जाते ? काम नहीं करत ?'

विपिन ने कहा—'हां, ठीक है ! वकालत न चलती है, न चलायी जाती है।'

आत्माराम ने चाय पी ली। उसने खिन्न स्वर में कहा—'जीवन व्यवस्था माँगता है। बेकार रहकर तो आदमी निष्क्रिय बन जाता है। और तुम गाँव भी नहीं चल रहे। कोई आपत्ति है, क्या ?'

विपिन ने उतावलेपन से कहा—'नहीं, आत्माबाबू ! आपत्ति कैसी ? इच्छा नहीं बनी।' यह कहते हुए विपिन ने चाय का अन्तिम घूँट भर लिया। उसी समय आत्माराम ने विपिन को देखकर कहा—'तुम जानो भाई ! सदा की भाँति तुम आज भी अपनी इच्छा के धनी हो।' इतना कहते हुए आत्माराम रुक गया। क्षण भर बाद ही, वह फिर बोला—'हम जिस दुनिया में बसे हैं, हमारे साथ उसका भी सम्बन्ध है। उसकी इच्छा और आकांक्षा का भी कोई अर्थ है। समाज की दृष्टि हमारी ओर लगी है। कदाचित् तुम इतना अनुभव नहीं करते, तुम नहीं जानते !'

विपिन ने सूखी हँसी में कहा—'तुम यह कैसे समझे, आत्माराम ? मैं सभी-कुछ सुनता और मानता हूँ ।'

'तो तुम कचहरी क्यों नहीं जाते !' आत्माराम ने कहा—'तुम जिस काम से लगे हो, क्या वही सत्य है । वही सारमय है ! मैं समझता हूँ अपने जीवन की गति को अधिक सारमय बनाने के लिए आदमी कभी-कभी हवा में उड़ता है । जवानी की आँधी में खोता है । कदाचित् यही तुम्हारा हाल है । तुमने अनायास ही, एक कठोर व्रत का अनुसरण किया है । देखता हूँ, तुम जो कुछ कहते हो, आज स्वयं उसके विपरीत दीखते हो । तुम जिस आदर्शवादी दुनिया में घुसने के लिए प्रयत्नशील हो, उसके वास्तविक द्वार को भूल गये । तुम दूसरे रास्ते पर चढ़ गये ।'

विपिन उस समय मौन था । वह आत्माराम की बात सुनने के साथ, दूसरी ओर देखने लगा था ।

उसी समय आत्माराम ने फिर कहा—'इस नित्य के चिन्तन से मैं तुम्हें दुर्बल पाता हूँ । निस्तेज पाता हूँ । बताओ यह अच्छा है, क्या ! यह तुम्हारे लिए उपादेय नहीं ।'

किन्तु इतना सुनने के बाद भी जब विपिन नहीं बोला, तो आत्माराम ने समझा कि सचमुच, विपिन बदल गया । पत्थर बन गया । भारी हो गया । उसने यह भी अनुभव किया कि निश्चय ही, इस विपिन के अन्दर कोई फोड़ा है । यह उसी की टीस से परेशान है । उस फोड़े का मवाद सड़ रहा है । तो, इस विपिन का मस्तिष्क भी सड़ाँद से पूरित बन गया । उसने अपनी वाणी में अधिक स्नेह और माधुर्य लेकर कहा—'विपिनचन्द्र, मुझे इस बात का खेद है कि तुम अब मेरी बात नहीं सुनते ! मैंने समझा था कि विपिन मेरा छोटा भाई है । पर तुम अब अपने बड़े भाई का कहना नहीं मानते । अब शायद तुम्हारे स्वभाव में उपेक्षा आ गयी है । उदासीन बन गये हो ।' आत्माराम कहते हुए रुक गया, तदन्तर ही उसने फिर कहा—'लेकिन मुझे तो तुम्हारे पिताजी के वे शब्द आज भी याद हैं । वे आज भी

मेरे कानों में पड़े हैं—हम-तुम दो नही एक हैं। दोनों ही एक-दूसरे के प्रति एक महान् कर्तव्य से बँधे रहें। उनके ये शब्द मुझे सदा ही, तुम्हारे पास लाने में समर्थ होते है। मुझे वही तुम्हारी ओर बार-बार आकृष्ट करते हैं।' यह कहते हुए आत्माराम अतिशय गम्भीर बन गया। वह स्थिर बन, सामने की ओर देखने लगा। उसी ओर देखते हुए, वह बोला—'अब मेरा शहर से सम्बन्ध टूट गया। मैं गाँव का था और गाँव मे ही जाकर बस गया। वकालत पढ़नी छोड़ दी, तो अब गाँव में खेती का काम करने लगा। आखिर पेट के लिए रोटियाँ तो चाहिएँ न, इसलिए, मैं उसी काम में लग गया। अब हम-तुम जल्दी नहीं मिल सकेंगे। पास-पास भी नहीं रहेंगे। दूर-दूर रहेंगे। अब पास-पास बैठकर परस्पर समस्याओं पर विचार-विनिमय नहीं कर सकेंगे। और जानते हो तुम,'—आत्माराम ने ठीक विपिन की आँखों में झाँककर कहा—'यह जीवन—जिन्दगी—कुछ अरमानों का खेल है! संयोग है! जाने कहाँ से आये तुम, कहाँ से मैं, एकाएक ही, इस जिन्दगी के चौराहे पर आकर मिल गये। दोनों पास-पास आकर बैठ गये। हम जानते है कि यह मिलन स्थायी नहीं। हम कभी भी टूट सकते हैं। यही सबकी कथा है। पत्नी, भाई और माँ भी। तो विपिनबाबू! इस संयोग को—जिन्दगी के इस मिलन को—क्यों खोते हो! जीवन का समय तो जा रहा है। मौत का द्वार समीप आ रहा है। आज ही, कुछ और कर लें, इस जिन्दगी की बातें! इस जिन्दगी को ऊपर उठाने का रास्ता ढूँढ़ लें। क्योंकि जानते तो हो ही तुम, जिन्दगी भी खोजी जाती है। संघर्ष किया जाता है। इस इन्सान को अथक परिश्रम में से अपने को निकालना पड़ता है—जैसे आग से निकला हुआ सोना······आग में गलता हुआ लोहा! हाँ, भाई! इसीका नाम जीवन है···जिन्दगी है!'

उस समय विपिन भी दार्शनिक के समान गम्भीर था। वह जैसे एकमन से आत्माराम की बात सुनने में लगा था। जब आत्माराम रुक

गया और वह विपिन की ओर देखने लगा, तो विपिन बोला—'आत्माबाबू, मैं कुछ नहीं समझता। मैं पहले के समान तुम्हारा आदर करता हूँ। मैंने अपने-आप में एक पाप की रचना की, तो उसे मिटाने के लिए कटिबद्ध हूँ।'

इतना सुनकर आत्माराम मुस्करा दिया। क्षणिक हँस भी दिया। वह बोला—'एक तो तुमने कोई पाप नहीं किया, यदि किया भी हो, तो जब तुम उसका अनुभव करते हो, तो निश्चय ही, तुम उससे ऊपर उठ चुके। तुम अपराधी नहीं रहे। लेकिन मेरा एक यह भी अनुमान है कि तुम उस पाप में इतने डूब गये कि अब निकलने का रास्ता भी नहीं पाते। तुम छटपटा रहे हो।'

विपिन ने अपने स्वर को कुछ गिराकर कहा—'शायद यही हो!'

'लेकिन जैसा कुछ देखते हो, उसे पाप क्यों कहते हो!' आत्माराम ने फिर कहा—'क्या इसीलिए कि वह तुम्हारे मस्तिष्क की, तुम्हारे जीवन की एक विकृतिमात्र है। एक विषैली वस्तु है! ऐसे तो तुम जरूर उस पाप के अर्पण हो जाओगे! तुम सत्य को भी सन्देह की दृष्टि से देखने लगोगे, उसे भी पाप मानोगे! और जानते हो, विष का काम है, मारना! परन्तु वही विष औषधि में भी काम आता है। सुनता हूँ, वही विष जीवन भी बचाता है।'

विपिन मौन था, वह उस पाप-पुण्य की बात को छोड़ देने के लिए कटिबद्ध था। जैसे, उसका मस्तिष्क और मन उस अवस्था से ऊब चला था।

किन्तु आत्माराम मुस्कराया। वह बिपिन की ओर उसी प्रकार देखकर, होठों से हँसता हुआ बोला—'नहीं, विपिनबाबू! यह छोड़ देने की बात नहीं है। यह तुम्हारे समझने की है। मैं कहता हूँ, यदि विष का उपयोग ठीक-ठीक हो, तो वह भी जीवन के लिए उपादेय है। हमारे जीवन के लिए सार्थक है। हमारे जीवन में भी विष है। उसे मारने के लिए जिस सत्य और सहानुभूति का आश्रय लिया जाता

है, वह प्रयोग भी अमिट है। सारवान है।

विपिन ने क्षणेक हँसकर कहा—'मैं इसे मानता हूँ।'

'और तब भी तुम इसे कार्य-रूप नहीं देते। जाने तुम कैसे वकील हो कि वास्तविक दलील को छोड़कर, दूसरी लेते हो। तुम सरलता से पाप-पुण्य की सीमा को लाँघना चाहते हो। जो पाप है, उसे छुपाओ मत ! उसे सड़ाना नहीं चाहिए, क्योंकि वह भी एक रोग है। उसका उपचार करना श्रेयस्कर है। और तुमने अपने इस घरू-जीवन में भी वकालत से काम लिया है ! इस सामाजिक जीवन को तर्क द्वारा व्यतीत करना पसन्द किया है ? न, भाई ! ऐसा नहीं सुहाता ! वास्तविकता को न तो वकील समझता है, न जज ! दर्शन का ज्ञान क्या हर एक को होता है।' इतना कहते हुए, आत्माराम के माथे में बल पड़ गये। अनायास उसकी आँखें चढ़ गयीं।

तभी विपिन ने कहा—'आत्माराम, मेरा धैर्य छूट गया। मुझे कुछ नहीं सूझता। कुछ भी भला नहीं लगता। अब तो अनुभव करता हूँ कि जैसे पहाड़ सदृश ही, यह जीवन मुझे प्राप्त हो गया····· ··· मुझे इस पहाड़ से निरन्तर टकराते रहकर मर जाने का रास्ता मिल गया !'

'अरे, विपिन, तू !' आत्माराम ने तब निरे सदय भाव में कहा—'भाई, सचमुच ही, तेरी बुद्धि का दिवाला निकल गया ! काश, तुम्हारे पास पैसा न होता। काश, तुम्हें इस जिन्दगी में रोटी, कपड़े के लिए अभावमय बनना पड़ता ! तुमने अभी समस्या का तो दर्शन किया नहीं। उस भयावनी सूरत को नहीं देखा। देखते तो सचमुच मर जाते। इस जीवन के आँगन में खड़े हुए काँप जाते ! तुम निर्धन और पराश्रित होते, तो मनुष्य की दासता का अनुभव करते। पर अब क्या······हां, क्या !'

'मैं अब यही बनना चाहता हूँ, आत्माराम ! इसी हेतु अपना जीवन उत्सर्ग करना चाहता हूँ !'

'तुम्हारी दिशा गलत है! अव्यवहारिक है! वह पहाड़ से टकराने वाली है!'

'कुछ हो, मेरा यही प्रण है! यही निश्चय!'

'तो अन्तिम···?'

'हाँ, अन्तिम! ध्रुव! निरा सत्य!'

'ओह, अरे, विपिन! तू जलेगा? इस घर को भी राख का ढेर कर देगा!'

विपिन ने तब कुछ अप्रतिभ बनकर कहा—'यहाँ सभी अमिट नहीं हैं, आत्माराम जी! एक दिन सभी कुछ मिटना है। इस जीवन को भी मिटना है। सभी अपना-अपना खेल खेलते हैं। संघर्ष करते हैं। लीन होना ही तो इस जीवन-जगत् की शाश्वत परिभाषा है। मैंने भी अपनी किश्ती को दरिया में डाल दिया है। पतवार रखे है। लहरें जिधर चाहें, उधर ही इस किश्ती को ले जायें।'

इतना सुना, तो आत्माराम हँस दिया। उसने कहा—'पूरे दार्शनिक बन रहे हो! अच्छा है।'

किन्तु विपिन तब नहीं हंसा। वह मौन रह गया। वह मेज के ऊपर रखे एक कागज पर पैसिल को निरुद्देश्य बनकर फेरने लगा।

लेकिन उसी समय, आत्माराम जब उठने के लिए उद्यत हुआ, तो बोला—'यदि तुम इन अनर्गल बातों को छोड पाते तो निश्चय ही अपना भला करते! तुम इस घर का भी सही प्रतिनिधित्व पूरा कर पाते! जब आदमी रास्ता नहीं जानता, तो वह दूसरे राहगीर से मालूम करता है। रास्ते की दूरी भी जान जाता है। क्यों न, तुम भी ऐसा करो! लज्जा मत करो। व्यर्थ का दम्भ करना भी गुनाह है। पथ-भ्रष्ट करता है। यहाँ तो सभी को, किसी-न-किसी सबक का गुरू बनाना पड़ता है। एहसान मानना पड़ता है। और यह क्या बुरा है?'

विपिन ने कहा—'यह तो मैं भी स्वीकार करता हूँ। तुम

बताओ ?'

आत्माराम ने कहा—'हां, क्यों नहीं। मैं इसीलिए तो तुम्हारे पास आता हूँ। तुम्हें टंकोरता हूँ।'

विपिन ने कहा—'लेकिन तुम्हारा कथन तो मैं देर से सुनता आया हूँ। जिसकी एक ही वाणी है। एक ही आत्मा ! कुछ और कहो !'

आत्माराम ने कहा—'मेरे पास और क्या है—कुछ नहीं !' कहते हुए वह कुर्सी से खड़ा हो गया। विपिन भी खड़ा हुआ।

विपिन ने कहा—'आज तुमने बहुत कुछ कहा। बहुत बोले !'

आत्माराम ने रजनी के कमरे की ओर जाते हुए कहा—'लेकिन सब व्यर्थ, बेकार !'

और उस समय विपिन कहना चाहता था कि नहीं, ऐसा नहीं। किन्तु वह कुछ भी नहीं कह पाया। केवल आत्माराम की ओर देखता रह गया।

: २४ :

आत्माराम सीधा रजनी के पास पहुँच गया। उसको हँसता हुआ देखकर, रजनी ने प्रश्न किया—'कैसे प्रसन्न हो ? हँस रहे हो ?'

आत्माराम ने सीधे-स्वभाव कह दिया—'बिपिन की बुद्धि पर !'

'क्यों ? क्यों ?' उत्सुक भाव से रजनी ने फिर पूछा।

आत्माराम ने कहा—'विपिन पागल हो गया है ! सचमुच का दीवाना !'

'आखिर बात भी···!'

आत्माराम ने सामने की ओर देखते हुए कहा—'जो बात है, वह तुम समझती हो।'

'यह बात है !' एकाएक उस बात पर रुककर रजनी ने अपना स्वर बदला—'जब तुम नहीं बताते, तो यों मुझ पर डालते हो ! बात टालते हो।'

आत्माराम ने जैसे ऊपरी मन से कहा—'तो कोई बात भी हो ! विपिन में कुछ नहीं है। हां, कुछ नहीं ! वह बस, पागल है ! दीवाना !'

'परन्तु मैं कहती हूँ, विपिन न पागल है, न दीवाना ! वह आदमी है। वह पहले के सामान आज भी अपना मूल्य आँकता है। भला-बुरा समझता है।' इतना कहते हुए रजनी ने कुमुद को आत्माराम की गोद में दे दिया। उसी समय फूआ ने उन दोनों के पास आकर कहा—'क्यों आत्माराम, बहू को ले जायगा ?'

उसने कहा—'हाँ, फूआ ! अब ले जाऊँगा। तुम बुलाओगी, तो फिर ले आऊँगा।'

यह सुनकर, फूआ ने मानो अच्छा नहीं अनुभव किया। उसने कहा—'अरे, कुछ दिन और छोड़ देता। इस घर में भी कुछ दिन और रौनक रहने देता।'

फूआ के उस वाक्य को आत्माराम ने यद्यपि हँसी से सुना, किन्तु वह सीधा उसके हृदय से छू गया। उस वाक्य में उसने फूआ का दर्द अनुभव किया। अतएव, एकाएक अपनी हँसी को रोककर, उसने प्रश्न भाव में फूआ की ओर देखा। उसने कहा—'माँ अकेली है, फूआ ! मुझे उसने भेजा है।'

उसी समय फूवा ने रजनी की बात छोड़ कर, विपिन का प्रसंग उठाया, उसने कहा—'तो विपिन से कुछ कहा ? देखता है तू कि अब वह कैसा बन गया ! जाने किस धुन में लगा है। न अपनी कहता है, न दूसरे की सुनता है !'

आत्माराम ने कहा—'जब वह किसी की नहीं सुनता, तो मेरी बात भी नहीं सुनेगा ! वह विचारों का और अपने घर का मालिक है !'

फूआ ने आतुर बनकर कहा—'न, न, तेरी सुनेगा! वह तेरी बात मानेगा, आत्माराम! देख तो, इस घर का दीया बुझने वाला है। विपिन ने विवाह न किया, तो इस घर में भला क्या रहेगा··· कौन रहेगा! तू सोच! मदद कर, आत्माराम!'

आत्माराम उस समय, सचमुच ही, कठिनाई में पड़ा था। उसने फूआ से यह तो कहा नहीं कि वह देर से इसी प्रसंग पर विपिन से कहता रहा। किन्तु जब फूवा की बात सुनी, तो वह अपने-आप में ही डूब गया। उसे कोई भी रास्ता नही सूझ पड़ा। उसने कहा—'फूआ, मैं सेवक हूँ। परन्तु विपिन का प्रश्न टेढ़ा है। वह जवान है। खुद-मुख्तार है। इसलिए, वह मेरी बात मान ले, तुम इस भ्रम में मत रहो। दिखता है कि वह किसी की नहीं सुनता। उसके जो मन में आता है, वह करता है। वही करेगा!'

इतना सुनकर, फूआ उदास बन गयी। वह आत्माराम के पास जिस आशा से पूरित बनकर आई थी, वह बेकार गयी। अपितु, जब उसने स्वयं आत्माराम को निरुत्साहित और निराश देखा, तो वह जैसे निरी जड़ बन गयी, सामने सफेद दीवार की ओर देखने लगी।

उसी समय, आत्माराम ने फिर कहा—'फिर भी प्रयत्न न छोड़ो, फूआ! विपिन से निरन्तर कहती रहो! तुम ज्यादा चिन्ता न करो! इस प्रकार विवाह को अधिक महत्व भी मत दो! सन्तान हो, तो उसी से घर का चिराग नहीं जलता। आदमी के कर्म, पुरुषार्थ और जीवन का इतिहास ही, घर में उजाला करता है। आदमी की स्मृति बनाता है।'

किन्तु फूआ ने जैसे इतनी बात को नहीं समझ पाया। अथवा समझ कर भी उसका मन सहमत नहीं हुआ। उसने अचरज के साथ आत्माराम को देखा। फिर रजनी को लक्ष्य करके कहा—'बहू, तूने भी सुना! अपना तो ब्याह कर लिया! ऐसी सुघड़ बहू ले आया। अब विपिन के लिए कहा, तो बात बनाने लगा। लेक्चर देने

लगा।'

आत्माराम हँस दिया—'तो तुम इसी को रख लो! बोलो, स्वीकार करो!'

फूआ ने साँस भरकर कहा—'अरे, कहीं ऐसे निभता है! परायी डाल का पंछी कहीं बैठता है।'

रजनी ने कहा—'नहीं, फूआ! मैं रह जाऊँगी। तुम्हारी सेवा करती रहूँगी!'

'अरी, बहू! क्यों मुझे बहकाती है। इतने दिनों में तो आत्मा की माँ ने बुलावा भेज दिया। कहीं दो-चार महीने हो जाते, तब तो उसका जीवन ही दूभर बन जाता!' वह बोली, 'अब तो विपिन दूसरी ही बात करता है। देशभक्ति के राग अलापता है। कहता है, देश का काम करने वाला विवाह नहीं कर सकता। पर मैं कहती हूँ, देश का काम तो तुम भी करते हो, आत्माराम। तुम्हें क्या बहू रोकती है? यह क्या तुम्हें बाँधकर रखती है? औरत तो आदमी में ममता के साथ नया प्राण भी पैदा करती है।'

आत्माराम फिर हँस दिया—फूआ, यही बुरा है। मोह ही नाश की जड़ है।'

फूआ ने जैसे साँस रोककर कहा—'ऐसे तो दुनिया मिट जायगी! उजाड़ जंगल बन जायगा, यह संसार!'

आत्माराम बोला—'मैं विपिन से फिर कहूँगा। कोशिश करूँगा!'

'हां, बेटा! भगवान् तेरा भला करे! उसे समझा दे! इस घर का दरवाजा भी खुला रहे।'

उसी समय, विपिन भी वहाँ आ गया। उसे देखते ही, फूआ ने कहा—'अरे, विपिन! देख, आतमा क्या कहता है! कहता है, विपिन अब मेरी नहीं सुनता। अब मेरी बात नहीं मानता।'

विपिन ने हँसकर कहा—'नहीं, फूआ! तुम्हें बहकाया है! ऐसा

कभी हुआ है !'

'तो तू ही पूछ ! बात कर ! तू इस घर के लिए भी निश्चय कर !' कहते हुए फूआ उठ चली।

विपिन ने रजनी की ओर देखकर कहा—'फूआ को एक ही रट है,—विपिन का विवाह ! भला कोई पूछे तो कि विवाह ही क्या सब कुछ है !'

रजनी ने कहा—'तो लोग मूर्ख हैं, जो करते हैं ? यह भी एक कर्म है। यज्ञ है।'

विपिन हँस दिया—'वाह-वाह ! पैसे के समान, लोगों ने नारी पर भी अपने नाम की मुहर लगाना आरम्भ कर दिया ! ऐसे तो व्यभिचार और बढ़ गया। वेश्याओं का आविष्कार भी अधिक हो गया।'

आत्माराम ने कहा—'तो आदर्श और साम्यवाद की बातें करते हैं, बाबू जी ! नारी की पैसे से तुलना करते हैं !'

विपिन ने कहा—'आज नारी भी पैसे से खरीदी जाती है। जिस व्यक्ति के पास नहीं, वह जीवन भर नारी के लिए तरसता है। एकाकी व्यक्ति गृहस्थियों की ओर हसरत भरी निगाह से देखता है। आज के समाज में जितने पाप तथा व्यभिचार हो रहे हैं, उन सबका जनक यही पैसा है। पैसे ने हमारा सम्मान, धर्म और विवेक नष्ट कर दिया। इन्सान खोखला बना दिया।' उसने कमरे की दहलीज पर पैर रख लिया और बोला, 'ये साम्राज्यवादी और पूँजीवादी प्रवृत्तियाँ जब तक रहेंगी, तो इन्सान इसी प्रकार नष्ट किया जाता रहेगा ! पतित होता रहेगा। पूँजी और श्रम का झगड़ा चलता रहेगा। धर्म का नारा लगता रहेगा। इन्सान चूसा जाता रहेगा··· हाँ, आत्माराम ! जिस व्यवस्था की माँग आज की जा रही है, इस प्रकार तो इस इन्सान को कुछ भी प्राप्त नहीं होगा। नारी कितनी ठगी गयी है, नष्ट की गयी है, इसका स्वरूप तो हम प्रत्येक घर में

दिखायी देगा। तुम कहते हो, मैं विवाह करूँ। बच्चे पैदा करूँ! परन्तु मैं तो सोचता हूँ, इस पाये हुए जीवन में, नारी का सांस्कृतिक और दार्शनिक स्वरूप देख पाऊँ, उसके चरणों की रज अपने मस्तक से लगा पाऊँ, तो भी, मैं अपने जीवन को पखार लूँगा! मैं मरते समय तक इस बात को नहीं भूलूँगा कि मुझे एक नारी ने पैदा किया है। तो जब मैं, इतना उत्तरदायित्व नहीं निभा पाता, तो किसी सुकोमल नारी का पति बनना, मैं कदापि स्वीकार नहीं करूँगा। मैं अपने साथ अन्याय कर सकता हूँ, परन्तु किसी अन्य के साथ, सौदा करना, अपनी वासनासिक्त प्यास को बुझाने के हेतु इस जिह्वा पर उतरते हुए सुन्दर वाक्यों का दुरुपयोग न कर सकूँगा। मैं पति बनने का ढोंग न करूँगा। एक नारी को अपनी कैद में न रखूँगा!'

उस समय आत्माराम और रजनी एकटक विपिन की ओर देख रहे थे। विपिन का मुँह भावावेश में लाल हो गया था। वह तेजपूर्ण युवक उस समय सुन्दर लग रहा था। दिप रहा था।

तभी आत्माराम ने अपनी देर की रुकी हुई साँस को छोड़ कर कहा—'यह ठीक है। मैं तुम्हारी भावना का आदर करता हूँ। तुम अपने सम्बन्धियों से कह दो, मैं विवाह नही करूँगा!'

विपिन ने विषाक्त भाव में मुस्कराते हुए कहा—'इस जीवन में अन्तिम बात तो कोई है नही। परिस्थितियाँ बदलती हैं, तो आदमी बदलता है। मुझे किसी से कुछ नहीं कहना है। बात मेरी है। मेरे स्वार्थ की है। निर्णय भी मुझे करना है।'

रजनी ने कहा—'आदमी नारी का सम्मान करें,—माँ, बहिन के अतिरिक्त नारी को और कुछ न समझे, यह सबसे बड़ी बात है!'

विपिन अपने सफेद दाँतों से हँस दिया—'मैं योगी नहीं हूँ, भाभी! कमजोरियों का दास हूँ।'

रजनी ने कहा—'जब कमजोरियाँ हैं, तो समाज में व्यभिचार फैलाना, दूसरों की बहू-बेटियों को ताकना, सबसे बड़ा पाप है!

दुराचार है ! ऐसे व्यक्ति को समाज से बहिष्कृत करना ही अच्छा है !' उसने विपिन की ओर देखा और कहा—'इस विवाह की परिपाटी का निर्माण इसीलिए तो हुआ कि आदमी, आदमी रहे ! बाजार का फिरता हुआ साँड न रहे ! कुत्ता न रहे ! विवाह कुछ और हो, तो हो; परन्तु है एक समझौता ! समाज का माप-दण्ड ! संस्कृति का एक नियम।

विपिन ने कहा—'विवाह करके भी लोग साँड बनते हैं। नारियाँ दुराचारिणी !'

रजनी ने अपने स्वर पर जोर देकर, रोषपूर्ण स्वर में कहा—'यह भी पुरुष का दोष है,—नारी का नहीं ! घर की स्त्री का नहीं,—बाजार की वेश्या का नहीं !'

उस समय, आत्माराम ने देखा कि विषय तर्क का बन रहा है। बता बढ़ रही है। रजनी को क्रोध आगया है। उसका मुँह लाल बन गया है। इसलिए, उसने प्रस्तुत विषय की कड़ी को तोड़ा और विपिन की ओर देख, हँसकर बोला—'अच्छा, भाई ! जो उचित समझो, करो। हमारा कहना काम था। कर्तव्य भी था। स्वर्ग में बैठे हुए तुम्हारे पिता यह शिकायत न करें कि आत्मा ने कुछ नहीं किया। विपिन को नही समझाया। सो, तुमने समझ लिया। विवाह को तर्क की कसौटी पर भी घिस लिया। अब स्वयं निर्णय करो। अपना मार्ग प्रशस्त करो !'

रजनी ने कहा—'विपिन बाबू ने नारी का अभी एक रूप देखा है—प्रणय और भोग का रूप ! लेकिन जो सुहावना, मधुर और भावनाप्रिय रूप है, वह अभी नहीं देख पाया। कहते तो हैं कि मैं एक माँ का बेटा हूं, परन्तु मेरा मत यह है कि इन्होंने उस माँ के आध्यात्मिक स्वरूप को भी नहीं समझा। उस माँ का अन्तराल नहीं समझ पाया। इस भ्रम ने नारी को ठगा, पुरुष को ठगा। इस विचार ने हमें सदा ही छला है।'

विपिन ने कहा—'यह व्यर्थ ही बात का बतंगड़ बना है। फूआ ने

बनाया है। भाभी, तुमने भी बनाया है !'

रजनी ने कहा—'विवाह तुम्हें करना है। दोष मेरा।'

विपिन ने कहा—'तुमने नित्य कहा, विवाह करो ! जल्दी करो ! अभी करो !'

आत्माराम ने कहा—'रजनी ने अपना समझ कर ही ऐसा किया होगा ! और तुम इसे नहीं मानते, तो अन्यथा समझना भी क्या ठीक होगा ! रजनी ने शायद यह भी समझा कि तुम नारी चाहते हो, उसका प्रेम पाना पसन्द करते हो !'

विपिन हँस दिया—'तो मेरे लिये तुम भी यही समझते हो !'

आत्माराम ने कहा—'मेरी और रजनी की बात में अभी अन्तर नहीं आया। रजनी ने मेरे द्वारा ही, तुम्हारा परिचय पाया। यह मैंने ही कहा कि विपिन मेरा मित्र है। आत्मीय है।'

इतना सुनकर, विपिन जैसे अपने-आप लज्जित बन गया। वह मौन रह गया।

आत्माराम ने कहा—'और तुम सोचते हो, हम गैर हैं, हम कोई और हैं। सो, तुम जानो, भाई ! मैं ऐसा नही सोचता ! मैं रजनी से भी ऐसा नहीं कहता।'

'नहीं, आत्मा बाबू ! ऐसा मैं नहीं मानता।' विपिन ने तुरन्त कहा।

आत्माराम ने कहा—'मै सफाई नही माँगता। ऐसा आवश्यक भी नहीं समझता।'

विपिन ने कहा—'तुम सुखी हो। पत्नी और बच्चे में मिल गये हो !'

रजनी हँस पड़ी—'तो तुम भी इस सुख की कल्पना करते हो ! भला तुम इसे क्यों मानते हो ?'

विपिन ने कहा—'मैं इसे मानता हूँ, भाभी ! समझता हूँ।'

रजनी ने कहा—'एक किताब में पढ़ा था मैंने कि मानसिक व्यभि-

चार, इच्छाओं का दूसरा नाम है !' वह आतुर बन कर बोली—'तो तुम विवाह क्यों नहीं करते ? तुम क्यों नहीं एक सुन्दर स्त्री पा लेते ?'

'बस, यही तो मैं नहीं चाहता, भाभी !' विपिन ने कहा—'तब तो मैं जैसा आज देखता हूँ, वैसा न देख पाऊँगा। सम्भवतः सुख भी न पाऊँगा।'

आत्माराम ने कहा—'यही कायरता है ! विपिन्नता है !'

विपिन वहाँ से चल दिया। उसने जाते-जाते कहा—'इस जीवन के बाद भी जीवन है, वह भी मुझे पाना है। तब विवाह कर लूँगा। नारी को और समीप से देख लूँगा। अब तो ऐसे ही······इस जीवन में इतना हा !'

रजनी के समान, आत्माराम ने उसकी ओर देखा और देखता रह गया।

: २५ :

उस दिन आत्माराम के मन में यह विचार अटका रहा कि यह विपिन जाने किस लक्ष्य की आराधना में लीन है ! और आत्माराम की यह भी कठिनाई थी कि जहाँ वह इस प्रश्न को अपने मन से निकाल दना चाहता था, तो उत्तरोत्तर उसमें संलग्न होता जाता। उस दिन आत्माराम गाँव भी लौटना चाहता था। परन्तु जब प्रातः ही, विपिन से अधिक तर्क चला, तो उसका गाँव जाने का विचार खंडित हो गया। दिन चला गया। रात आ गयी। जब वह पलंग पर पड़ गया, तो यह विचार उसके मस्तिष्क में और प्रबल हो उठा कि सचमुच, विपिन के मन में कोई बात है। विपिन अब मुझसे दूर है। पहले के समान एक नहीं। निकट नहीं। उसी समय, आत्माराम के मन में यह आशंका भी

व्याप्त हुई, तो क्या विपिन, इस रजनी के प्रति संलग्न है ? रजनी को पाने की इच्छा रखता है ? वह बोला, ऐसा भी हो, तो मुझे आपत्ति क्या ! मैं रजनी और विपिन के रास्ते में काँटा नहीं बनूँगा ! मैं विपिन की इच्छा नहीं तोड़ूँगा ! किन्तु इस धारणा पर आकर आत्माराम ऐसा विश्वास एक क्षण के लिये भी नहीं कर सका कि इस रजनी के मन में भी ऐसी कोई इच्छा······विपिन के प्रति आत्म-समर्पण की धारणा है ! फलस्वरूप, अन्त तक भी, आत्माराम समस्या की ऊहापोह करता रहा। वह उसे नहीं सुलझा सका। एक क्षण के लिये जो उसके मन में रजनी के प्रति आशंका पैदा हुई, तो वह छूट गयी। वह आत्म-ग्लानि का स्वरूप नहीं धारण कर सकी। अपितु उसने कहा, रजनी मेरी पत्नी है—मेरे विश्वास की सूत्रधार है। और विपिन, विपिन है,—केवल मित्र !

आत्माराम सो गया। देर में सोया, तो प्रातः भी देर में उठा। जब आँख खुलीं, तो सूरज चढ़ आया था। उसने देखा कि रजनी उसके सिरहाने बैठी है। वह उसके सिर पर हाथ फेर रही है। जैसे प्यार और ममता के साथ अपने पति को जगा रही है। रजनी को देखते ही, आत्माराम ने अपनी दोनों बाहें उसके ऊपर डाल दीं। उसने कहा, 'मैं रात देर में सोया, रजनी ! इस कम्बख्त, विपिन की समस्या में उलझ गया। मैंने समझ लिया कि इस विपिन से जो देर से सम्बन्ध बनाये रखा, वह अब टूट रहा है। समाप्त हो जाने वाला है।' यह कहते हुए, आत्माराम खड़ा हो गया। वह शौचादि से निवृत्त होकर विपिन के कमरे में गया। देखा, कि विपिन कुछ लिख रहा है। जाते ही, आत्माराम ने उसकी कमर पर हाथ रखा। बिपिन चौंक गया। उसने कलम रख दी और आत्माराम की ओर देखने लगा।

आत्माराम ने पूछा—'क्या लिख रहे हो ? कोई लेख ?'

विपिन ने उस लिखे हुए कागज से अपना हाथ हटा लिया। उसे आत्माराम की ओर बढ़ा दिया। आत्माराम ने पढ़ा और बरबस, उसे

फाड़कर, वह विपिन की ओर देखता हुआ बोला—'सचमुच, तुम्हारा मानसिक धरातल विकृत बन गया। मन दुर्बल हो गया।' और वह पत्र उसी के लिए था। विपिन ने उस पत्र में अपना पक्ष सम्पादित किया था।

उसी समय आत्माराम ने कहा—'तुमने जिस सन्देह की बात लिखी है, ऐसा तो मैंने एक बार भी नहीं कहा। मैं तुम पर भरोसा करूँ या नहीं, परन्तु रजनी पर अवश्य करता हूँ। वह मेरी पत्नी है। सहधर्मिणी है। मैंने कई वर्ष तक रजनी को खोजा और देखा है। तदुपरान्त विवाह-सम्बन्ध बना। लेकिन जब तुमने कहा है, अपनी निर्दोषिता की सफाई दी है तो क्या यह निरा झूठ है! तुम इसे छिपा देना चाहते हो कि तुम रजनी के प्रति आकृष्ट नहीं हुए। तुमने रजनी को अपने प्रति प्रभावित करने और मेरे प्रति उपेक्षित बनाने वाले पत्र नहीं लिखे? तुम्हारी यह सफाई व्यर्थ है कि तुम्हारे मन में रजनी के प्रति विराग नहीं……संलग्नता नहीं! मै ऐसा भरोसा नहीं करता!' इतना कहते हुए आत्माराम गम्भीर बन गया। वह बाहर की ओर देखने लगा। उसी अवस्था मे जब उसने फिर विपिन की ओर देखा तो बोला—'विपिनचन्द्र, यदि तुम रजनी को सहमत कर सको, तो दोनों ही मुझसे कह दो, मैं सहर्ष अपना अधिकार वापिस कर लूँगा। मैं अपने हाथों रजनी को तुम्हें सौंप दूँगा। मैं एक मित्र का कल्याण करने के हेतु, इतना त्याग भी कर सकूँगा। और यदि ऐसा नहीं है तो तुम निश्चित रूप से अपना रूप बदल दो। तुम पहले सरीखे विपिन बन जाओ। साफ और स्वच्छ हो जाओ। मैं किसी की इच्छा मारने की बात कभी नहीं सोचता। रजनी की इच्छा थी कि वह यहाँ आये, कुछ समय तुम्हारे साथ रहे, तो मैं उसे छोड़ गया। तुम दोनों को मुक्त कर गया। लेकिन वास्तविकता तो यह है कि तुम दोनों ही यह नहीं जानते कि किस कर्तव्य का पालन करो। हाँ, इतना अवश्य देखा कि रजनी ने अपने को नहीं भूला। अपने सामाजिक जीवन को नष्ट नहीं

होने दिया। उसने अपने नारीत्व को हीन नहीं बनने दिया। इसीलिए, वह आज भी मेरी दृष्टि में देवी है। वह परम है, सुन्दर है। किन्तु तुम सचमुच ही, भ्रष्ट बन गए हो। तुम अपने को कलुषित करने पर तुले हो। जिस दल के तुम सदस्य बने हो, वहाँ भी तुम्हें चरित्र का पाठ नहीं मिला। और जिस व्यक्ति के पास दृढ़ चरित्र नहीं, उसकी कोई साख नही······उसका कोई उद्देश्य नहीं······वह विश्वास योग्य नहीं······!'

उसी समय, विपिन ने अनुभव किया कि आत्माराम की आवाज कठोर और रूखी बन चली है। उसकी दृष्टि भी तीव्र दिखाई दी। उसी समय आत्माराम ने फिर कहा—'और देखो, विपिन! मैं जितना कह सकता था, कह चुका। तुम अपने को बदल सकते हो, तो बदलो। रुक सकते हो, तो रुको। देखो, आगे खाई है। बड़ी खन्दक है। उसमें अवश्य ही गिरोगे। तुम असमय ही, अपना अन्त कर दोगे!'

एकाएक विपिन के मुँह से निकला—'आत्माराम···!'

किन्तु आत्माराम का स्वर क्रोध में था। उसका मुँह लाल हो गया। जब विपिन बोला, तो उसने छूटते ही कहा—'बस, विपिन! मैंने बहुत कहा। मैंने बहुत सुना। अब आगे नहीं।'

लेकिन उसी समय, विपिन ने उठकर आत्माराम के पैर पकड़ लिये। इतना देख, आत्माराम का क्रोध जैसे आग के अंगारे के समान फूट पड़ा। उस आग के पतंगे, उसीके शरीर पर चारों ओर फैल गये। वह व्यथित बन गया। जब विपिन उसके पैरो में झुका, तो आत्माराम खड़ा हो गया। उसने विपिन को पीछे हटने के लिये धक्का दे दिया। वह उस कमरे से निकल गया।

देर हुई कि आत्माराम उस कमरे से चला गया। विपिन अकेला रह गया। उसके सामने अँधेरा था। वह सूरज का प्रकाश भी उसे रोशनी नहीं दे रहा था। उसने जीवन में दो बातें पाईं,—एक आत्माराम का क्रोध और दूसरा अपना अपमान! एक उसे जला रहा था

और दूसरा उसे भीतर-ही-भीतर कम्पित कर रहा था ।

विपिन के पास से, आत्माराम सीधा रजनी के कमरे में चला गया । वह जाकर बैठ गया । किन्तु रजनी ने उसे गरम और लम्बे साँस लेते पाया; आँखों को लाल पाया, तो वह समझ गयी कि विपिन से कुछ कहा है । आज उस पर क्रोध भी किया है । निदान, वह और समीप होकर, आत्माराम के सिर पर हाथ रखकर बोली—'मान-न-मान, मैं तेरा मेहमान, वाली कहावत तुम कब तक चरितार्थ करोगे ? जब विपिन नहीं मानता, तो क्यों उसके पीछे पड़े हो ! उठो, स्नान कर लो । मैं कपड़े बाँधती हूँ । गाड़ी का समय भी हो गया है ।' यह कहते हुए, उसने साँस भरी और कहा—'जिसे ठीक होना होगा, होगा ! यह सब पिता के पैसे का उन्माद है ! यदि पेट के लिये दो रोटियाँ उपार्जित करनी पड़तीं, तो न रजनी का स्वप्न देखा जाता, न दुनिया की किसी और बात का । भ्रष्ट कहीं का ! निरा शैतान !' इतना कहते हुए, रजनी स्वयं लाल हो गयी । क्रोधावेश में वह आगे नही बोल पाई । वह कमरे से बाहर जाने लगी ।

किन्तु आत्माराम ने उसे रोककर कहा—'सुनो, रजनी !'

रजनी की आँखें भरी थी । वह बोली—'बस, मैं भर पाई । तुम भी एक निकले, जो मुझे यहाँ छोड़ गए ! दोष मेरा है । मेरी भावना का है । अब मुझे यह घर जल्दी छोडना है ।'

परन्तु आत्माराम तो उस समय शान्त बन रहा था । अतएव, उसने रजनी का हाथ पकड़ लिया । वह जाने कैसी अनुपम दृष्टि के साथ, उसकी ओर देखने लगा ।

रजनी ने कहा—'सचमुच, तुमने मुझे अपमानित किया । इस घर पर छोड़कर लज्जित किया !'

आत्माराम ने कहा—'हाँ, मैंने अपराध किया, रजनी !'

उसी समय, विपिन उस द्वार के सामने आया और तनिक ठिठककर फिर तेजी से आगे बढ़ गया ।

आत्माराम ने कहा—'विपिन आया और चला गया। तुमने नहीं रोका ?'

रजनी ने कहा—'देखो, समय जा रहा है। विलम्ब हो रहा है।'

आत्माराम चला गया। जब लौटकर आया, तो रजनी ने सामान बाँध लिया था। उसने ताँगा लाने के लिये नौकर भेज दिया। वह फूआ से भी विदा माँग चुकी।

ताँगा आ गया। सामान रख दिया गया। आत्माराम ने फूआ को प्रणाम किया। जब रजनी और आत्माराम ताँगे में बैठ गये, तो तभी, नौकर ने आकर कहा—'वकील साहब कह गये हैं कि मैं एक जरूरी काम से जा रहा हूँ। मैं समय पर न लौट सकूँगा।'

आत्माराम ने 'अच्छा' कहा और ताँगे को आगे बढ़ने का आदेश दे दिया।

: २६ :

आत्माराम स्टेशन पहुँच गया। गाड़ी में बैठ गया। अभी गाड़ी छूटने में देर थी। तभी देखा कि विपिन तेज चाल से चलता हुआ वहाँ आया। वह डिब्बे में आकर कुमुद को लेकर बैठ गया। यह सचमुच ही उसका नाटकीय अभिनय था। आत्माराम और रजनी को इसका भरोसा नही था। उसके हाथ में एक बड़ा वण्डल था। उसी की ओर देखकर, रजनी ने पूछा—'यह क्या लाये ?'

विपिन ने कहा—'कुमुद के लिये खिलौने, मिठाई।'

'वाह-वाह !' रजनी ने कहा—'इतने ढेर खिलौने तो साथ ले आई हूँ। तुम रोज ही कुछ-न-कुछ लाते। अब और ले आये।'

विपिन ने कहा—'और तुम्हारे लिये भी एक साड़ी है। फूआ की

ओर से है ।'

इतना सुना, तो रजनी चकित रह गयी । वह बंडल खोलने लगी । देखा तो सचमुच ही साड़ी । बेहद कीमती । बढ़िया खिलौने । शहर की मिठाई ।

देखकर, आत्माराम ने कहा—'व्यर्थ में पैसा डाल आया । इतनी कीमती साड़ी क्यों ले आया !'

विपिन मौन था । वह कुमुद से बोल रहा था ।

उसी समय, रजनी ने कहा—'अब गाँव जल्दी आना, विपिन बाबू !'

विपिन ने कहा—'हां, जल्दी आऊँगा, भाभी !' और बोला वह—'तुम्हें यहाँ जो कष्ट हुआ, उसे भूल जाना । मेरी माँ तो है नहीं, जो तुम्हें सहारा मिलता । मुझे क्षमा करना ।'

इतना सुना, तो रजनी को विपिन निरा बच्चा लगा । उसकी बात से आत्माराम का मन भी चुभ गया । उसे जैसे विपिन का मन गंगा के समान प्रतीत हुआ । विपिन निरा भोला और बालक मालूम हुआ । परन्तु वह बोला कुछ नहीं, डिब्बे में बैठे हुए मुसाफिरों की ओर देखता रहा । उसी समय इञ्जिन ने सीटी दी । विपिन ने कुमुद को रजनी की गोद में दे दिया । उसने नमस्ते की और डिब्बे से नीचे उतर गया । उसी समय, रजनी ने अपने स्वर पर जोर देकर कहा—'देखना, कहीं भूल जाओ ! जल्दी आना ।'

विपिन ने भी अपने स्वर पर जोर दिया और कहा—'अच्छा, भाभी, अच्छा !'

गाड़ी छूट गयी । संन्ध्या होते-होते आत्माराम और रजनी घर पहुँच गये । घर पहुँचकर, जब रजनी ने माँ के पैर छुए, तो उसने कुमुद को गोद में लेकर, रजनी को शुभाशीष दिया और पूछा—'विपिन अच्छा है ना ? सुखी है ?'

आत्माराम ने कहा—'हां, वह अच्छा है, माँ !'

इसके बाद आत्माराम अपने कमरे में चला गया। माँ द्वारा जो विपिन का नाम आया, तो उसे लेकर ही, जब वह कमरे में जाकर बैठा, तो अपने-आप बोला—विपिन अब अपनी राह पर है। वह जिस दिशा की ओर देखता है, अब उसी पर चलेगा। यह कहते हुए आत्माराम ने सामने आकाश की ओर देखा। वह प्रसन्न था। उसी समय रजनी कमरे में आई। वह आत्माराम के कपड़ों को खूँटियों पर टाँगने में और इधर-उधर फैली हुई चीजों को करीने से रखने म लग गयी। उसी समय माँ ने रजनी और आत्माराम को सुनाते हुए कहा—'सुनो आत्मा! अब मैं कुछ दिन के लिये बाहर जाऊँगी। अब मैं इस घर को बहू और तुम पर सौंप जाऊँगी। मैं तीर्थाटन करूँगी।'

आत्माराम ने पूछा—'तो कहाँ माँ? हरिद्वार? या काशी?'

माँ ने कहा—पहले हरिद्वार। फिर काशी।'

'साथ में कौन जायेगा?' आत्माराम ने पूछा।

'कोई चला जायगा। घर का रामू ही चला जायगा।'

'अच्छा-अच्छा, तुम जरूर जाओ, माँ!' आत्माराम ने कहा।

किन्तु रजनी ने कहा—'अभी मत जाओ, माँ! कुछ ठहर कर जाओ!'

आत्माराम बोला—'क्यों, रजनी। माँ को जाने दो। इस घर के झंझट से दूर होने दो।'

रजनी ने कहा—'इस घर की माँ से ही शोभा है। यह इन्हीं से शोभता है।'

माँ ने कहा—'न, बहू! यह घर अब तुमसे शोभा पाता है। इसका अब तुम्ही पर भरोसा है।'

इतना सुनकर, रजनी आगे कहने से रुक गयी। वह जैसे लजा गयी।

माँ ने फिर कहा—'तुम्हें कुमुद का अधिक ध्यान रखना होगा। सब ओर से छूटकर तुम्हें इसी को पालना-पोसना पड़ेगा। मेरा कुमुद दुबला भी हो गया है। शहर का पानी क्या अच्छा है!'

उसी समय, माँ और रजनी की होती हुई बातों में, आत्माराम का मन कहीं और था। वह तब एकाएक, अपनी आत्मा के वितान पर बैठा हुआ, कहीं अन्यत्र पहुँच गया। वह तब वहाँ नहीं था। उसका मन स्वामीजी के पास था। आत्माराम में तब एकाएक ही, यह विचार आया कि वह जाये और स्वामीजी से मिल आये। इसी विचार को लिये हुए आत्माराम उठ लिया और जंगल की ओर चल दिया। जब वह जंगल से लौटा, तो रात आ गयी थी। दीये जल गये। आत्माराम ने खाना खाया और बिस्तर पर पड़ गया। वह सो गया। किन्तु जब सुबह हुआ, तो वह बिना किसीसे कुछ कहे, घर से और गाँव से चल दिया। वह दोपहर होते-होते स्वामीजी के पास पहुँच गया। स्वामीजी ने आशीर्वाद दिया और कुशल-समाचार पूछा।

जब आत्माराम हाथ-मुँह धोकर खा-पी चुका, तो वह फिर स्वामीजी के पास बैठ गया। स्वामीजी ने उसकी ओर देखा। आत्माराम ने अपनी जेब से पिस्तौल निकाला और उसे स्वामीजी के समक्ष रखकर बोला—'स्वामीजी, आज मैं इसीके अर्थ समझने आया हूँ। मैं इसे देर से अपने पास रखता हूँ। मैं इसी पिस्तौल के द्वारा देश को स्वतन्त्र कराना चाहता हूँ। ऐसी कामना करता हूँ।'

स्वामीजी ने जाने कितनी अचरज भरी दृष्टि से आत्माराम को देखा। उन्होंने पिस्तौल उठा लिया। देखा कि वह भरा था। उन्होंने उसके घोड़े को ऊपर उठाया और एक ओर हाथ उठा कर छोड़ दिया। धड़ाका हुआ। कुछ धुआँ निकला और मिट गया। तभी मुस्कराकर स्वामीजी ने कहा—'देखा, आत्माराम! जो था, वह समाप्त हुआ। केवल गोली का खोल रह गया। अब यह निरुद्देश्य है, बेकार है!' यह कहते हुए, स्वामीजी गम्भीर हो गए। उनके माथे म बल पड़ गए। उसी अवस्था में बोले—'लेकिन यह क्यों है? इसका क्यों निर्माण हुआ है? इस इतिहास का बताना तो कठिन है, परन्त सत्य यह है कि मानव जब-जब अधिक स्वार्थी, दम्भी और ईर्षालु बना, तो तभी-तब

ऐसे शस्त्रों का आविष्कार हुआ। इस प्रकार इन्सान ने प्रतिरोध का दमन करना पसन्द किया! अपनी आत्म-तुष्टि की। तलवार और बन्दूक ऐसे ही साधन हैं। पिस्तौल उसी का पॉकिट-रूप है। मानव सोचता है, वह इस हाथ भर के शस्त्र को पाकर अपनी रक्षा कर पाता है। शत्रु से, या हिंसक जन्तु से बचाव कर सका है! प्रथम तो यही बड़ी निर्बलता है कि जिस वस्तु का प्रयोग हिंसक जानवर पर होता था, उसका उपयोग अब इन्सान पर होने लगा। लेकिन जो हो, इन्सान अपने इस उद्देश्य में भी सफल नहीं हुआ। प्रतिरोध और प्रतिकार नहीं दबाया जा सका। उस दूषित प्रवाह को इस प्रकार रोकने का प्रयोग नितान्त असफल रहा। इससे तो, द्वेष अधिक बढ़ा। इन्सान का खून द्रुत गति से किया जाने लगा। लाशों के ढेर लग गए। खून की नदियाँ बह गयी। इस भूखण्ड पर इन्सान की हड्डियाँ और मांस सभी ओर छितराया गया। किन्तु जो कुछ असत्य था, वह सत्य नहीं बना।' स्वामीजी ने साँस भरी और फिर कहा—'आत्माराम, मेरा यह भी मत है कि इन शस्त्रों के निर्माता नास्तिक नहीं। वे सभी ईश्वर-पूजक हैं। भावनावादी हैं। परन्तु ऐसे अस्तित्वों का क्या अर्थ कि जो ईश्वर को मानकर भी, इस भौतिक जगत् का नाश करते हैं, इन्सान को मारते हैं......आत्माराम, वे भगवान् पर शस्त्र उठाते हैं! इस जीवन में विरोध तो चलता है। पाप का सृजन होता है। अभाव भी रहता है। परन्तु इन सब दोषों को दूर करने के लिए आखिर पिस्तौल की गोली क्यों? ये तेज हथियार क्यों? स्पष्ट है कि विरोधी इन्सान का इनसे अन्त किया जाता है! लेकिन भाई, क्या सचमुच ही उस विरोध का अन्त हो गया। नहीं, नहीं, वह विरोध तो और बढ़ा। वह विषाक्त बना। एक या हजार इन्सान मारे गए, तो उसी खून से, उन्हीं विचारों से दूने-चौगुने और उत्पन्न हो गए! तब भला क्या मिला। भले ही इन्सान मारा गया, लेकिन वह दूषित संस्कार नहीं मारा जा सका। आज तक कोई भी शस्त्र, कोई बम उस संस्कार पर विजय नहीं प्राप्त

कर सका ! 'खून के बदले में खून' का नारा आज काफी पुराना हो गया है। यह नारा फेल हो गया है। परन्तु डाक्टर के समान रोग को दबाने के लिए जिस प्रकार तेज इन्जेक्शन दिया जाता है, उसी तरह विरोध को दबाने के लिए आदमी का सिर काट दिया जाता है। इस तरह न इन्जेक्शन से रोग का अन्त होता है, न इन्सान का वध करने से विचारों का ! इसलिए, मैंने आज तक इस मार्ग को—हिंसा को—महत्व नहीं दिया। सारभूत नही माना। तुम कब से इस विचार को लिए हो, मुझे सचमुच ही अचरज हुआ। तुम ऐसे अविवेकी और अविचारी बनोगे, मैंने कभी अनुमान भी नही किया ! जनता की सेवा करना, —देश को स्वतंत्र कराना—जीवन का बड़ा काम है ! महान् पुण्य है। वह पुण्य तुमने पिछले दिनों उपार्जित भी किया। जिस क्षेत्र में तुमने काम किया, वहाँ के वासी तुम्हारे ऋणी हैं। वे देर तक तुम्हारा नाम लेंगे। आत्माराम नाम के व्यक्ति की याद करके वे अपनी संतानों को एक इतिहास बतायेंगे और कहेंगे, वह व्यक्ति हमारे बीच में भगवान् बनकर आया······जीवन-साथी बनकर आया !' इतना कहते हुए स्वामीजी रुक गए। वह क्षण भर बाहर की ओर देखने लगे। तदन्तर बोले—'निःसंदेह, तुम्हें उस कार्य से कष्ट हुआ होगा ! मैं अनुभव करता हूँ, जरूर हुआ। परन्तु भाई, वह सेवा क्या कि जिसमें कष्ट न हो ! जीवन की तपस्या न हो ! ऐसे ही तो यह इन्सान निखरता है। सोना आग में तपकर कुन्दन बनता है ! और यह क्या देश-सेवा है कि पिस्तौल में गोली भरो और छोड़ दो। लक्षित व्यक्ति को मार दो। न, न, यह सेवा नहीं, हृदय की सच्ची साधना नहीं। तपस्या नहीं। ऐसे, भला कब समझा जाता है कि देश में कौन भूखा है और भूख से तड़पकर मरता है। बेटे के मरने पर माँ को कैसा कष्ट होता है। पतिहीन युवा पत्नी का हृदय कैसे तड़पता है······हाय, तुमने तो पाप के बदले में पाप करना पसन्द किया ! तुमने यह भुला दिया कि तुम्हारे ऊपर भी कोई शक्ति है। वह महान् है। वह तुम्हारी और तुम्हारे

शत्रु की सृष्टा है। दोनों की उद्धारक है। दोनों की जननी। वह दोनों की निर्माता है।'

उसी समय, स्वामीजी मुस्कराये और कहने लगे—'आत्माराम, सचमुच ही, मुझे तुम्हारी यह चेष्टा देखकर कष्ट हुआ। निःसंदेह, तुमने इस अखिल-जगत् के सृष्टा का अस्तित्व भुला दिया। तुम नहीं देख सके कि इस जगत् के समस्त जीव उस परम ब्रह्म की कल्पना में लीन हुए, एक महान् और सतत प्रयत्न करते दीखते हैं। पशु-पक्षी, जीव-जन्तु और इन्सान, सभी का एक ही नारा है—'जीओ और जीने दो।' यही नारा भारतीय दर्शन का है। इन्सान के दर्शन का है। इसलिए, सब उसी ब्रह्म की अर्चना करते हैं। धरती माता से सभी फल प्राप्त करते हैं। अन्न लेते हैं। उस उदार माता के स्तन का सभी पान करते हैं, आत्माराम ! परन्तु हाय ! हमने न धरती माता का पुण्य देखा, न भगवान् का आशीष ! हमने सदा ही अपने विवेक का और धर्म का खून किया। हम जिस पुण्य की हत्या करते हैं, सचाई तो यह है, स्वयं अपना नाश करते हैं—अपनी हत्या करते हैं ! तुमने गेंद देखी होगी। वह गेंद जितनी जोर से दीवार पर मारी जाती है, तो वह उतनी ही तीव्रता से लौटती है। इसी तरह इस हत्याकांड की बात है। जितनी तेजी से हत्याएं की जाएँगी, विरोधियों का दमन होगा, तो वह उसी प्रकार बढ़ेंगे, विरोध का प्रचार होगा। अतएव, हत्या करना मानसिक रोग है ! पशुता है ! अपनी विषम परिस्थिति के साथ क्षणिक समझौता। यह पशुओं का काम है,—आदमियों का नही ! किन्तु आज यही है, सर्वत्र है।'

उस समय, आत्माराम देर से मौन था। वह कभी स्वामीजी की ओर देखता, कभी सिर झुकाता। वह साँस रोके बैठा था। स्वामीजी का एक-एक शब्द ध्यान से सुन रहा था। जब स्वामीजी रुक गए, तो उसने अपना साँस छोड़ा। वह आतुर और दीन भाव में बोला—'तो मैं क्या करूँ, स्वामीजी ! मैं परेशान हूँ। उलझन में हूँ। जिस विपिन

को मैं इस रास्ते से हटाना चाहता हूँ, तो मैं स्वयं उसी में पड़ा हूँ। बताइये, अब मैं किस मार्ग का पथिक बनूँ? इस दुनिया में जो कुछ दीखता है, मैं उससे भी आँख नहीं मूँद पाता।'

स्वामीजी ने जैसे आत्माराम की मनःस्थिति पहचान ली। उन्होंने शान्त हुए स्वर में कहा—'आत्माराम, यह ठीक है कि तुम जिस दुनिया में बसे हो, तुम उससे पृथक् जाकर नहीं रह सकते! लेकिन तुम इतना तो समझ सकते हो, कि तुम्हें जो कुछ पाना है, वह किसी को मारकर ही नहीं प्राप्त किया जा सकता। यह तुम्हारा एक भ्रम मात्र है। तुम रूस की बात कहोगे। फ्रांस की राज्य-क्रांति का नाम लोगे। इस विश्व में जो असंख्य युद्ध हुए, तो उन्हें भी दोहराओगे। परन्तु भाई, इन्सान के इस इतिहास में कही भी ऐसा स्थल मिला कि जब इन्सान युद्ध करके, इन्सान का खून करके शांति पा सका? चैन से बैठ सका? मैं समझता हूँ, ऐसा कहीं नहीं। एक स्थल पर भी नहीं। तुममें जो उत्तेजन है, शक्ति है, वह शत्रु को मारकर, उसका अन्त कर, क्या कभी फल सकती है? कभी भी नहीं! वह तो तुम्हारे मन की झुँझलाहट है, उन्माद है जो बरवस ही उठा है,—वह जाने के लिये!'

आत्माराम ने कहा—'इस मानव का जो अधिकार है, जब वह छिनता है, तभी यह इन्सान क्रोधी और विवेकहीन बनता है, स्वामीजी! भला यह लूट क्यों है! जब इतना है, तो यह हत्या भी है, यह प्रतिक्रिया भी है, स्वामीजी!'

यह सुनकर, स्वामीजी ने तनिक मुस्कराया। उन्होंने कहा—'आत्माराम, तुम मानव के जिस इतिहास को देखते हो, उसे बन्द कर दो। तुम अपनी ओर देखो। अपने युग की ओर देखो। उसका क्या देखना, जो बीत गया। जो इन्सान के खून से रंगकर लाल हो गया। अपनी वास्तविकता से गिर गया। वह इतिहास तो इन्सान की घृणा, लांछना और ईर्षा से भरा है। आज के मानव के पुरखों ने जो पाप

किया, वही तो आज बोलता है। उसी को दोहराया जाता है। लेकिन उन पुरखों में सभी ने ऐसा नहीं किया। बहुतों ने इस मानव का दर्शन भी देखा। उसे पाने का प्रयत्न किया। उन्होंने इन्सान के धर्म, समाज की जिस श्रृंखला को नियमित बनाया, सत्य पर आधारित किया, वह क्या आज भुला दिया गया! उससे आज भी शान्ति मिलती है। मस्तिष्क और आत्मा को खुराक मिलती है।' वह बोले—'इन्सान के रक्त से खिलवाड़ करने वाला इन्सान तुम्हारे शब्दों में वीर और पराक्रमी अवश्य होगा, परन्तु वह जिस शान्ति को खोकर अशान्त और सन्दिग्ध बन गया, वह नहीं भुलाया जा सकता। हम जिस सैनिक-जीवन की बात करते हैं, उनके प्रति आभारित बनते हैं, वह भी सैनिक की भूल नहीं, राज्य की भूल हो सकती है। महाभारत के युद्ध में इस देश का पूर्ण पतन हुआ था। महान् अशोक ने अपने जीवन में यही अनुभव किया। उसने जो अन्तिम युद्ध लड़ा, तो उसमें एक लक्ष इन्सानों का खून किया गया। फलस्वरूप, अशोक का युद्ध से—इन्सानी खून से—पेट भर गया। वह घृणायुक्त बन गया। युद्ध करने से पीछे हट गया। वह मौन बन गया। उसने समझा, युद्ध ही समस्या का सुझाव नहीं है। लक्ष्य तक पहुँचने का सुगम रास्ता नहीं।'

'आत्माराम!' क्षण भर रुककर स्वामी जी ने फिर कहा—'यह विश्व जाने कब से किसी एक और वस्तु की खोज कर रहा है। उसे प्राप्त भी किया है। महात्मा बुद्ध, ईसा उसी महान् वस्तु की सौगात लेकर इस विश्व में अवतरित हुए। महात्मा बुद्ध ने वह अमर मन्त्र इस देश के कानों में फूँका। सम्राट् अशोक उसी से प्रभावित हुआ। भगवान् बुद्ध ने साफ कहा, इस इन्सान को खून और हत्या नहीं चाहिए! प्रेम और सहानुभूति चाहिए। बुद्ध ने यहाँ तक कहा, प्रतिस्पर्धी तुम्हें मारे तो, कुचले तो, तुम अपनी विनय मत छोड़ो! तुम्हारे एक गाल पर तमाचा मारा जाये, तो दूसरा कर दो! तुम इन्सान की पाशविक मनोवृत्ति को प्रोत्साहित मत करो। उसकी आत्मा में बैठी हुई, सुप्तप्राय

हुई सत्य और शिव की प्रतिमा को उजाले में आने दो। उसे रास्ता दो। उत्साहित करो। तुम उसे अपना और जग का भला करने दो। उस इन्सान का जो अर्थ है, लक्ष्य है—उसे सारभूत करो, सफल करो। यह भी एक पुण्य है। कर्त्तव्य है। निश्चय ही, ऐसा करके, तुम उस विरोधी की मुस्कराहट देखोगे। उसे अपने चरणों में नत हुआ पाओगे। उसकी ईर्षा और जलन को शान्त करके, तुम भी शीतल बनोगे, उसे जीवन-दान दोगे। उसे सहानुभूति और प्रेम का प्रकाश दिखाओगे।'

'स्वामीजी !' एकाएक आत्माराम ने अपनी देर की रुकी हुई साँस को छोड़कर कहा—'यह सभी सुनने में मधुर है। यह देखने में भी सुन्दर है। किन्तु यह वास्तविकता पर कहाँ टिका है ? स्थिति तो और है !'

स्वामीजी हँस दिये—'अरे, पगले ! सचमुच तुम्हारी आत्मा पर काला पर्दा पड़ा है। तुम्हारे सामने तो उस वृद्ध संन्यासी ने पथ प्रशस्त किया है। महात्मा गाँधी ने सभी ओर प्रकाश किया। उनके जीवन से, कर्म से यह विशाल देश उजागर बन गया। उन्होंने झोंपड़ी और महलों को एक समान आलोकित किया।' इतना कहते हुए, वह मुसकराये और बोले—'पर तुम युवक हो। जोशीले खून से विभूषित हो। तुम इस बूढ़े स्वामी की बात कैसे मान सकते हो ! निःसन्देह, तुम अपनी ओर देखते हो। अभी तुम अपने हृदय की बात सुनते हो।' यह कहते हुए स्वामी जी उठे और बाहर चल दिये।

इस प्रकार दिन ढले, आत्माराम ने स्वामीजी से बिदा ली और घर की ओर लौट पड़ा। रास्ते में उसे लगा कि जैसे वह स्वामीजी के पास व्यर्थ आया। स्वामीजी से जो कुछ सुना, वह भी उसे विपरीत लगा। उसका लक्ष्य सपाट और स्थिर बना रहा। और आत्माराम ऐसा क्यों था ? उसके मन में क्या आया था ? सच, यह था कि इधर वह कई मास से विपिन की समस्या में उलझा था। अकाल पीड़ितों की सेवा

करने जब वह गया, तो कालिज छोड़ दिया था। तभी उसे विपिन के हिंसक दल में सम्मिलित होने का ज्ञान हुआ। और आत्माराम उससे पूर्व ही, उस मार्ग पर चढ़ गया था। किन्तु विपिन भी उस मार्ग का पथिक बने, यह आत्माराम को पसन्द नहीं आया। यद्यपि, वह पाठ स्वयं आत्माराम का दिया था। उसके क्रांतिकारी विचारों से ही विपिन प्रभावित हुआ था।

लेकिन, जब विपिन को, उस रास्ते पर दूर तक जाता हुआ पाया, तो आत्माराम का मन कुण्ठित बन गया। उसका माथा ठनक गया। तब उसने स्वयं अपने-आपको भी नये सिरे से समझना चाहा। अपने से कुछ कहना पसन्द किया। वह उस मार्ग से लौटे, तो वह विपिन को भी लौटा सकता था—अन्यथा नहीं।

इसी कारण, आत्माराम स्वामीजी तक पहुँचा। वह हिंसा और अहिंसा को समझने के लिए, एक बार फिर आतुर हुआ। लेकिन स्वामीजी ने जितना कहा, उससे, उसे सन्तोष नहीं मिला। वह जिस तरह गया था, उसी प्रकार लौट आया।

आत्माराम रास्ते में चलते-चलते पसीने से तर हो गया। परन्तु उसका ध्यान उस ओर नही था। सिर पर सूरज की धूप थी। वह आग के सदृश जल रही थी। गरम तवे के समान पृथ्वी तप रही थी। लेकिन आत्माराम बढ़ा जा रहा था। वह उस ओर से बेसुध था। तभी एक पेड़ आया। उसकी छाँह में आत्माराम खड़ा हो गया। वह बैठ गया। छाँह लगी, हवा लगी, तो उसका मन कुछ शान्त हुआ। उसने जेब से पिस्तौल निकाल लिया। वह उसे नये सिरे से समझने लगा और देखने लगा। मानो इतनी गम्भीरता से उसने कभी भी उस पिस्तौल को नहीं देखा। उसका रूप और महत्त्व समझता हुआ, वह अपने भ्रम में डूब गया।

आत्माराम ने अपनी उसी मनोदशा में लीन बनकर आकाश की ओर, और उस वृक्ष की ओर देखा। वह दूर तक फैले हुए पथ को

लक्ष्य करता हुआ बोला—'जब यह शोषण है, चीत्कार है, पाप है, मानव की इस प्रकार हत्या है, तो यह शस्त्र भी है—इसका उपयोग भी है। यह भी अमर है, अमिट है।'

यह कहते-कहते आत्माराम तीव्र हो गया। वह मानो अटूट शक्ति पाकर, अपने-आप में ही, व्यग्र बन गया। वह फिर तेज चाल से चलकर शेष रास्ता पार करने लगा।

: २७ :

घर पहुँचने पर, आत्माराम को देखते ही, रजनी ने पूछा—'दिन भर कहाँ थे ? कहाँ गये थे ?'

आत्माराम ने कह दिया—'स्वामीजी के पास। मुझे उनसे मिलना था।'

यह सुनकर भी, रजनी को जैसे सन्तोष नहीं हुआ। उसने आत्माराम की ओर देखा और तब काँपते हुए, कुछ सहमे हुए भाव में आत्माराम को सुनाते हुए कहा—'मै नहीं जानती कि तुम अपने मन में क्या लिये हो ! अब क्या सोचते हो !'

आत्माराम थका था। वह स्वतः ही परेशान था। इसलिए थकित स्वर में, उसने रजनी की ओर देखकर कहा—'क्या बात है, रजनी ! मैं क्या लिये हूँ ?'

रजनी ने पूर्ववत् आत्माराम को देखा। जैसे उसे पहचानना चाहा। खोजना चाहा। उसने तीव्र भाव में देखते हुए कहा—'अजीब बात है ! मेरी भी अजीब मुश्किल है ! वह नारी कैसी भाग्यवान है कि जो अपने पति को समझ लेती है। उसके रहस्य को जान लेती है। लेकिन एक मैं हूँ कि एक पुत्र की माँ बनकर भी, पति की गति-विधि समझने

में असमर्थ हूँ ! बताओ, ऐसे क्या मैं तुम्हें पहचान सकती हूँ,—न, कदापि नहीं !' इतना कहते हुए रजनी का स्वर अवरुद्ध बन गया। उसका साँस भी तीव्र चलने लगा। वह बोली—'मैं आज समझी कि तुम कितने रहस्य से भरे हो ! तुम जिस काम को विपिन को करने के लिए रोकना चाहते, वह स्वयं करते हो ! विपिन विवाह करे और बाल बच्चेदार बने ! पर तुम बताओ, तुमने विवाह किया, पिता बनने का अवसर पाया, तो पत्नी और पुत्र के लिए क्या किया ! इन्हें क्या दिया ? और मुझे बताओ, क्या इसीलिए विवाह किया ? तुम तो विपिन से पहले ही अपना घर बिगाड़ना चाहते हो !' निस्संदेह, रजनी काँप रही थी। उसकी आँखें भरी थीं। वे अब उसके गालों पर प्रवाहित हो चली थीं। उसने आकुल हुए, तथा तीव्र झुँझलाहट भरे स्वर में कहा—'मैं अपना बच्चा तो नहीं मार दूँगी, परन्तु मैं अपने को जरूर मार सकूँगी। मैं निश्चय ही, तुम्हारे लिए—तुम्हें अपने निश्चित रास्ते से हटाने के लिए—अपने प्राणों को होम कर दूँगी !'

किन्तु उस समय आत्माराम सचमुच ही नहीं समझा कि रजनी क्यों व्याकुल है। अधीर क्यों है। इसलिए उसने एकाएक कुछ नहीं कहा।

परन्तु रजनी ने, अपने मन में उसी चीत्कार भरे स्वर में फिर कहा—'मैं झूठ नहीं कहती ! इस प्रकार मैं नहीं ठगी जा सकती। मैंने आज तुम्हारी डायरी पढ़ ली है। देखो, वह रखी है। वह तुम्हारी कहानी कहती है। मैंने आज तुम्हारे हृदय की गहराई देखी है। तुम समझो, उसमें यह रजनी डूब जाने वाली है। और मैं तुम्हारे कहने पर क्या नहीं कर पायी ! मैं···मैं······रजनी आँचल में मुँह डालकर फफक पड़ी। वह विह्वल बन गयी।

उसी समय, अधीर बनकर, आत्माराम ने रजनी का हाथ पकड़ लिया। वह तुरन्त ही, व्यग्र बनकर बोला—'तुम चिन्ता मत करो, रजनी ! शान्त बनो ! मैं इसी हेतु स्वामीजी के पास गया था। तुम

विश्वास रखो, मैं हिंसक नहीं बनूँगा। मैं जब विपिन को इस मार्ग पर चलने से रोकता हूँ, तो स्वयं भी, आगे नहीं बढ़ूँगा! विपिन मेरी प्रेरणा पर उस पथ पर चढ़ा, तो उसे रोकने के लिए, तुमने प्रयत्न किया, मैंने किया। मैंने तुम्हारा सहारा लिया। विपिन के घर रहकर सचमुच ही, तुमने मुझे आभारित किया। मैं अपने देश में रुधिर नहीं बहाऊँगा। और अब विपिन यही चाहता है। वह अब यही करने पर तुला है। कदाचित् वह समझता है कि मैं यह नहीं जानता। इसीसे, मैं उससे स्पष्ट नहीं कहता।। वह जिस दल का सदस्य है, उसका काम प्राथमिक कार्य करना है। लेकिन जो बड़े काम हैं, उनका सम्बन्ध मेरे दल से है। क्या करूँ मैं, तीर हाथ से निकल गया! दिखता है, वह वापिस नहीं आ सकता।'

'और तुम! बताओ, तुम!' रजनी ने रूखे स्वर में कहा।

आत्माराम ने कठिनाई से कहा—'हाँ, रजनी! मैं भी दोषी हूँ। बल्कि बड़ा दोषी हूँ।' वह बोला, 'मैं देर से इस बात को लिए था। इस बार विपिन के पास जाकर तो मैं और चिन्तित बन गया। मैं उस मार्ग पर नहीं चलूँगा। मैं इस डायरी को जला दूँगा। अहिंसा, प्रेम और सहानुभूति से मैं अपने देश को स्वतन्त्र देखना पसन्द करूँगा। जो धारणा और विश्वास मैं स्वामीजी से नहीं पा सका, वह अब तुम्हारे इन आँसुओं को देखकर पा गया।' यह कहते हुए आत्माराम स्वतः ही उद्वेलित बन गया। वह अपने सिर के बालों में हाथ देकर अपने-आप कहने लगा—यह भी बुरा हुआ! यह अच्छा नहीं हुआ! सभी कुछ विपरीत हुआ! और तभी उसने घर में जाती हुई रजनी को रोककर कहा—बताओ, तुम्हें विश्वास हुआ? मेरी बात से भरोसा मिला?,

किन्तु इतना सुनकर भी, रजनी ने कुछ नहीं कहा। कदाचित् उससे नहीं कहा गया। जिस मनस्ताप से वह व्याकुल थी, उसे अभी स्वस्थ बल प्राप्त नहीं हुआ।

आत्माराम ने कहा—'मैंने आज तक तुमसे कुछ भी नहीं छुपाया।

परन्तु अपना यह उद्देश्य नहीं बताया। सोचता था, तुम नारी हो, तुम भावना-प्रधान मन रखती हो। तुम्हें कष्ट होगा। परन्तु वह कष्ट तो तुम्हें आज मिल गया। इसी हेतु तुम्हें रोना भी आ गया। सचमुच, मैं असफल रहा।' इतना कहते हुए आत्माराम कटी डाल के समान कुर्सी पर बैठ गया। वह खिड़की के बाहर देखने लगा। उस समय अंधकार आ गया था। रजनी चली गयी। आत्माराम अकेला ही, मन की गहराई में उतर गया। वह उसी में लीन होकर, जाने कहां-का-कहां खो गया।

कुछ देर बाद ही, रजनी फिर लौट आई। वह कमरे में लैम्प जलाकर लाई। आत्माराम को तटस्थ और निर्वाक् बना देख, उसकी ओर बढ़ी। उसने आत्माराम के समीप जाकर, जैसे नितान्त कातर तथा दीन बने हुए स्वर में कहा—'सुनते हो, इस रजनी में जो कुछ है, वह तुम्हारा अपना है। उसे चाहे पा लो, चाहे छोड़ दो! यह रजनी कुछ नहीं कहेगी। यह तुम्हारे चिन्तन को छोड़कर, जीवन में और कुछ नहीं चाहेगी। अब यह रजनी और कुछ नहीं मांगेगी।'

लेकिन आत्माराम मौन था। जैसे जड़ बना था। यह देखकर, रजनी ने फिर आर्द्र स्वर मे कहा—'बताओ तो, तुम्हारे मन में क्या है? अब तुम्हें क्या करना है?'

यह सुनते ही, आत्माराम ने तड़पते पंछी के समान जैसे चीत्कार किया। उसने कहा—'मैं तुम्हें कैसे बताऊँ रजनी, कि मैं किस प्रकार दुःखी हूँ। मैं सब कुछ पाकर भी सुखी नहीं हूँ। मै अशान्त हूं। इस प्रकार मैं देखता हूँ कि सभी-कुछ नष्ट हो रहा है! मेरा हरा-भरा देश उजड़ रहा है। विदेशियों ने जौंक बनकर उसका खून चूस लिया है!'

रजनी ने कहा—'इसमें भी विदेशियों का इतना दोष क्या, जितना कि देशवासियों का है! यह घर तो घर के चिराग से ही जला है!'

आत्माराम ने कहा—'निःसन्देह! शोषण का द्वार देशवासियों

ने खोला है !'

रजनी बोली—'हमारा देश बहु-पन्थों, बहु-जातियों और बहु-विचारों का समूह बना है ! कुछ ऐसे भी तत्व हैं कि जिनमें जन्म से जहरीला माद्दा भरा है। वह भी देश का संहार कर रहा है। विदेशियों ने, देर से, इस भारत की परम्परा को बदल दिया। राष्ट्र-प्रेम दिखाई नहीं देता !'

आत्माराम ने कहा—'महात्मा गांधी ने फिर जोत जगाई है। देश में आग फूँकी है !'

रजनी ने गद्गद स्वर से कहा—'वे राष्ट्र-पिता हैं ! उस अमर मानव ने एक नये सूत्र की रचना की है।'

आत्माराम का मन उस समय हल्का बन रहा था। उसे जैसे शांति मिल रही थी। उसी समय, रजनी ने अपनी धोती का आंचल उसकी आँखों पर रख दिया और उसने कहा—'कब से तुम्हारी आँखें भरी हैं। वह जैसे मेरे सामने रुकी हैं।' वह बोली—'पर मैं तो जानती हूँ, तुम्हारा मन बड़ा हल्का है। तुम्हें बात करते भी, रोना आता है। मैंने तो तुम्हें देर से समझा है।'

उसी समय, आत्माराम मुस्करा दिया। जैसे बच्चे के समान हँस दिया।

रजनी ने कहा—'मुझे बताओ ! मैं अपना सर्वस्व देकर भी तुम्हारी रक्षा करूँगी ! मैं अपना सब-कुछ लुटा दूँगी।'

यह सुनते ही, आत्माराम ने उसके सिर पर हाथ रखा। उसने अपूर्व मृदु हुए स्वर में कहा—'हां, रजनी ! मुझे तुमसे यही आशा है। मुझे तुमसे यही भरोसा है। हमारा विवाह इसी लक्ष्य पर हुआ। यह तुम्हारा आत्मा जीवन के जिस कठिन यज्ञ में लगा, वह अब तुमने समझ लिया। वह अब तुम्हारे हाथों से छू गया। तुम देवी हो ! अब तुम एक बच्चे की माँ भी हो। अपनी महत्ता को तुम पूर्ण रूप से समझती हो !' यह कहते हुए, उसने रजनी के सिर से हाथ हटा लिया।

वह बोला—'अब घर में जाओ तुम ! मेरे खाने की सुध लो। मैं भूखा हूँ।'

उस समय रजनी ने जाने कितनी देर की रुकी हुई साँस छोड़ी। वह घर में चली गयी। उसके पीछे ही, आत्माराम ने अपने-आप कहा, यह रजनी पुण्या है···गंगा है··· ··· यह मेरी पत्नी है और अपने बच्चे की माँ है। उस समय आत्माराम प्रसन्न था और किसी भी साधारण व्यक्ति के समान अपने सामने के जगत में मिल जाने के लिए आतुर था। उस समय वह सर्व प्रथम एक व्यक्ति के रूप मे सफल बनने की कामना लिए था। उसी योग की साधना में, उस क्षण उसका मन लगा था।

: २८ :

एक दिन की बात है कि आत्माराम संन्ध्या के झुटपुटे में जब जंगल से घूमकर लौटा, तो तभी, एक ताँगा स्टेशन से उसके द्वार पर आया। उसमें विपिन को देखते ही, आत्माराम हर्ष से पुलकित हो उठा। नौकर ने ताँगे से सामान उतार लिया। विपिन को लेकर आत्माराम घर में गया। हाथ जोड़कर विपिन ने आत्माराम की माँ और पत्नी को नमस्ते किया।

वहाँ से फिर दोनों कमरे में लौट गये। विपिन का बिस्तरा, सूट-केस और अटैची देखकर आत्माराम हँस दिया—'घर में आये और इतना समान ले आये ! बिस्तरे की क्या आवश्यकता थी ?'

किन्तु विपिन ने बात सुनकर, उत्तर नहीं दिया। वह केवल मुस्करा-कर रह गया। उसी समय, रजनी भी वहाँ आ गयी। वह विपिन को लक्ष्य करके बोली—'मुँह-हाथ धो डालो। खाना तैयार है।'

विपिन ने कहा—'मुँह-हाथ सब ठीक हैं। केवल खाना चाहिए। पेट भूखा है। दो रोटी माँगता हूँ।'

रजनी लौट गयी। नौकर के हाथ उसने दो थालियाँ भेज दीं। माँ वहाँ आकर बैठ गयी।

विपिन ने कहा—'तुम तो शहर आती नहीं। एक बार तो मेरी फूआ से मिल आओ।'

माँ ने कहा—'कहाँ जाऊँ भैया ! इस घर से छूट नहीं।'

विपिन हँस दिया—'ममता-मोह में फँसी हो ! आत्माराम के लिए रुपया जोड़ रही हो।'

इतना सुनकर, माँ स्वयं हँस पड़ी। अब उसके कई दाँत टूट गये थे, इसलिए हँसते हुए भी, वह अजीब-सी लगती थी। बोली—'इस घर में रुपया नहीं रह सकता, भैया ! इतना आता भी नहीं ! बँधे-बँधाये पैसे आते हैं और खर्च हो जाते हैं।'

उसी समय नौकर, कुमुद को ले आया। माँ ने कहा—'अरे कुमुद, देख, तेरे चाचा आये हैं। पूछ तो, तेरे लिये क्या लाये हैं ?'

विपिन ने हँसकर कहा—'भतीजा अभी कुछ नही खाता। इसलिए लाने का प्रश्न ही नहीं उठता।'

माँ ने कहा—'वाह ! भतीजा नहीं खाता, तो और तो खाते हैं ! इसकी माँ खाती, दादी खाती !'

उसी समय रजनी भी वहाँ आ गयी। उसने बात सुनी, तो विपिन के पक्ष की पुष्टि कर दी।

आत्माराम हँस दिया—'जान बची, लाखों पाये ! भाभी ने पक्ष लिया, तो विपिन को सहारा मिल गया।'

भोजन का कार्य समाप्त हुआ। माँ और रजनी घर में चली गयी। उसी समय विपिन ने आत्माराम को सुनाया—'तुम सब आये, तो मेरा घर पर मन नहीं लगा।'

आत्माराम ने कहा—'यह तुमने अच्छा किया। तुम्हारे आने से मुझे

भी सहारा मिल गया। यहाँ गाँव में मेरा भी मन नहीं लगता। शहर में रहकर आदमी फिर एकाएक गाँव के जीवन में नहीं मिल पाता !'

विपिन ने कहा—'शहर के जीवन में विविधताएँ हैं। मन लगाने के साधन हैं। भला यहाँ क्या है !'

आत्माराम ने कहा—'अंग्रेजों ने हमारे गाँव उजाड़ दिये। शहर आबाद कर दिये। शहर के जीवन में रहकर ऐसा लगता है कि आदमी विश्व भर से बँधा है। किन्तु गाँव में रहकर, केवल इस छोटी-सी सीमा में रहकर ही, अपना विश्व मानता है। यहाँ कुछ नहीं दिखायी देता। संसार के समाचारों से इन गाँवों का कोई सम्बन्ध नहीं रहता। गाँव के आदमी का जीवन एकरस है। नीरस है। एकाकी है। लगता है, दुनिया के जीवन से दूर, कोलाहल, वैभव यहाँ नहीं आ सकता ! गाँव की जिन्दगी का रूप, शहरी जीवन के साथ नहीं मिल सकता !'

विपिन ने कहा—'गाँव उजड़ गये ! खण्डहर बना दिये ! भारत की आत्मा पर इतनी चोट पड़ी कि शरीर के हरे-भरे भाग सभी जर्जर बन गये ! मानो सभी कंकाल ! सभी जीवन के मोहताज !' यह कहते हुए, विपिन ने दूर क्षितिज की ओर देखा। उसने कुछ सन्तोष और सुख का अनुभव किया। उसी भावना से पूरित बनकर, वह आत्माराम की ओर देखकर बोला—'बड़े-बड़े नगर आबाद करना ही जैसे आज के युग की परम्परा है। वैज्ञानिक युग की यह भी एक माँग है। किन्तु इतनी बड़ी आबादी का एक स्थान पर रहना, कदापि उचित नहीं। मुझे गाँव में आकर शांति मिलती है। मन को सन्तोष मिलता है। सचमुच यहाँ काँव-काँव नहीं। कर्ण-कटु कोलाहल नहीं।'

आत्माराम ने जैसे दर्दपूर्ण स्वर में कहा—'कोलाहल नहीं तो, भायँ-भायँ हैं, दरिद्रता है ! भूख है और पीड़ा है ! पैसा नहीं, तो यहाँ मन को उचाट देने वाला सन्नाटा है !'

रात काफी जा चुकी थी। दोनों मित्र अपने-अपने बिस्तर पर पड़े थे। उसी समय उनके लिए दूध आया। दूध पीकर आत्माराम सो गया।

विपिन जागता रहा। वह देर में सो पाया।

किन्तु जब प्रातःकाल में वे दोनों जंगल से घूम कर लौटे, तो तभी, कमरे में स्वामीजी बैठे पाये। आत्माराम की माँ पास बैठी थी। वह कुछ कह रही थी। स्वामीजी को देखकर आत्माराम और विपिन ने उन्हें प्रणाम किया। स्वामीजी ने विपिन का कुशल-समाचार पूछा।

आत्माराम की ओर देखकर माँ ने कहा—'गुर्जर ताल्लुका में प्रजा और राज्य का झगड़ा चला है। स्वामीजी ने तुझे वहीं ले जाने का विचार किया है।'

स्वामीजी ने कहा—'यह मेरे जीवन का प्रथम प्रयास है, आत्माराम! शायद अन्तिम भी। क्योंकि अब मैं बूढ़ा भी हो गया। मौत के समीप पहुँच गया। यदि तुम उसमें सहायक बनो, तो मेरा यह व्रत पूर्ण हो सकता है। मुझे प्रजा का पक्ष लेकर राज्य से लड़ना है। अहिंसा के द्वारा लड़ना है। उसी निमित्त मैंने तुम्हें चुना है। विश्वस्त साथी चाहिए। यदि यह प्रयत्न सफल रहा, तो फिर एकदेशीय युद्ध में भी योग दिया जा सकेगा।'

उसी समय स्वामीजी ने फिर कहा—'उस दिन तुम मेरे पास आये—अपने मन की एक बात लेकर! उसी को लक्ष्य करके मैंने यह पसन्द किया कि तुम पहले अहिंसात्मक युद्ध के सैनिक बनो। आवश्यकता पड़ने पर आदमी तलवार भी उठा सकता है। किन्तु इतनी सामर्थ्य पाना भी क्या आसान है!'

स्वामीजी ने देखा कि तभी रजनी वहाँ आई। वह स्वामीजी के चरण स्पर्श करके वहीं बैठ गयी। उस समय आत्माराम की माँ के मन में अजीब प्रकार बेचैनी थी। वह कभी आत्माराम को देखती, कभी स्वामीजी को। निःसन्देह, वह किसी दुविधा में पड़ी थी। और आत्माराम मौन था। वह स्वामीजी की बात सुनने के बाद, जैसे किसी विचार में पड़ गया। किन्तु जब देर तक वह चुपचाप बैठा रहा, तो विपिन ने स्वामीजी को देखकर कहा—'स्वामीजी, इस अहिंसा के

प्रयोग पर मैं आज तक भरोसा नहीं कर सका। इस शक्ति को नहीं समझ सका !'

स्वामीजी ने मुस्कराकर कहा—'तुम जिस वस्तु के आकांक्षी हो और उसे अपनी कहते हो, तो भला विपक्षी को मार कर ही, उसे क्यों पाना चाहते हो ! तुम प्रेम से, तुम अपने आत्म-बलिदान से भी उसे पा सकते हो। तुम सत्याग्रह करके अहिंसात्मक ढंग से प्राप्त कर सकते हो, भाई !'

विपिन ने तुरन्त कहा—'यह सब मस्तिष्क में नहीं आता। यह व्यवहारिक भी नहीं लगता। कदाचित् आज तक तो यह नहीं निभा,' वह बोला—'स्वामीजी, युद्ध तो मानव की प्रवृत्ति है। उसकी शुभेच्छा है। मरना और मारना ही, जैसे प्रगतिवाद की एक बड़ी शृङ्खला है,—आधारभूत है। युद्ध मानव का स्वभाव है।' इतना कहते हुए उसने सांस भरी और कहा—'स्वामीजी, मुझे नहीं सूझता कि इस भौतिक-जगत् में यह कैसे बदला जायगा ! जो वस्तु छीनी गयी है और लूटी गयी है, और वह है हमारी; तब बताइये, वह क्या हाथ जोड़कर प्राप्त की जा सकती है ? न, कदापि नहीं ! निश्चय ही, यह तो मनोवृत्तियों का संघर्ष है, स्वामीजी ! जिसका सम्बन्ध स्वार्थ से है। शक्ति से है। इस शक्ति-सन्तुलन की प्रतिस्पर्धा में जो विजयी होता है, वही सफल बनता है। आज विज्ञान का युग है। उसके बड़े-बड़े चमत्कार हमने देखे हैं। कुछ देखे जाते हैं। उन सबका प्रयोग केवल युद्ध के लिए है। व्यक्ति, समूह और देश सभी युद्ध-लिप्त हैं···युद्ध के प्यासे हैं ! प्रश्न इन्सान की रोटी का है। वह जब छीनी जाती है, तो आदमी निरुपाय बन कर भी कसकता है। उसमें टीस उठती है। इसीलिए, अहिंसा से हम मीठी और सरल कल्पना के अतिरिक्त और कुछ नहीं पाते। और स्वार्थ तथा दम्भ हमारे सामने हैं। अहिंसा को उसी के सामने खड़ा होना पड़ता है। बताइए, वह कैसे सफल हो ? दम्भ कैसे पराजित हो ? निश्चय ही, वह आपकी अहिंसा को देखकर मुस्कराता है और उपहास करता है ! आज जेलें भरी हैं। महात्मा गांधी

की वाणी देश के कोने-कोने में गूँज रही है। लोगों की जमीनें छीनी जा रही हैं। रोजगार नष्ट किए जा रहे हैं। बताइए, इस प्रकार हम भेड़िये के मुँह से मेमने की रक्षा कर सकते हैं!' यह कहते हुए, विपिन का मुँह लाल बन गया। वह काँपने लगा।

उस समय स्वामीजी एकाग्र मन से विपिन की बात सुन रहे थे। जब विपिन अपनी बात कह चुका, तो उन्होंने उसी को लक्ष्य किया और मुस्कराते हुए कहा—'विपिन बाबू, तुम देखते तो हो कि जो निस्सहाय और अपंग हैं, वह कैसे रोटी पायें! वह अपने शत्रु की शक्ति पर किस प्रकार विजय प्राप्त करे! जब ऐसी अवस्था है, तब तो और भी आवश्यक हो जाता है कि हम अहिंसात्मक बनें। मैं इस प्रकार की परिपाटी का कायल नहीं हूँ। मैं अहिंसात्मक युद्ध को बहुत महत्व देता हूँ। हिंसा से बड़ा मानता हूँ। इसे तो मैं एक यौगिक क्रिया समझता हूँ। इसलिए भाई, आत्म-त्याग के द्वारा तुम शत्रु की सहानुभूति पा सको, यही सबसे श्रेष्ठ है। यही स्थिर अवलम्ब है। क्योंकि शत्रु तो प्रबल है। शस्त्र तथा समर-सज्जा से सुशोभित है। उसका सामना तुम नहीं कर सकोगे। तब यही मार्ग अपनाओ। जागृति पैदा करो। सहानुभुति प्राप्त करो। तुम शत्रु को बता दो, हम तुम्हारे भाई हैं। अपना अधिकार माँगते हैं। जीने का सहारा चाहते हैं। तुम भी जीओ, हम भी जीयें, इसी उद्देश्य को लेकर, हम अपने सम्मान की रक्षा करने पर कटिबद्ध हुए हैं। निश्चय है कि तुम सफल बनोगे। शत्रु को झुका सकोगे।'

इतना सुनते ही, विपिन ने कहा—'शायद!' और उसने वहाँ पर उपस्थित सभी की ओर देखकर ईर्षा भाव में मुस्करा दिया।

किन्तु स्वामीजी ने तुरन्त ही फिर कहा—'शायद नहीं, अवश्य!'

विपिन कुछ हँस दिया-हां, हां, स्वामीजी! आपका कथन सत्य हो!'

स्वामीजी ने कहा—'नहीं, तुम्हें अभी शंका है। मेरी बात से तुम्हारा मन सन्तुष्ट नहीं हुआ है।'

विपिन खड़ा हो गया । वह बोला—'ऐसी सन्तुष्टि सुगमता से नहीं प्राप्त होती, स्वामीजी ! सत्य है, मैं सहमत नहीं हुआ । साम्राज्यवाद के जहरीले दाँतों को तोड़ने के लिए तेज हथियार की आवश्यकता है । और वह आपके पास कहाँ है ?'

स्वामी जी ने कहा—'वह है । वही तो भारतीय संस्कृति की देन है ।'

विपिन इतना सुनकर जैसे खिसिया गया । उसे क्रोध आगया । उसने छूटते ही कहा—'स्वामीजी, इस संस्कृति के नारे ने हमसे बहुत कुछ छीना है । हमें भूखा और नंगा भी कर दिया है । अजीब बात है कि जिस देश के बच्चे और नारियाँ भी तलवार चलाते हों, वही गुलाम बन गया । चन्द मुट्ठी-भर मुसलमानों ने इसे दास बना दिया । फिर अंग्रेजों ने इस देश के मानव को, इसकी संस्कृति को पैरों तले रोंद दिया !' इतना कहते हुए, विपिन का मुँह अतिशय सुर्ख पड गया । क्रोध उसकी आँखों में उतर आया । वह कहने लगा—'इस देश के वासी सदा आपस में लड़ते रहे । शराब, अफीम और मदक के नशे करते रहे । यहाँ के ब्राह्मण धर्म और संस्कृति का नारा लगाते रहे । राज्य-महलों में जाकर सोने-चाँदी के पात्रों मे चौबीस या छत्तीस प्रकार के भोजन करते रहे । जनता सड़ने लगी । अविवेकी बनने लगी । राजा लोग नशे में शराबोर रहे । विदेशी आए, तो उनके समक्ष सिर झुकाकर खड़े हो गए । धर्म-अधर्म के नारे लगाने लगे । गौरी आया तो उसने सारनाथ में बैठे साठ हजार ब्राह्मणों को नंगी तलवार दिखाकर डरा दिया । मन्दिर लूट लिया । प्रतिमा को अपने पैरों तले कुचल दिया । बताइए, हमने कभी संस्कृति को समझा ! आप कहेंगे कि धर्म के लिए यहाँ नागरिकों ने, बच्चों ने बलिदान किया ! पर मेरा तो मत यह है कि इतने बड़े और महान् देश में यदि एक-दो बलिदान हुए, तो उससे क्या हुआ··· आटे में नमक के बराबर भी नहीं हुआ ! देश तो सोता रहा । खुर्राटे

भरता रहा। पड़ौसी लुटता रहा, पिटता रहा, तो दूसरा देखता रहा !···स्वामीजी, हमारा देश कभी भी एक नहीं रहा। एक राष्ट्र नहीं बना !' यह कहते हुए वह कमरे से बाहर चला गया।

इस प्रकार, कुछ देर के लिए कमरे में सन्नाटा छा गया। विपिन जिस प्रकार बोला, उसने जिस तरह अपने विषय का प्रतिपादन किया, उसका प्रभाव सबसे अधिक माँ और रजनी पर पड़ा। माँ अभी तक विपिन को केवल बातूनी मानती थी। परन्तु उसे लगा कि नहीं, विपिन के पास अपना ज्ञान है। अपनी बात कहने का साहस है। रजनी भी उस समय मौन और गम्भीर बनी थी। विपिन कमरे के बाहर चला गया, परन्तु वह उसे तब भी अपने सामने खड़ा हुआ पाती थी।

उसी क्षण स्वामीजी ने कमरे की समाधि को भंग किया। उन्होंने आत्माराम से कहा—'तुम बताओ, अपनी बात ? तुम्हारा क्या मत है ?'

आत्माराम इतना सुनकर, जैसे चौंक गया। उसने माँ और रजनी की ओर देखा। उसने कहा—'मैं अपनी बात नहीं देखता, स्वामीजी ! आपका आदेश मान लूँगा। कहेंगे तो साथ चल दूँगा।'

'नहीं, नहीं, आत्माराम ! यह तो जीवन के परम लक्ष्य की बात है। मैं तुम्हें बाध्य नहीं करूँगा। यह युद्ध है, इसके लिए मैं तुम्हें निमंत्रण दे सकूँगा, परन्तु तुम्हें विचलित नहीं करूँगा।'

उसी समय विपिन फिर लौट आया। उसने स्वामीजी की बात को सुन लिया। तदन्तर ही, उसने आत्माराम से कहा—'तो तुम जाओगे आत्माराम ! जो शत्रु है, निर्धन का खून चूसकर मदान्ध भेड़िया बन गया है, तुम खाली हाथ ही, उसके सामने जाओगे ! उससे भीख माँगोगे और कहोगे,—'तुम हमारी रोटियाँ लौटा दो···हमारे अधिकार वापिस कर दो !' यह कहते हुए, विपिन ने अपनी आँखें और स्वर को कठोर करके कहा—'अधिकार और पेट की रोटियाँ लूटी गयी हैं। वह निर्बलों से छीनी गयी हैं। वह ऐसे नहीं मिलेंगी। इस तरह गिड़गिड़ा कर, कभी भी प्राप्त नहीं होंगी, आत्माराम !'

आत्माराम ने कहा—'गरम लोहे को ठण्डा लोहा काटता है !'

विपिन जैसे स्तब्ध हो गया। वह फिर अपनी बात पर अड़ गया—'छिः, शत्रु के समक्ष सिर झुकाना कायरपन है। दुर्बलता है, आत्माराम !'

'विपिन,—बेटा !' एकाएक अपना मौन तोड़कर माँ ने कहा—'क्रोध में मत आओ ! तुम काँप रहे हो ! तुम !'

विपिन ने कहा—'यह व्यर्थ है, माँ ! यह जीवन को जलाना है ! इस प्रकार अपनी मौत को अपने-आप बुलाना है। मैं यह नहीं देख सकता। मैं यह नहीं मान सकता। और यह आत्मा—ओह ! निरा जड़। पत्थर !

माँ ने उसके समीप जाकर, विपिन के सिर पर हाथ रखा। उसने कहा—'विपिनचन्द्र, तुम देखते हो, स्वामीजी आत्मा को माँगने आए हैं। इसे जाने दो। इसे स्वामीजी के निर्देश पर अपने मार्ग पर बढ़ने दो।'

किन्तु विपिन ने उपेक्षित बनकर कहा—'तुम जानो, माँ ! तुम जानो। आत्मा तुम्हारा है। यह तुम्हारा बेटा है !'

उसी समय, आत्माराम ने कहा—'मैं प्रस्तुत हूँ, स्वामीजी !'

'तुम बहू से पूछ लो। माँ से और विपिन बाबू से भी राय ले लो !' स्वामी जी ने कहा।

'नहीं, स्वामीजी ! मुझे किसी से नहीं पूछना है। चलिए !'

'आत्मा की माँ !' एकाएक स्वामीजी ने कहा।

'स्वामीजी !' माँ ने उनकी ओर देखा।

'तुम आत्माराम को सहर्ष भेज रही हो, ना ? और बहू तुम भी ?' स्वामीजी ने उन दोनों नारियों को पुनः टंकोरा।

माँ ने कहा—'हां, स्वामीजी ! हमारी सम्मति है।'

'अच्छा, अच्छा ! आओ, आत्माराम ! तुम चलो !'

आत्माराम ने झोले में अपनी पुस्तकें रख लीं। कन्धे पर कम्बल

डाल लिया। उसने माँ के चरण छू लिए। तभी रजनी की ओर देखा। रजनी ने कहा—'तुम जाओ। पत्र देना। पहले के समान मौन न बन जाना।'

चलते हुए, वहाँ से विदा लेते हुए, आत्माराम ने कहा—'माँ, विपिन को अभी न जाने देना। इसका ध्यान रखना।'

आत्माराम स्वामीजी के साथ विदा हो गया। वह हँसता और मुस्कराता हुआ चला गया।

: २९ :

जिस गुर्जर ताल्लुका में आत्माराम पहुँचा, उससे वह देर से परिचित था। फलस्वरूप, वह जहाँ जाता, वहाँ के वासियों द्वारा उसका अपूर्व स्वागत किया जाता। स्वामीजी ने आत्माराम को सत्याग्रह का नायक घोषित कर दिया था। वह ग्रामीण जनता, जो सदियों से शासन के कठोर अंकुश से चीख रही थी और कराह रही थी, उस अहिंसात्मक युद्ध की घोषणा सुनते ही, अपने को अर्पित करने के लिये प्रस्तुत हो गयी। आत्माराम जिस गाँव में भाषण देता, तो वहाँ का समाज एकांत मन से उसकी वाणी को सुनता। वह समाज अपने वेदना-युक्त जीवन का छाया-चित्र देखकर काँप उठता। शासक की अहमन्यता और हृदय-हीनता को ठंडी साँसें भरकर अनुभव करता। वह भाषण उन नसों में आग फूँक देता। आत्माराम जब से उस ताल्लुका में पहुँचा, तो एक दिन भी, शाँति और सुख से नहीं बैठ पाया। वह रात-दिन एक गाँव से दूसरे गाँव जाता। भाषण देता। जिसका परिणाम भी आशा-युक्त और अनुकूल हुआ। गाँव-गाँव से स्वतन्त्रता और अपनी माँग को पूरा करने का तुमुल घोष गूँजता। वह राज्य-प्रासाद तक जाकर उसकी

दीवारों से टकराता। सत्याग्रहियों को पकड़ने और जेल भेजने का संकेत राज्य की ओर से मिल गया था। सत्याग्रह की आवाज दवाने का प्रयत्न भी तीव्रता तथा हृदयहीनता के साथ पुलिस और फौज द्वारा आरम्भ हो गया। नित्य, सैंकड़ों सत्याग्रही पकड़े जाते और सजा देकर जेल भेज दिये जाते!

यह सब था, जो बरबस ही, आत्माराम को जाने किस प्रेरणा से भरकर एक अज्ञात और दूर पथ की ओर अग्रसर कर रहा था। वह जैसे अपने उद्देश्य को पाने के लिए ठीक पथ पर चढ़ गया था। किन्तु उसके मन में शान्ति तब भी नहीं थी। वह उद्भ्रान्त पथिक के समान बना था। वह बरबस ही, उस अहिंसात्मक-युद्ध का नायक बनकर, जैसे मानस के अन्तर में ही छटपटा उठा। लोगों को पिटते और गोलियाँ खाते हुए, उसे अच्छा नही लग रहा था। यही उसके मन का असन्तोष था। जो उसे नित-नित घायल बना रहा था।

लगभग एक मास से ऊपर हो गया कि आत्माराम न पकड़ा गया, न राज्य ने ऐसा विचार किया। और आत्माराम नित-नित तेजोमय, बलमय बनकर, उस सत्याग्रह की सेना का नेतृत्व कर रहा था। वह सफल बन रहा था।

इसी प्रसंग में, एक दिन आत्माराम स्वामीजी से मिला। जिस स्थान पर दोनों की भेट हुई, वह सत्याग्रह का मुख्य कैम्प था। संन्ध्या समय ईश्वर प्रार्थना हुई, तो कैम्प में सत्याग्राहियों के अतिरिक्त अन्य नर-नारी समाज भी एकत्र हुआ। उस अवसर पर सभी ने स्वामी जी का प्रवचन सुना। स्वामीजी ने सत्याग्रह की स्थिति को स्पष्ट करते हुए कहा—'मैं अनुभव करता हूँ कि इस सत्याग्रह ने राज्य के अधिकारियों को सावधान कर दिया है। जहाँ-जहाँ निहत्थे सत्याग्रहियों पर गोलियाँ चलीं, लाठियों के प्रहार हुए, वहाँ काम नहीं रुका। राज्य ने इस युद्ध की गम्भीरता को हल्का भी नहीं समझा। इसलिए राज्य भयभीत है। वह बड़ी संख्या में लोगों को पकड़कर जेल भेज रहा है।

राज्य के अधिकारी जागरूक हैं ।'

स्वामी जी कहने लगे—'मैं यह भी अनुभव करता हूँ कि इस सत्याग्रह के युद्ध में भाग लेने वाले व्यक्ति अभी अपनी स्थिति से सचेत नहीं बने ! वे इस आन्दोलन का दार्शनिक तत्त्व नहीं समझे। उन्हें अहिंसा पर आज भी कम भरोसा है। इसकी मनोवैज्ञानिकता उनकी दृष्टि में उपादेय नहीं है। ऐसे सहयोगी इस युद्ध के लिये अवश्य ही अहितकर सिद्ध होंगे। युद्ध चल पड़ा है। बिगुल बज रहा है। ऐसी अवस्था में सभी को अपना निर्णय स्थिर कर लेना चाहिए। जो ऐसा नहीं कर सकते, उन्हें इस क्षेत्र से पृथक् हो जाना चाहिए।'

स्वामीजी ने कहा—'यह युद्ध ईश्वरीय प्रेरणा का फल है। मैंने जो-कुछ आपके समक्ष रखा, भला उसमें मेरा क्या है ! मैंने भी अपनी आत्मा की वाणी को सुना। अतएव, मेरा विश्वास है, आप अपने संकल्प में अवश्य सफल बनेंगे। हम जिस अखिल विश्व की ज्योति के प्रकाश में अपना पथ देख रहे हैं, वह हमारा बड़ा सम्बल है। एकमात्र आधार है। इसलिए, आप यह भी भरोसा रखें कि हिंसक शत्रु जिस दिन भी अपनी समस्त दानवी शक्ति आप पर लगा देगा और आपको तब भी तटस्थ और मुस्कराता पायेगा, तो वह झुक जायगा। उसका पौरुष गिर जायगा। वह आपका अधिकार सादर तथा सानुमोदित होकर वापिस कर देगा।'

प्रार्थना-स्थल से उठकर, स्वामीजी आत्माराम को साथ लिये एक निर्जन स्थान पर जा बैठे। उसी समय उन्होंने आत्माराम की ओर देखा। उन्होंने मुस्कराकर कहा—'मैं देखता हूँ कि इस युद्ध का नायक स्वयं अपने कार्य की सफलता पर भरोसा नहीं रखता। तुम्हें अब भी विश्वास नहीं, आत्माराम ?'

आत्माराम ने बात सुन ली और उत्तर में न कुछ कहा, न सिर उठाया।

किन्तु स्वामी जी ने फिर कहा—'इस प्रकार तो निश्चय ही, यह

यश नष्ट हो जायगा। युद्ध सफल नहीं बनेगा। तुम्हें मैंने अपना विश्वासपात्र समझा था। मुझे तुम पर भरोसा था।'

आत्माराम ने कहा—'तो क्या कोई भूल हुई, स्वामीजी !'

स्वामीजी बोले—'नहीं, तुमने भूल नहीं की ! किन्तु तुम्हारे मन का मन्थन मैं देखता हूँ, अनुभव करता हूँ। वैसे, मैं यह देखकर सन्तुष्ट हूँ कि तुमने मेरा सच्चा प्रतिनिधित्व किया। तुमने इस प्रान्त को जगाया। अपने अभूतपूर्व विचारों का प्रचार किया। लेकिन तुम स्वयं हिलोरें खा रहे हो। मैं प्रायः शंकित रहता हूँ कि कहीं तुम अहिंसात्मक युद्ध से दूर तो नहीं जा रहे ! और जानते तो हो, मैंने अपना सभी कुछ तुम्हें दिया है। मैंने तुम्हें पाया है।'

वह कहने लगे—'आत्माराम, हिंसा का पुजारी आँख मूँदकर मर जायगा। अपनी बलि दे देगा। मैं इस भावना पर श्रद्धा रखता हूँ। परन्तु हमारे समाज को जिस जागृति की आवश्यकता है, वह कहाँ मिलेगी ! ऐसे नहीं ! वह वस्तु तो अहिंसात्मक ढंग से मिलेगी। हमको स्थिरता चाहिए ! अपनी सन्ततियों के लिये शान्ति चाहिए। हमारे पुरखे जो कुछ कर गये, वही तो आज भोगना पड़ा है। आदमी को मरना पड़ा है। जीवन खोजना पड़ा है। दो व्यक्ति लड़े, थके और मर गये, भला इससे क्या मिला ! उन्होंने क्या पाया ! हिंसक विजेता भी हारता है। हम जिस गोष्ठी के प्रतिनिधि हैं, उसके लिये हिंसा उपादेय नहीं, सार्थक भी नहीं। हम इस संसार में विश्व-बन्धुत्व का नाता जोड़ने आये थे, परन्तु जोड़े हुए को ही, हम काटने लगे ! उसे कुतरते हुए ही अपना जीवन गँवा बैठे। हम अमृत के स्थान पर विषपान करने लगे। देखता हूँ कि तुम अब भी अपने हृदय को उदार नही बना पाये ! तुम शत्रु को मित्र नहीं समझ पाये ! ऐसे तो तुम्हारी साधना भ्रष्ट हो जायगी। तुम्हारी यह जिन्दगी तिनके के समान पानी के स्तर पर तैर जायगी !'

स्वामीजी ने कहा—'आत्माराम, हिंसा के द्वारा जाने कितने

सम्राट् भिक्षुक बने और कितने भिक्षुक सम्राट् ! निःसन्देह, मैं ऐसे युद्ध का समर्थक नहीं हूँ। तुमने तो कई भाषाओं का अध्ययन किया है। तुमने तो पढ़ा, नैपोलियन वीर था। हिटलर वीर योद्धा था। मगर वे सब तो हवा की तेजी के समान आये और उसी प्रकार लौट गये ! वे लोप हो गये। महान् सिकन्दर ने भी इस विश्व का मुँह काला कर दिया। मानव का रक्त, मांस, रास्तों पर प्रवाहित किया। इन्सान की लोथों के अम्बार लगा दिये। वे खूँखार भेड़िये इन्सान के रक्त के प्यासे थे। मांस के भूखे थे !' यह कहते हुए स्वामीजी का स्वर काँपा। वह लरजने लगा। उनसे फिर नहीं बोला गया। स्वर अवरुद्ध हो गया।

उस अवस्था में ही, स्वामीजी ने जब कुछ क्षण मौन रखा, तो तभी आत्माराम की ओर देखकर कहा—'तुम समझ लो कि मैं तुम्हारी इच्छित आकांक्षा छीन रहा हूँ। उसे दबा रहा हूँ। मैं तुम्हें विश्वास दिलाता हूँ कि जिस दिन मैं अहिंसा को असमर्थ पाऊँगा, तो स्वयं हाथ में तलवार लेकर लड़ूँगा। मैं तब इसी प्रकार मर जाऊँगा। लेकिन ऐसी कल्पना मैं अभी नहीं करता। मैं अभी घूँसा मारने के बदले घूँसा मारने की इच्छा नहीं रखता। मैंने अभी जिस नैपोलियन की बात कही, उसकी भावना को मैंने कभी भी स्वीकार नहीं किया। वह समस्त विश्व को दास बनाने की कल्पना करता था। वह समस्त मानव को अपने पैरों तले रौंदना पसन्द करता था। यही उसका पाप था। वह मानव होकर भी, हीन था। वह भेड़िया था। वह खूँखार था !'

स्वामीजी ने आत्माराम के कन्धे पर हाथ रखा। उन्होंने मुस्कराया—'आत्माराम, तुम युवक हो। तुममें जो कुछ है, वह स्वाभाविक है। वह प्रकृति की देन है। तुम उसी के द्वारा सँजोये गये हो। तुम जो सोचते हो, उसे अभी रोक लो। यह नया अनुभव प्राप्त करो। कल तुम्हें अपने साथियों सहित, फौज के सामने जाना है। उस फौज

के हाथ में बन्दूक होगी। तुम्हें कल उसी का सामना करना है। तुम्हें कल सत्याग्रह करना है। उनकी गोलियों को तुम्हें अपनी छाती पर लेना होगा। नायक हो न, तुम! इस युद्ध के सरदार! इसकी आबरू तुम्हारे हाथ है। तुम जिस सत्य पथ पर हो, उसका महत्व भी तुम्हें देखना है। न्याय और अन्याय तोले जायेंगे। एक ओर फौज की गोलियाँ, दूसरी ओर नंगी छातियाँ। तुमने अभी तक ऐसे करुण-दृश्य की कल्पना ही की, कल सार्थक भी करना। तुम महान पुण्य के भागीदार बनना!' वह कहते हुए, स्वामीजी ने आत्माराम को छोड़ दिया। वह अपने कैम्प में चला गया। जब वह बिस्तर पर पड़ा, तो तभी, उसने अपने झोले से पिस्तौल निकाला। उसकी गोलियों का घेरा देखा। उसका हृदय कषैली और दुर्गम भावना से भर गया। उसी क्षण, उसने विशुद्ध मर्म भरे भाव में अपने को देखा—वह अपने-आप में समाहृत हो गया……!

: ३० :

आत्माराम देर तक स्वामीजी की बात मे उलझा रहा। उसे यह भी स्मरण हो आया कि एक दिन स्वामीजी ने उसे सम्बोधित करते हुए कहा था कि 'यदि तुम्हें मेरे इन विचारों से सहमति न हो, तो वापिस लौट जाओ। मै इस युद्ध का नायक बनूँगा। मैं राज्य की गोली अपनी छाती पर लूँगा। तुम अपनी माँ के इकलौते हो, तो हट जाओ, भाई! विचार न मिलते हों, तो रस में विष मत घोलो। हिंसात्मक विचारों को इस स्थल पर अपने मन में मत लो! किन्तु उस समय भी आत्माराम ने स्वामीजी को विश्वास दिलाया कि वह न घर जायेगा, न यहाँ हिंसा के विचारों को ग्रहण करेगा।

परन्तु उस रात के समय, अपने बिस्तर पर पड़े हुए, आत्माराम के मन में आ रहा था कि सचमुच वह गोली खायेगा······यों, चुपचाप ही मर जायगा ! यह निश्चित था कि वह अपना बढ़ा हुआ कदम पीछे नहीं हटा सकता। वह सत्याग्रह करेगा ! गोली चली, तो मरेगा !

अपने मन की उस स्थिति में डूबे हुए ही, आत्माराम ने देखा कि सचमुच, वह इतने समय में ही, जनता का विश्वास पा गया। प्रेम पा गया। उसे अनायास ही, जनता-जनार्दन के चरणों में अर्पित होने का अवसर मिल गया।

किन्तु उसी समय, आत्माराम को फिर अपने मन में उमस उठती दिखाई दी। उसने खुले स्वर में कहा—ऐसे स्वतन्त्रता नहीं मिलेगी ! जनता मर जायगी ! पत्थर पर सिर मारना सुगम है। अधिकार कोई देता नहीं, लिया जाता है। छीना जाता है। जिस हिंसक का इन्सान के रक्त-मांस से खिलवाड़ करना ही स्वभाव है, वह क्या यों झुकेगा ! इस प्रकार जनता के अधिकार देगा ! न, कदापि नहीं ! हर्गिज नहीं ! वह तो इस अहिंसक युद्ध को देखकर मुस्कराता है, हँसता है और खिलखिलाता है ! गोली चलती है, आदमी मरता है, तो उसके चीत्कार के साथ, मानो वह भी अट्टहास करता है ! उस दानव का यही इतिहास है। उस राक्षसी कृत्य की यही कथा है !

'लेकिन फिर भी राज्य चिन्तित है। इन निहत्थों को, इन शस्त्रहीन इन्सानों को देखकर वह राज्य गोलियाँ क्यों चलाता है ?' उसी समय आत्माराम बोला—'निश्चय ही, राज्य डरा है। अधिकारी काँपे हैं ! वे इसी कारण भेड़िये के सदृश पागल बन गये हैं !' इतना कहते हुए, आत्माराम हिंसा को छोड़ अहिंसा की गुरुता में डूब गया। वह जितना ही, उसकी गति-विधि और दार्शनिकता को देखता, तो उतना ही, उसकी गहराई में पहुँचता। उस समय, आामाराम को ऐसा एक भी तर्क नहीं मिला, जो उसे हिंसा के प्रति प्रेरित और समर्पित होने का संकेश दे सके। वह अब तक जिस अहिंसात्मक युद्ध का नेतृत्व कर रहा

था, स्वामीजी के आदेश पर चल रहा था, तो ऐसा एक दिन भी नहीं देख पाया कि अहिंसा भी एक युद्ध है, जो हिंसा से महान् है। जिसकी चिंगारी का काम अनन्त और अमिट है। किन्तु उस समय उसे अनुभव हुआ, उसकी आत्मा ने चीत्कार करके कहा—'नहीं! नहीं! अहिंसा हिंसा से महान् है। यह एक दार्शनिक और मनोवैज्ञानिक आधार है। मानव के विवेक पर इसका अस्तित्व टिका है। अहिंसा का मन्त्र नित-नित विपक्षी को सुन पड़ता है। वह प्रभावित होता है। उसका दम्भ और दण्ड स्वतः ही खण्ड-खण्ड हो जाता है। वह मर जाता है।

इतना सोचते और कहते हुए, आत्माराम अपने-आपसे एक अकल्पित हर्ष पाने लगा। उसका रोम-रोम गद्गद् होकर पुलकित हो उठा। उसने चाहा कि वह अभी स्वामीजी के पास जाये और उनके चरणों में अपना सिर झुका कर कहे—मैं सहमत हूँ, स्वामीजी! मैं आपकी सभी आज्ञाओं के समक्ष अपना सिर झुकाता हूँ।

और तभी, उसे याद आया कि कल सत्याग्रह में जाकर जब वह फौज के समक्ष पहुँचेगा, तो उसकी बन्दूकों को देख, छाती खोल देगा। वह उनसे कहेगा, 'गोली चलाओ! मुझे मारो! और······और ·····!

तभी एकाएक वह चौंक गया। उसने सुना—'मि० आत्माराम··· आत्माबाबू······!'

यह सुनते ही, हठात् आत्माराम बिस्तर से उठ बैठा। उसने एकाएक देखकर कहा—'कौन रतनबाबू! अरे, आओ भाई! आओ!'

रतनलाल पास आ गया। आत्माराम के बिस्तर पर बैठ गया। तभी उसने कहा—'किस विचार में हो! दिखता है, किसी भारी चिन्ता म डूबे हो!' उसी समय, उसने तम्बू के चारों ओर दृष्टि डाली और बोला—'मुझे एकाएक देखकर, तुम अवश्य ही चकित हुए। लेकिन काम था, मुझे आना था। तुमसे आज ही मिलना आवश्यक था।'

उस समय आत्माराम मौन था। वह एकाग्र बन, रतनलाल की ओर देख रहा था। रतनलाल ने फिर कहा—'सुना, तुम कल सत्याग्रह

कर रहे हो ? कल के जत्थे का नायकत्व तुम ग्रहण करोगे ?'

'हां, रतनलाल ! मैंने भी यही सुना है । स्वामीजी ने मुझसे यही कहा । अभी शाम को कहा ।' आत्माराम ने कहा ।

रतनलाल ने कहा—'स्वामीजी ने कहा और वह तुमने भी स्वीकार कर लिया ? तुमने स्वयं ही, यह बोझ अपने सिर पर उठा लिया ?'

आत्माराम इतना सुनकर, फिर मौन बन गया । वह रतनलाल की बात के अन्तराल में चला गया ।

'आत्माबाबू, हमने तो तुमसे कुछ और चाहा था । वह तुमने नहीं दिया । तुमने वचन देकर भी, स्वतः उसे भुला दिया । दिखता है, आज की पाई हुई मान-प्रतिष्ठा ने, सबकी तरह, तुम्हें भी लाचार कर दिया । मोह लिया ! तुमने हम लोगों को भुला दिया । अकेला छोड़ दिया ! जो कुछ हम लोगों से कहा था, आज वह भी अपने मस्तिष्क से निकाल दिया ।' रतनलाल ने एक ही साँस में अपनी बात कही और आत्माराम की ओर देखा ।

आत्माराम ने कहा—'रतन भाई, मैं स्वामीजी को वचन दे चुका हूँ । मैं जब तक यहाँ हूँ, अहिंसा का पूजक रहने के लिए बाध्य हूँ । मैं माँ द्वारा स्वामीजी को दिया गया हूँ ।'

रतनलाल ने जैसे रोष भरे स्वर में कहा—'मैं समझा ! तुम स्वामीजी की बात के सामने हम लोगों का कोई अर्थ नहीं आँकते । तुम हिंसा को छोड़ अब अहिंसा के पुजारी बने हो । जो हमारा शत्रु है, निराधार जनता को अपने तेज नाखूनों से नोंचता है, तुम उससे सहानुभूति की आड़ में समझौता करना चाहते हो ! तुम उससे कुछ आशा करते हो ! जो जड़ है, निरा पत्थर है, उसी से दया की भीख माँगते हो ! आत्माराम, तुमने अपने मिशन का उद्देश्य भुला दिया । तुम ऐसे शासक के पास हृदय देखने की कामना करते हो । दिखता है, तुमने भी शासक को देवता समझा है । बताओ, तुम किन विचारों पर, किस गहराई पर

टिके हो ! मैं कहता हूँ, तुम सोच लो। समझ लो। जिस खाई के किनारे तुम आकर खड़े हो, उसमें गिरते देर नहीं लगेगी। तुम उसमें गिरोगे ! मरोगे ! उस खाई में जो विषैले सर्प, बिच्छू आदि भरे हैं, तुम उनके भी खाद्य-पदार्थ बनोगे !' यह कहते हुए रतनलाल मौन हो गया। वह आत्माराम की ओर देखने लगा। उसी अवस्था में उसने फिर कहा—'अपना उपहास मत कराओ ! इस पाये हुए जीवन को यों आँख मूँदकर न मार दो ! इसके संस्कारों का, इसके धर्म का भी कुछ ज्ञान करो, आत्माराम !'

उसी समय, आत्माराम ने रतनलाल की ओर देखा। उसे लक्ष्य करते हुए ही, उसने समझा कि इस रतन के दिल में दर्द है। उसके प्रति ममता है। वह उसे अपने समीप खीच लेने पर उतारू है।

किन्तु रतनलाल ने उसी आवेशपूर्ण वाणी में फिर कहा—'तुम्हारी जिस वाणी पर जनता जेलों में जा रही है, गोलियों से मर रही है, फौजी घोड़ों की टापोंके नीचे कुचली जा रही है, जब आने वाले कल में तुम्हें असफलता मिलेगी, तो समझोगे कि अच्छा नहीं किया ! निरीह जनता को व्यर्थ ही मर जाने दिया ! बताओ, जनता को क्या मिलेगा ? इस बलिदान का, उसके इस त्याग का उसे क्या श्रेय प्राप्त होगा, आत्माराम ! सच, कुछ नहीं ! कुछ भी नहीं ! और होगा यह कि राज्य बचे हुए नागरिकों को और अधिक कुचलेगा। पद-दलित करेगा ! जो सिसक रहे हैं, उनके प्राण निकालेगा ! तुम एक आदमी को बदल कर जाति को, देश को, एक पूरे समाज को नहीं बदल सकते ! प्रश्न इच्छा का है—दूषित मनोवृत्ति का है ! भला उसे कैसे बदलोगे ? तुम्हें जो कुछ पाना है, उसे प्राप्त करके भी, शासक को नहीं बदल मकोगे। और क्या उसकी शृङ्खला का रूप बदल जायगा ? वह रहस्यमय बनकर, तुम्हारा और जनता का शोषण करेगा !'

आत्माराम ने कहा—'यही प्रश्न है, रतनलाल ! हिंसा इसे हल नहीं करती। वह एक आदमी को मारती है। शृंखला नहीं तोड़ती।

शासक मरेगा, या हारेगा तो जनता के समान भिक्षुक बन जायगा। वह भी रोटियों का मोहताज हो जायगा। कोई और आयेगा। वह दूषित मनोवृत्ति का प्रचार करेगा। जिस साम्यवाद की हम कल्पना करते हैं, वस्तुस्थिति यह है कि देश के वर्तमान संस्कारों में वह फल-फूल नहीं सकेगा। इसलिए आवश्यकता इस बात की है कि पहले समाज को रोटी मिले। उसे जगाया जाये। समता अथवा साम्यवाद यहाँ भी प्रचारित हो, इसे तो कभी भी स्वीकार किया जा सकेगा।' आत्माराम ने कहा—'मैं अपने साथियों को नहीं भूला। उन्हें प्रायः याद करता हूँ। परन्तु इस जीवन में यह अनुभव भी कर पाऊँ, तो क्या बुरा है? अब मेरे मन में यही आया है। शायद आज यही मेरी आत्मा की प्रेरणा है।'

आवेशपूर्ण बनकर रतनलाल बोला—'राजा तुम्हें कुछ नहीं देगा। वह तुम्हें पीस देगा! तुम्हें कुचल देगा! तुम्हें······!'

'रतन! रतनलाल!' उसी समय आत्माराम जोर से बोला—'अब तुम कहाँ तक कहोगे! तुम कब तक कहोगे!' यह कहते हुए आत्माराम खड़ा हो गया। वह तम्बू में घूमने लगा। उसके पीछे ही रतन ने खड़े होकर कहा—'आत्माबाबू, तुम पर हमारा भी अधिकार है। इसीलिए तो मैं यहां आया। मुझे बहुत कुछ कहना है। आज ही कहना है। इसीलिए मुझे साथियों ने भेजा। विपिन चुप है। वह कुछ नहीं कहता। वह हमारे साथ है। उसने अपनी जायदाद का बहुत-सा रुपया हमें दे दिया है। अब उसने सभी-कुछ देने को कहा है। पर तुम बताओ। तुम कहो, अपनी बात! क्या तुमने यही करना पसन्द किया है? अब तुमने इसी पथ का अनुसरण करना स्वीकार कर लिया? और इतना तुम जानते हो कि जहरीला साँप दूध पीकर भी काटता है। शोषक अपना स्वभाव नहीं छोड़ता!'

उसी समय, आत्माराम ने अधीर बनकर कहा—'रतनलाल, तुम मुझे छोड़ दो! चाहे मार दो!'

'आत्माबाबू! हम ऐसी धारणा या कल्पना नहीं कर सकते। तुम

हम सबमें बड़े हो। हमारे आदरणीय हो।'

'भाई, रतनलाल!' आत्माराम ने बाहर के अन्धकार की ओर से आँखें फेरकर रतनलाल की ओर देखा। उसका हाथ पकड़ लिया। अटूट ममता भरे स्वर में वह बोला—'मैं मानता हूँ कि राज्य स्वार्थी है, दम्भी है! अहिंसा से न डरता है, न कायल बनता है। परन्तु यह भी एक प्रयोग है। देखते हो, जेलें भर गयी हैं। राज्य की मजबूत जड़ें हिल गयी हैं। तुम मुझे यही देखने दो। मुझे स्वामीजी के आदेश का अनुसरण करने दो, भाई! युद्ध यह भी है। यह भी गम्भीर और भारी है। तुम इस प्रकार देश में आग फैलाने दो! देश को बड़ा बलिदान देने के लिये तैयार होने दो। तुम मुझे इसे समझने दो। मुझे स्वामीजी को धोखा मत देने दो।' इतना कहा और आत्माराम ने रतनलाल का हाथ छोड़ दिया।

रतनलाल ने बाहर के घोर अन्धकार की ओर देखते हुए, अपना देर का रुका हुआ साँस छोड़ दिया और कहा—'अच्छा, भाई!' उसने अपना डण्डा उठा लिया और चलने को उद्यत हो गया। वह सामने द्वार की ओर बढ़ता हुआ बोला—'तुम जानो, आत्माराम! अपने विचार जानो! नमस्कार!'

आतुर स्वर में आत्माराम बोला—'तुम जा रहे हो, रतनलाल! रुष्ट होकर जा रहे हो! इस रात में! अँधेरे में!'

रतनलाल ने सामने की ओर देखते हुए कहा—'हमारे तो जीवन में अंधेरा है, आत्माराम! सचमुच, मैं तुमसे नाराज नहीं, अप्रतिभ भी नहीं!'

रतनलाल अभी आगे बढ़ा था कि उसने सामने स्वामीजी को खड़ा पाया। वह रुक गया। तनिक चकित भी बन गया। स्वामीजी ने कहा—'रतनबाबू ... ...'

'जी, स्वामीजी ... ...'

'आत्माबाबू के पास आये? मिले? बातें कीं?' वह बोले—'तुम

अभी क्यों चल दिये, भाई ! बैठते ।'

किन्तु रतनलाल ने पैर उठाये, उसने कहा—'मुझे काम है स्वामीजी !'

स्वामीजी ने उसकी ओर देख, मुस्करा दिया—'अच्छा, अच्छा !"

रतनलाल चला गया। वह क्षण भर में लोप हो गया। वह अँधेरे में जाकर तिरोहित हो गया।

: ३१ :

देर हुई कि रतनलाल चला गया। किन्तु आत्माराम को वह जिस अवस्था में छोड़ गया, वह अभी वैसा ही बना था। आत्माराम देर तक खिन्न, अव्यवस्थित दिखाई दिया। उसके मन में जिस प्रकार का मानसिक द्वन्द्व आरम्भ हो गया, वह सुगमता से नहीं दब सका। आत्माराम एक क्षण के लिये भी नहीं बैठा, वह डेरे में घूमता रहा। निश्चय ही, उसके मन की ऐसी अवस्था थी कि न सो सका, न चैन से बैठ सका। जब आत्माराम अपने अन्तर के उस विद्रोह को दबाने में असमर्थ रहा, वह उस बवण्डर में उड़ता ही गया, तो वह निरुपाय और खिन्न मन लिये हुए, स्वामीजी के डेरे पर पहुँच गया। उसने बाहर से ही देखा कि स्वामीजी बैठे हुए कोई पुस्तक पढ़ रहे हैं। आत्माराम अन्दर चला गया। वह स्वामीजी के पास जा बैठा।

उसी समय, स्वामीजी ने मुँह उठाकर पूछा—'तुम सोये नहीं, आत्माराम !'

आत्माराम ने कहा—'हां, स्वामीजी, मैं नहीं सो सका। रतनलाल क्या आया, वह मेरे मानसिक धरातल को विदीर्ण बना गया।'

'सचमुच ! तो किस उलझन में हो, भाई !' स्वामीजी ने पुस्तक बन्द कर दी।

आत्माराम की ओर देखते हुए, उन्होंने स्नेहसिक्त स्वर में कहा—'रतनलाल इतनी बड़ी बात कर गया ! तुम्हें अव्यवस्थित बना गया !' इतना कहते हुए, स्वामीजी गम्भीर बन गये । वे तुरन्त ही बोले—'मैं समझा, तुम्हारा मन अधिक दुर्बल है ! तुमने अपनी माता से जहाँ अच्छी बातें पाईं, वहाँ नारी की स्वाभाविक दुर्बलता भी प्राप्त कर ली। जरा-सी बात पर तुमने इतनी बड़ी रात जाग कर काट दी !'

इतना सुनकर भी, आत्माराम स्वामीजी की ओर नहीं देख रहा था। जैसे उस क्षण उसमें इस क्षमता का अभाव था। वह डेरे के द्वार की ओर मुँह किये बैठा था। आत्माराम निश्चय ही, असंगति की ओर जा रहा था। उसके मन में विद्रोह था। फलस्वरूप, उस दशा को देखकर ही, स्वामीजी ने कहा—'आत्माराम, इन्सान का निश्चय बलवान होता है। वही श्रेष्ठ ! इस अवस्था से तो यह अच्छा है कि तुम घर बैठो। लौट जाओ। तुम दुर्बल हो ! ढुलकते हो। तुम किसी की प्रेरणा को पाकर उससे प्रभावित होते हो ! तुम अपनी माँ, पत्नी और पुत्र के पास जाकर शांति और सुख पाओ। तुम अशान्त मत बनो। मेरे विचार और कार्यक्रम से सहमत नहीं होते, तो मत होओ। हिंसक बनकर, देश की सेवा करना चाहते हो, तो अवश्य करो। यह न समझो, मैं फाँसी पर चढ़ने वाले युवक का आदर नहीं करता। सचाई तो यह है, मैं भगवान् के बाद उसी का आदर करता हूँ। जो युवक राष्ट्र-धर्म का पालन करने के लिये अपने को ज्वाला की भट्टी में झोंकता है—जीवन की सभी अभिलाषाओं को मारता है—अरे, वही तो सबसे बड़ा देशभक्त है ! त्यागी है ! बलिदान का प्रतीक है !' इतना कहते हुए, स्वामीजी अतिशय गम्भीर बन गये। वे फिर कहने लगे—'तुम्हारा साथी विपिन, यह रतनलाल और भी मेरे पास आने वाले युवक—वे सभी—राष्ट्र की सम्पत्ति हैं। अभिमान हैं। इतने

सुन्दर, उत्साही युवक जिस देश में हों, वह देश क्या मर सकता है—कदापि नहीं ! कभी भी नहीं ! मैं इन युवकों को देखता हूँ, तो हर्ष से पुलकित बन जाता हूँ। मैं इनकी चरण-धूलि लेने के लिये छटपटाता हूँ।' यह कहते हुए, स्वामीजी खड़े होगये। वह आत्माराम के सामने खड़े होकर बोले—'किन्तु मेरा मतभेद केवल यही है कि हिंसा पुरानी परिपाटी है। अस्थिर है। जघन्य और क्रूर है ! महात्मा गांधी के समान, उन्हीं की प्रेरणा पर, मैंने भी यह युद्ध उठाया है। मुझे उस वृद्ध संन्यासी का आशीष और निर्देश मिला है। अतएव, यह युद्ध मैंने अपने कन्धों पर उठाया है। आवश्यकता हुई, तो समूचा देश इस आग में कूद सकता है। मैं सभी वर्गों के नेताओं से मिल लिया हूँ। मैं अकेला नहीं हूँ। शक्ति-सम्पन्न हूँ। मेरे पास आत्म-बलिदान की शक्ति है, त्याग की शक्ति है ! अपने भरोसे पर, अपनी आत्मा की प्रेरणा पर, मैंने इस युद्ध को घोषित किया है। तुम जिस रास्ते पर हो, तुम अपने जीवन में जो कुछ चाहते हो, वह मैंने तुम्हारी माँ को बता दिया। मैंने उसके कहे पर ही, तुम्हें यह काम सौंपा। पर दिखता है, तुम अयोग्य हो। तुम जीवन की इस स्थिति को नहीं मानते। तुम युवक हो, इसलिए अपने मस्तिष्क में ऐसा विचार नहीं आने देते कि अहिंसात्मक परिपाटी भी योग्य है, श्रेयस्कर है। इसे अपने हृदय की गहराई में नहीं उतारते। तुम अभी नहीं समझते कि मुट्ठी भर आतंकवादी, अपनी नगण्य शक्ति के सहारे, एक महान् और सुदृढ़ साम्राज्य की जड़ें नहीं हिला सकते। निस्सन्देह तुम्हारे पास जो कुछ है, वह तुच्छ है। शासक तुम्हें पलमारते में पीस सकता है। तुमने एक पिस्तौल के बल पर जनता की सेवा करना पसन्द किया है। तुमने उन छोटी गोलियों से उस दुर्ग को गिरा देना चाहा है, जो मानव के रक्त-मांस से बना है···जिस पर मानव की हड्डियों का प्लास्टर चढ़ा है··'

उसी समय, आत्माराम ने स्वामीजी के चरणों को पकड़ लिया।

उसने कहा—'मुझे क्षमा कीजिये, स्वामीजी ! मुझे बल दीजिये ! आप...'

किन्तु स्वामीजी ने चंचल और उद्विग्न स्वर में कहा—'नहीं, आत्माराम ! मैं किसी अन्य के समान तुम्हें भी बाँधना पसन्द नहीं करता। तुम स्वतन्त्र हो। वैसे, मैं अनुभव करता हूँ कि तुम कायर नहीं। लेकिन जीवन में जिस सेवा और तपस्या के लिये मैंने तुम्हें प्रेरित किया, उसे तुमने स्वीकार नहीं किया ! मैं जानता हूँ कि हिंसक बनकर भी तुम देश के लिये मरना चाहते हो—मर सकते हो ! किन्तु यह जीवन है, जो यों ही, पतझड़ के समान इस भूतल पर नहीं आ गिरा। यह तो जाने कितने अनुष्ठान और संस्कारों से निर्मित हुआ है। एक शब्द में कहूँ तो जीवन एक साधना है। संकल्प है। अतएव, तुम जोश में इसकी वास्तविकता मत भुला दो। इसे नष्ट मत होने दो। जीवन को सम्भालो। इसे रखो। इस जिन्दगी का जो अमृत-कुण्ड है, उसे एक बार ही, मत बहा दो। उससे, स्वयं भी आचमन करो और दूसरों को भी दो। जनता-जनार्दन के चरणों को उसी अमृत से पखार दो—शीतल कर दो ! तुम अपने जीवन के कण-कण को दरिद्र-नारायण की झोली में डाल दो। अपना अहं, जो इस पथ का बाधक है, उसे दूर कर दो। तुम अपने इस भरे यौवन में, तुम हृदय के तीव्र प्रवाह में, अपने मानस को उत्तप्त मत होने दो ! शान्त और सरल भावना को पुट पाने दो, आत्माराम !' यह कहते हुए स्वामीजी ने आत्माराम को ऊपर उठा लिया। उन्होंने उसे छाती से लगा लिया। उन्होंने कहा—'जब कोई तुम्हारे मुँह पर तमाचा मारेगा, गालियाँ देगा और तुम्हारा तिरस्कार करेगा, तो तब, तुम्हारा यह कर्तव्य होना चाहिये कि उस मदान्ध और क्रूर बने हुए मानव को प्यार से देखो। उसे अपना ही अंग समझो। अहिंसा का यही सिद्धान्त है। उसकी हिंसा पर इसी प्रकार विजय होती है। इससे बड़ा मुझे कुछ भी नहीं दीखता। इससे आदमी का अहं मरता है। उसकी आत्मा का सम्मान ऊँचा होता है।'

चंचल बनकर, आत्माराम ने कहा—'मेरे पास अब कुछ नहीं है, स्वामीजी ! कुछ भी नहीं !'

स्वामीजी मुस्कराये—'मुझे इसका पता है, आत्माराम ! तुम्हारा हृदय भी मैंने देखा है। वह निर्मल है। साफ है। रतनलाल की बातों ने तुम्हें विचलित बना दिया। तुमने उससे भी जो कुछ कहा, वह मैंने सुना। वह जब आया था, तो तभी एक वालण्टियर ने मुझे उसका पता दिया। मैं तुम्हारे डेरे पर पहुँच गया। तुम्हारी रक्षा करना मेरा कर्तव्य था। किन्तु मैंने देखा कि तुम स्वयं समर्थ थे। तुम रतनलाल की बातों से प्रभावित नहीं हुए। रतनलाल भी मेरे स्नेह का पात्र है। उसके पिता प्रायः मिलते हैं। रतनलाल योग्य युवक है। विश्वासी है। ईश्वर उसकी रक्षा करे !' यह कहते हुए स्वामीजी ने साँस भरी और छोड़ दी।

प्रातः हो आया। आत्माराम स्वामीजी के पास से चल दिया। अपने डेरे पर जाकर मो गया। किन्तु दिन तो निकल आया। सूरज चढ़ गया। स्वामीजी के आदेश पर आत्माराम जगा दिया गया। वह अपने नित्य-कर्म से निवृत्त हो गया। उस दिन उसे स्वयं कुछ सत्याग्रहियों सहित सत्याग्रह करना था। उस दिन का श्रेष्ठ प्रोग्राम था। सभी ओर इसकी चर्चा थी। शासक की शक्ति भी सतर्क थी। पुलिस और फौज सभी ओर तैनात कर दी गयी थी।

युवक और युवतियाँ सभी केशरिया वस्त्र पहिने हुए, सत्याग्रह-संग्राम में जाने के लिये प्रस्तुत हुए। आत्माराम सहित सभी के रोली के तिलक लगाये गये, फूलों की मालाएँ डाली गयीं। वह स्थान वार-वार आत्माराम और स्वामीजी की जय से गूँज उठा। स्वामीजी ने सभी को आशीष दिया। अपार जन-समूह के साथ सत्याग्रहियों का काफिला राज्य-द्वार की ओर बढ़ चला। सभी को सन्देह था कि सत्याग्रही आगे नहीं बढ़ेंगे। रास्ते में ही पुलिस रोक लेगी। फौज की गोलियाँ आगे नहीं बढ़ने देंगी। आत्माराम अनेक कल्पनाओं से प्रभावित हुआ आगे बढ़

रहा था। वह फूलों से लदा, जनता के जयघोष पाता हुआ, आगे बढ़ा जारहा था। उसी समय, अधिकारियों ने आगे बढ़कर उसे रोक लिया। साथियों सहित आत्माराम गिरफ्तार कर लिया गया। दूसरे दिन उसे छः मास का कारावास दण्ड सुना दिया गया। जीवन में पहली बार वह कारबारी दुनिया से पृथक् बनकर; जेल के जीवन में मिल गया। जैसे वह आदि युग से उसी जेल का वासी था। अब तक उसी जीवन मे पला-पोसा था।

किन्तु आत्माराम तो एक बड़े जेलखाने का वासी था। वह जन्म से ही दासता के बन्धनों में बँधा था। उस छोटे से जेलखाने में पहुँच कर, उसे सहज ही, वहाँ पर पहले से पहुँचे कैदियों से परिचय करने का अवसर मिल गया। उसने जेल जाने के दूसरे दिन ही माँ और रजनी को पत्र लिख दिये। उस जेल का वातावरण उसके लिये सर्वथा नवीन था। सत्याग्रह के लिए जाते हुए, आत्माराम के पास जितना कौतूहल था, जब वहाँ भी कुछ न देख पाया, तो जेल में जाकर भी, उसे कुछ भी अपना-पराया नहीं लगा। मानो सभी कुछ परिचित—जीवन से मेल खाने वाला था !

उसी समय, अत्माराम के पास एक कैदी नियुक्त हुआ। वह दस वर्ष का कैदी था। एक दिन जब अचानक उससे कोई काम बिगड़ गया तो उसने नितान्त विनीत बनकर कहा—'अब ऐसा नहीं होगा, बाबू ! अब नहीं'।'

यह देख, आत्माराम कुछ विस्मित हुआ। वह उसकी विनय को देख मुस्कराया, तभी बोला—'तुम तो डाकू हो, भाई ! खूँखार ! फिर इतने विनीत ! व्याकुल !'

किन्तु उस डाकू कैदी ने कहा—'हां, बाबू ! मैं डाकू तो हुआ ! परन्तु अब बूढ़ा हुआ। अब सभी से दूर हुआ !'

'क्यों ? क्यों ?' आत्माराम ने तुरन्त पूछा।

उसने कहा—'अब यह कैदी सोचता है कि छूट जायगा, तो अपने

बाल-बच्चों को देख लेगा। उनसे मिल लेगा। यह डाकू अब कल ही, इस जेल से चला जायगा। लेकिन यदि आपने मेरी शिकायत करदी, तो जेलर मुझे एक मास के लिए और रोक लेगा।' वह बोला–'बाबूजी, दस वर्ष तो मैंने काट लिये, परंतु अब एक रात का काटना, जैसे मेरी शक्ति से बाहर हो गया। मेरे लिए एक रात का पहर भी पहाड़ बन गया।'

'अच्छा, अच्छा, तुम जाओ, भाई! तुम अपने बाल-बच्चों से जाकर मिलो।' आत्माराम ने सदय भाव में कहा।

और जब उस कैदी के जाने पर आत्माराम अकेला रह गया, तो उसके जाते ही, दूर अन्तरिक्ष की ओर देखता हुआ बोला—मानव, सच, तू निरा दुर्भागी···निरा दीन!

इतना कहते ही, आत्माराम फिर अपने-आप में डूब गया। उसे लगा कि जैसे यह मानव सभी ओर से बँधा है। यह उलझा है। यह परतन्त्र है। इस छोटे-से जेलखाने से बाहर जाकर भी, दुनिया के बड़े जेलखाने में बन्द रहता है। यहाँ जेल का जेलर और सिपाही तंग करते हैं, तो बाहर शासक और पूँजीवाद का जोड़ा आये दिन दुर्बल इन्सान की पीठ छीलता है···निरा अवश और अभागा प्राणी बनाता है, इस इन्सान को!

उसी समय, आत्माराम ने जाने कितनी गहरी ईर्षा और व्यथा-पूर्ण स्वर में कहा—आखिर इसका अर्थ क्या है! यह जेलखाना ही क्यों! यह सजा और मृत्यु दण्ड ही क्यों!

यह कहते ही, आत्माराम को अनुभव हुआ कि स्वयं वह जिस शासन और शासित के द्वारा जेल में बंद है, वही नित-नित समाज की सुरक्षा के नाम पर अदालतें और जेलखाने बनाता है···धनिक समाज अभाव भरे इन्सान का शोषण करता है, चूसता है! वही शासक के द्वारा स्वच्छन्दता से आगे बढ़ता है। भूखा इन्सान अपना सर्वस्व खोकर भी, जब कुछ माँगता है, वह अपनी उदर पूर्ति के लिये उससे कुछ छीनता है, उसका बध करता है, तो वह फिर डाकू है, खूनी है! यह कहते ही,

आत्माराम जैसे चीख पड़ा—अरे, आत्मा ! आत्माराम ! यह है, इस शासन का, इस पूँजीवाद का जघन्य कृत्य ! खूनी यह है ! डाकू और लुटेरा यह······!

अपनी उस अधीर वेदना से भरी हुई अवस्था में आत्माराम ने फिर कहा—जाने वह दिन कब आयेगा, जब इस प्रपंच का अन्त होगा। मानवता का आरम्भ होगा। लम्पटता और छल इस जगत् से उठ जायगा। वास्तविक खूनी फाँसी पर चढ़ेगा। असली चोरों को जेलखाना मिलेगा···हाँ, जिन्होंने इन प्रथाओं का आविष्कार किया है, उन्हीं को इसका फल भुगतना भी अवश्यम्भावी बनेगा !

किन्तु आत्माराम का मन-स्तर उस समय सचमुच ही विक्षुब्ध बन गया कि जब उसने देखा कि वही कैदी तीसरे दिन फिर जेल में आ गया। उसे देखते ही, उसने कहा—'अरे, क्या फिर डाकू बन आये ! कल गये और आज आ गये !'

उस कैदी ने तब जाने कितने मलिन और लजाये भाव में कहा—'हां, बाबूजी ! मैं फिर आ गया। मुझे आना ही था ! मुझे अब बाहर की दुनिया में कुछ नहीं करना था। कोई अपना नहीं रहा। गाँव में जाते ही सुना, स्त्री मर गयी, बच्चे मर गये। वह भूख से तड़पते और कलपते इस इन्सानी जिन्दगी से मुँह मोड़ गये। मैं आपको अपनी सच-सच बात बताऊँ, मैं पहले निर्दोष ही इस जेल में आया। मुझे गाँव के लाला ने पुरानी दुश्मनी के मामले में पकड़वा दिया। और तब उसीने, उसी पत्थर के दिल वाले लाला ने, मेरा घर, मेरा खेत सभी कुछ कुर्क करा लिया।' क्षण भर बाद ही, उसने कहा—'और अब तो मैं दस साल पार करके यहाँ से गया था ! मैंने उस लाला को जाते ही मार दिया ! उसका बेटा भी मार दिया। मैं उसके घर में भी आग लगाकर, सभी कुछ नष्ट कर, खुद थाने में पहुँच गया। अब इसीसे, यहाँ आया हूँ। अपनी खुशी से और जीवन भर रहनें के लिये, मैं यहाँ लौट आया हूँ, बाबू ! पहले झूठा डाकू था, पर अब असली कातिल बन आया हूँ···!'

एकाएक आत्माराम चीख पड़ा—'अरे, मलखान ! तू !'

मलखान ने जाने कितनी अटूट श्रद्धा के साथ आत्माराम की ओर देखा। उसके पैरों में झुक गया और बोला—'अब कुछ भी कहिये, बाबूजी ! सच, कुछ भी !'

आत्माराम ने वेदना भरे स्वर में कहा—'तो तुम्हारा अब अपना कोई भी नहीं रहा, मलखान !'

यह सुनते ही, मलखान फूटकर रो पड़ा। वह एकबारगी विह्वल बन, रोते-रोते बोला—'मुझसे अपना दिल नहीं चीरा जाता, बाबू ! आपको दिखा नहीं सकता। दिखा पाता, तो बताता, कि मैं इस जेल-खाने के दस वर्ष अपनी स्त्री और बच्चों की याद में तड़प-तड़पकर पार कर गया। सोचा था, बच्चे बड़े हुए होंगे ! वह अब कमाने-खाने लायक होंगे। पर…पर !' कहते हुए उसने अपना मुँह घोटों पर रख लिया।

आत्माराम ने उसे उठा लिया और उसके सिर पर हाथ रखकर बोला—'भाई, मलखान ! तुम्हारी तरह, इन धनिकों के सभी शिकार हैं। तुम्हारी तरह सभी खून के घूँट पीते हैं !'

मलखान ने कहा—'गाँव में जाते ही, देखा और सुना, तो इन दस वर्षों की मुसीबत भूल गया ! मैं तब अपने-आप में खो गया। मैं बदले की आग से जल उठा। भभकने लगा। शाम होते-होते इस जेल के साथियों को ढूँढ़ लाया और दिये जलते ही, लाला के द्वार पर पहुँच गया।'

आत्माराम ने आतुर बनकर कहा—'तुमने अच्छा नहीं किया, मलखान ! तुम्हें उस गाँव में नहीं तो और कहीं रहना था। तुम्हें बदला नहीं लेना था। भगवान् पर छोड़ना था। यह जेलखाना तो नर्क है ! तुम यहाँ आदमी बने हुए आये थे, राक्षस बनकर गये ! खूनी…लुटेरे !

मलखान ने इसका उत्तर नहीं दिया। वह सिर झुकाये बैठा रहा।

: ३२ :

अपने पुत्र के लिये, आत्माराम की माँ में जिन आकांक्षाओं और भावनाओं का समावेश था, उन्हीं के प्रसाद स्वरूप, वह अपने पुत्र को त्यागी और महान् व्यक्ति देखना चाहती थी। उस माँ में ऐसा विचार एक दिन भी नहीं आया कि आत्माराम हीन हो, अथवा कायर हो ! लेकिन जब माँ ने स्वामीजी से यह सुना कि आत्माराम आतंकवादी संघ का सदस्य है, कभी भी फाँसी पर चढ़ सकता है, तो उस नारी का समस्त सन्तोष और सुख बालू की दीवार के समान ढह गया। उसने तड़पकर स्वामीजी से कहा—'मेरे आत्मा को बचाइये···उस आग में गिरने से रोकिये !'

फलस्वरूप, स्वामीजी ने गुर्जर ताल्लुके के लिये आत्माराम की माँग की। वह माँग सुगमता से पूरी हो गयी। उसी समय स्वामीजी ने कहा था—'अब आत्माराम घरू काम-काज का व्यक्ति नहीं रहा। यह एक घर का नहीं रहा। यह तो देश का बन गया है। राष्ट्र ने आत्माराम से भी अपना अधिकार माँगा है।'

उसी समय, माँ ने कहा था—'मेरा आत्मा इतना गहरा बन जायगा, इतनी दूर चला जायगा, मुझे नहीं पता था।'

स्वामीजी ने कहा—'मैंने रात के अँधेरे में और दिन के उजाले में आत्माराम को देखा है। उसका हृदय विशाल बन गया है। दरिद्र-नारायण की सेवा करना, आत्माराम का लक्ष्य है।' वह बोले—'मैं यह भी समझता हूँ कि तुम्हारे पास एक माँ का दिल है। वह कोमल है। तुम्हारा मन अपने पुत्र को चिरंजीवी और अक्षुण्ण देखना चाहता है। अब तुम्हारा आत्मा नहीं मरेगा। उसका शरीर बदल जायगा। उसका नाम देश के प्राणों में समाहृत हो जायगा।'

'अच्छा, स्वामीजी, अच्छा !' जाने कितनी आतुरमयी वाणी में आत्माराम की माँ ने कहा—'अब आत्माराम माँ की गोद से निकलकर तुम्हारे पास पहुँच गया है। वह आपका है।'

स्वामीजी ने सुना और मुस्करा दिया। उन्होंने उस क्षण में जाने कैसी भावनामयी दृष्टि के साथ आत्माराम की माँ को देखा।

और जब आत्माराम के जेल जाने का समाचार स्वयं स्वामीजी ने उसकी माँ और पत्नी को गाँव में पहुँचकर दिया, तो वह रजनी को देखकर बोले—'बेटी, कदाचित् तुम सोचती हो, तुम्हारे पति को जेल भेजने का काम मेरा है। तुमसे दूर रखना भी मेरा काम है। यह मेरी ही इच्छा का परिणाम हुआ।' उन्होंने कहा—'आत्माराम ने मुझे जेल से लिखा है कि मैं तुम्हें समझाऊँ। तुम्हारे कोमल हृदय पर, उसके जाने का क्षोभ न होने दूँ। पर बताओ बेटी, क्या तुम्हें सचमुच ही, आत्माराम का जेल जाना अच्छा नहीं लगा? तुम्हें कष्ट हुआ? तुम्हारा पति देश के लिये, वह तुम सरीखी लाखों बहिनों के कष्ट दूर करने के लिये जेल गया है, रजनी बेटी! तुम्हें प्रसन्न और हर्षित होना चाहिये। ऐसा पति पाकर तुम्हें अपने भाग्य की सराहना करनी चाहिए।'

इतना सुनकर, रजनी ने स्वामीजी की ओर देखा। उसने सूखे भाव में मुस्करा दिया।

'और रजनी बेटी, यह विपिन है, जो निरा अज्ञान और अन्धा बना है। विपिन कल ही अपने हाथों से एक बड़े अफसर की हत्या कर आया है। तुम उसे भी नहीं समझाओगी, क्या! तुम चाहो तो, उसे भी सुपथ पर ला सकती हो। तुम उसे खूनी और हिंसक भेड़िये से देवता के तुल्य सरल मानव बना सकती हो, बेटी! मैं ऐसा करने में असमर्थ रहा। मैं विपिन सरीखे युवकों को नहीं समझा सका। एक आत्माराम का हाथ पकड़ सका, तो उसे खींचकर अपने रास्ते पर ले गया। मैं उसे बचाने में सफल बन गया। लेकिन विपिन का घृणित और असहनीय कार्य नहीं रोक सका।'

इतना सुनकर रजनी मौन रह गयी। उसकी सांस रुक गयी। वह अपने सामने के अन्तरिक्ष की ओर देखती हुई, यह भी देख रही थी कि

वह विपिन है, हाथ में पिस्तौल लिये है। दाँत भींचे है। अपनी आँखें चढ़ाये हुए है। वह सामने की धुँधली छाया को लक्ष्य कर, आगे बढ़ गया है। वह उसके देखते-देखते ही, उस दूर के अन्धकार में लोप हो गया। जहाँ से तत्क्षण ही, पिस्तौल की गोली का गर्जन हुआ। किसी मनुष्य का चीखता और आह भरता हुआ स्वर भी उसके कानों में गूँज उठा। तभी वेदना से भर, रजनी ने एकाएक स्वामीजी की ओर देखा। उसने कातर हुए स्वर में, बरबस ही कह दिया—'स्वामीजी, विपिन—विपिन बाबू—!'

स्वामीजी ने गम्भीर स्वर में कहा—'हां, बहू! विपिन अब कँटीले रास्ते पर है। उसके पैरों में खून है···हाथों में खून है! आत्माराम उसके लिये ऐसा नहीं चाहता। उसने यही लिखा है। यही उसने मुझे तुमसे भी कहने को लिखा है। तुम अपनी शक्ति लगाकर विपिन को रोक लो। मैंने तुम्हारा पति रोका, तुम विपिन को!' कहते हुए स्वामीजी ने मुस्कराते हुए, आत्माराम की माँ की ओर देखा।

माँ ने कहा—'उस घर का एक ही लड़का है। वह है, तो उस घर में चिराग जलता है।'

स्वामीजी बोले—'चिराग तो बहुत घरों के नित्य बुझते हैं,—आत्मा की मां! परन्तु विपिन जिस रास्ते पर चला है, वह गलत है। अव्यावहरिक है।' इतना कहते हुए, स्वामीजी ने फिर रजनी को लक्ष्य किया—'जो काम पुरुष नहीं कर सकते, उसे नारियाँ करती हैं। यह काम भी तुम्हारा है।'

किन्तु रजनी तो मौन थी। वह अतिशय विषम और दारुण बन गयी थी। उसकी आत्मा जैसे नुचने लगी थी। उसी समय माँ अन्दर गयी और स्वामीजी के लिए दूध लायी। दूध पीकर स्वामीजी चलने लगे। वह तभी हँसते हुए बोले—'आत्माराम की माँ, तुम्हारे आत्मा ने पत्र में यह भी लिखा है कि मैं तुम्हें और तुम्हारी बहू को युद्ध में योग देने के लिये कहूँ। मैं तुम्हें भी जेल जाने का निमन्त्रण दूँ।'

माँ ने कहा—'बहू के पास तो बच्चा है। कुमुद अभी छोटा है। हाँ, मैं हूँ, सो सदा की तरह आज भी आपकी आज्ञा के समक्ष सिर झुकाती हूँ।'

स्वामीजी ने अपने डण्डे को उठाकर, खड़े होकर कहा—'अच्छा, अच्छा! कभी सत्याग्रहियों के कैम्प में आना और देखना कि वहाँ हजारों युवक हैं, युवतियाँ हैं। वे सभी जेल जाने और कष्ट सहन करने के लिये सत्याग्रहियों में आ मिले हैं।'

माँ ने हर्षित बनकर कहा—'मैं जरूर आऊँगी। मैं रजनी को भी साथ लाऊँगी।' कहते हुए माँ ने स्वामीजी के पैर छू लिए। साथ में रजनी ने।

स्वामीजी द्वार की ओर बढ़ते हुए बोले—'वहाँ जरूर आना।'

माँ ने कहा—'जरूर, स्वामीजी!'

स्वामीजी चले गये। उनके जाते ही, माँ ने कहा—'अब स्वामीजी को भी अधिक नहीं रहना होगा। इन्हें भी जल्दी जेल जाना होगा।'

रजनी ने कहा—'जरूर!' वह बोली—'सचमुच, स्वामीजी देवता हैं। परम आत्मा हैं।'

यह सुनकर, माँ ने आनन्दित बन, अपूर्व उल्लास के स्वर में कहा—'स्वामीजी ने अपने जीवन को, अपने सुख को न कभी देखा, न पाया। इन्होंने बस जनता की सेवा करना अपना लक्ष्य बना लिया। अपना जीवन इसी निमित्त दे दिया, बहू!'

'अरे, विपिन बाबू आप—?' तभी हठात् द्वार पर आये विपिन को देखते ही रजनी ने कहा।

विपिन ने कमरे में प्रवेश करके माँ और रजनी को नमस्ते किया। रजनी ने पूछा—'अभी आए? घर से?'

विपिन ने बैठकर कहा—'हां, मैं घर से ही आया हूँ।'

माँ ने कहा—'तो परेशान क्यों है! दुबला भी हो गया है! क्या

कोई तकलीफ है ? बुखार—?'

'नहीं, अम्मा जी ! मुझे बुखार नहीं आया ।' विपिन ने साँस भर-कर कहा ।

'अच्छा, कपड़े उतार दो ! पानी भेजती हूँ, मुँह-हाथ धो डालो !' माँ के साथ रजनी भी उठी और विपिन को आदेश देती हुई, घर में चली गयी ।

विपिन ने कोट, पेंट और हैट खूँटी पर टाँग दिए । उसी समय माँ ने आकर कहा—'अभी स्वामीजी भी आए । तुम्हें मिले ?'

विपिन ने कहा—'हाँ, रास्ते में मिले, स्वामीजी ! कहते थे, आत्माराम स्वस्थ है । वह जेल में पढ़ता है ।'

पानी आया और विपिन ने हाथ-मुँह धो लिया । उसने खाना भी खा लिया । तत्पश्चात् वह एक किताब पढ़ने लगा । जब देर बाद रजनी कमरे में आई, तो वह विपिन के पलंग के पास हा, कुर्सी पर बैठ गयी । वह बोली—'अब मैं तुम्हें एक-दो दिन में ही नहीं जाने दूँगी । अब मैं तुम्हारी बात नहीं सुनूँगी । ऐसा भी क्या, तुम आते हो और झाँकी-सी दिखाकर चले जाते हो !'

रजनी से, बात सुनते ही, विपिन ने किताब बन्द कर दी । वह रजनी की ओर देखने लगा ।

रजनी ने फिर कहा—''विपिन बाबू, मुझे यह भी नहीं सूझता, कि जो रजनी तुमसे कहते-कहते थक गयी और अब हार गयी, तो बताओगे, तुम, जो-कुछ करते हो और सोचते हो, इसका अन्त क्या है ? अब तुम्हें जीवन के किस धरातल पर टिके रहना है ?'

यह सुनकर, विपिन ने उपेक्षा से हास्य-मिश्रित भाव में कहा—'भाभीजी, मैं न कुछ चाहता हूँ और न कुछ सोचता हूँ । मैं अपन लिए चिन्ता नहीं करता । मैं जिस धरातल पर टिका हूँ, अब उसे भी भूल गया । मैं उसकी वास्तविकता से भी दूर हो गया······।'

'यह तो और भी बुरा है ! घातक है !' रजनी ने कहा—'यह

तुम्हें शोभा नहीं देता। मुझे तुम्हारे जीवन का, तुम्हारी वास्तविकता का पता है।'

'तुम्हें पता है न ? बताओ, वह क्या है ?' मानो चौंककर विपिन ने कहा।

किन्तु रजनी ने कमरे की खिड़की से बाहर के नीलाम्बर को देखते हुए कहा—'हां, विपिनबाबू ! अब तुमने जो कुछ करना चाहा, और किया, उसका मुझे भी पता चल गया। तुमने एक सरल और निश्छल विपिन की आत्मा में जिस वधिक राक्षस को जन्म दिया, उसका मुझे पता है !' यह कहते ही, रजनी ने कुर्सी छोड़ दी। वह कमरे की खिड़की के पास जाकर खड़ी हो गयी। उसी समय नौकर कमरे में लैम्प जलाकर लाया। लेकिन रजनी का ध्यान उस ओर नहीं गया। नौकर चला गया। विपिन ने रजनी की पीठ के पीछे जाकर कहा—'भाभी—!'

सुनते ही, रजनी ने मुड़कर देखा। उसने विपिन की आँखों में अपनी आँखें डाल दीं। मानो उन्हीं आँखों में समाकर विपिन ने कहा—'बताओ, भाभी ! विपिन कैसा वधिक है—यह कैसा......।'

'तुम मुझसे भी झूठ बोलते हो, विपिन बाबू ! तुम अपने को मुझसे भी छिपाते हो !' मानो तड़पकर रजनी ने कहा—'ठीक तो है, यह भाभी कौन होती है, जो अपनी कह जाए और तुम्हारी अपनी निजी और छुपी हुई बातों को भी सुन पाए ! पर विपिन बाबू'—रजनी ने तुरन्त ही, विपिन की ओर देखते हुए कहा—'इसमें मेरा कोई स्वार्थ नहीं है। भला तुम्हारा है। इस भाभी की कोई चाहना नहीं !'

'तो—? तो, भाभी—?'

रजनी ने तुरन्त ही, बात पकड़कर कहा—'एक दिन स्वयं तुमने अपने को 'मेरा' बताया था और कहा था कि मैं तुम्हारा हूँ। तुम्हारा अपना ही एक ! सो, उसी आधार पर आज पूछ लिया। लेकिन मुझे दीखा कि तुम्हें इतना सुनकर अच्छा नहीं लगा।'

'तुम्हें क्या हुआ है, भाभी ! तुमने क्या सोचा है ! बताओ तुमने क्या सुना ?' अधीर स्वर में जल्दी से विपिन ने कहा।

रजनी ने वहाँ से जाते-जाते कहा—'कुछ नहीं ! कुछ नहीं !'

'कुछ नहीं !' रजनी के द्वार से बाहर होते ही, विपिन ने व्यस्त भाव में अपने-आप कहा। वह बाहर की ओर देखने लगा। जहाँ अन्धकार था और रात का प्रथम प्रहर आकर उपस्थित हो गया था।

तदन्तर ही, रजनी जब फिर लौटकर आई, तो उसने कमरे के द्वार पर आते-आते देखा कि विपिन कोट पहन चुका है और सिर पर हैट रखकर अपनी पिस्तौल में गोली भर रहा है। जब वह उसे जेब में रखकर बाहर चलने लगा, तो रजनी ने बड़े पटु ढंग से अपने को द्वार की आड़ में कर लिया। विपिन जैसे ही, बाहर निकला तो रजनी ने भी घर से बाहर निकल, उसके पीछे चलना आरम्भ कर दिया। उस क्षण सचमुच ही, रजनी भूल गयी कि वह उस घर की बहू थी। जिसकी मान-प्रतिष्ठा उस गाँव में सर्वश्रेष्ठ थी। उस घर की बहू इस प्रकार रात के अँधियारे में घर से बाहर नहीं निकल सकती थी, किन्तु विपिन शून्य पथ पर बढ़ रहा था और रजनी चुपचाप ही, अपने हृदय की धड़कन बन्द किए, उसके पीछे-पीछे चली जा रही थी।

: ३३ :

उस अवस्था में चलते-चलते रजनी के मन में कई बार आया, कि वह लौट जाये। माँ सुनेगी, तो क्या कहेगी ! कोई देख लेगा, तो क्या समझेगा ! और यह विपिन कहाँ जाता है ? इसका लक्ष्य कहाँ है ? वह आवाज दे ले। विपिन को रोक ले। उसी समय चाँद निकल

आया। जंगल में प्रकाश हुआ। उसने देखा, सामने दो व्यक्ति हैं। वे बैठे हैं। विपिन उन्हीं के पास जाकर रुक गया। वह भी बैठ गया।

इतना देखते ही, रजनी के मन में अपूर्व जिज्ञासा पैदा हुई। वह यह जानने के लिये चंचल बन गयी कि ये व्यक्ति कौन हैं ? विपिन से क्या सम्बन्ध है ? यह तो शहर का वासी है। इस गाँव के किसी आदमी को भी नहीं जानता। और ये आदमी देहाती नहीं; शहरी हैं। जवान हैं। रजनी चुपचाप ही, झुकती हुई, उनके समीप पहुँच गयी। वह खेत के डौले की आड़ में बैठ गयी। उसी समय विपिन कह रहा था—'स्वामीजी को पता है। उनसे किसीने कह दिया है।'

'तो यहाँ क्यों आये, तुम ? यहाँ आत्मा बाबू का घर है। इस घर पर पुलिस की निगाह है। तुम दूर जाओ। तुम यहाँ से कहीं अन्यत्र चले जाओ, विपिन बाबू !'

इतना सुनकर, विपिन चुप रह गया। वह तब अपना मुँह उठाये, खिलते हुए चन्द्रमा की ओर देखने लगा।

उनमें से एक ने फिर कहा—'यहाँ के रेलवे स्टेशन पर भी पुलिस का पहरा है। कदाचित पुलिस को भरोसा है कि यहाँ भी किसी का आना-जाना रहता है। यहाँ आत्माराम का मकान है।'

'तुमने और क्या सुना ?' विपिन ने उसी व्यक्ति से पूछा।

'और कुछ नहीं। अभी पुलिस को इस बात का पता नहीं चला कि खून तुमने किया।'

'बस ठीक है ! कुछ और सुनो, तो बताना ? मैं यहाँ कल दिन भर रहूँगा। मैं यहाँ से कल रात को चलूँगा। अब आप लोग जायें।' विपिन ने कहा।

वह दोनों व्यक्ति उठ लिये। वह विपिन को नमस्ते कर फिर उसी रास्ते पर आगे बढ़ गये। विपिन लौट पड़ा। वह कुछ ही देर में फिर कमरे में आकर बैठ गया। बाद में रजनी ने घर में से आकर कहा—'कहाँ गये थे, विपिन बाबू ? क्या बाहर ?'

विपिन ने बाहर की ओर देखते हुए कह दिया—'बाहर गया था।'

'तो दूध लाऊँ ?' रजनी ने पूछा।

'दूध !' कहते हुए विपिन ने रजनी की ओर देखा। और रजनी मुस्करा रही थी। वह अपने होठों पर भीनी-भीनी मुस्कान लाकर आँखों से हँस रही थी और उसी की ओर देख रही थी। वह जैसे जीवन में पहली बार उस तरुण और एकाकी विपिन में खोज रही थी कि यह कहाँ शिथिल है। इसके जीवन में वह कौन-सा स्थल है, जो कमजोर है और झुक सकता है,—झुकाया जा सकता है !

रजनी की उन कलात्मक और भावपूर्ण आँखों को तनिक देखने के बाद ही, जब विपिन ने दूसरी ओर देखा, तो बरबस उसने कहा—'भाभी—'वह रुक गया। वह जो कुछ कहने चला था, उसे नहीं कह पाया।

रजनी ने कुछ और उसके समीप होकर कहा—'विपिनबाबू, कैसे चुप हो गये। तुम कुछ कहते-कहते रुक गये।'

विपिन ने बाहर की चाँदनी को देखते हुए, होठों से हँसकर कहा—'कैसी चाँदनी है ! कैसी सलोनी और भली रात है। और तुम अकेली हो···तुम आत्मा भाई से दूर हो···तुम······!'

'विपिनबाबू !' वह बोली—'तुम रजनी को अकेली समझते हो। क्या तुम नहीं···माँ नहीं···कुमुद नहीं ! क्या तुम अपने को इस रजनी से दूर मानते हो !'

यह सुनते ही, विपिन ने रजनी के हाथ पर अपना हाथ रख दिया। वह जैसे बे-जाने रखा गया। किन्तु उसने वह हाथ नहीं हटाया। मानों उसे अपूर्व आनन्द आया। वह रजनी की हँसती हुई आँखें देखते हुए बोला—'हां, भाभी, तुम मेरे सामने हो। मेरे पास हो। तुम एक देवी-रूपा, इस जगत् की सुन्दर और अनुपम नारी हो। तुम जब सजती हो, अपना शृङ्गार करती हो, तो तब, जाने कितनी अलभ्य और सुखकर दिखायी देती हो, सच, भाभी ! तुम महान हो, गौरवमयी !'

विपिन से अपनी प्रशंसा सुनी, तो रजनी ने हँसा। उसने विपिन

को देखा।

विपिन ने फिर कहा—'जब मैं अशान्त होता हूँ, जब मैं अपने अन्दर-ही-अन्दर खिंचता हूँ, तो तभी-तब तुम्हारे पास आता हूँ। मैं तुम्हें देखकर शांति पाता हूँ।'

उस समय रजनी मौन थी। उसकी आँखें बन्द!

विपिन कहने लगा—'भाभी, तुम्हारे जीवन में जो मधुर तत्व है, जो एक सुखदायी गीत भरा है, वह भला किसको नहीं भाएगा! यह विपिन उसी को सुनने आता है। तुम्हें देखने!'

'विपिन बाबू!' तभी रजनी ने बाहर की ओर देखते हुए कहा—'मुझे दिखता है, अपने भाई की तरह, तुमने भी कवि बनना पसन्द किया। तुम्हें भी अलंकारों में आनन्द आता है। और कैसी बात है कि जब तुम अशान्त और अस्थिर होते हो, तो तभी, मेरे पास आते हो! मैं कहती हूँ, आज ही बताओ, तुम कौन-से धरातल पर टिके हो? तुम कैसा सुख देखते हो? निश्चय ही, तुम भ्रान्त बने हो!'

विपिन ने बाहर की ओर देखते हुए कहा—'मैं नहीं समझा, भाभी!'

'तुम नहीं समझे!' तभी रजनी ने अपने स्वर को और अधिक मृदु बना कर कहा—'तुम मुझे भी बनाते हो, मेरे रूप का झूठा बखान करते हो! तुम इस भाभी से झूठ बोलते हो! अपने को छिपाते हो!'

'भाभी—!'

'हाँ, विपिन बाबू! मैंने आज यही देखा। मैंने आज तुम्हारे मुँह से भी सुना। जो विपिन बाबू अभी-अभी गाँव से बाहर गये, दो व्यक्तियों से बात कर आये, वह अब कहते हैं, जरा बाहर गया था।'

सुनते ही, विपिन चीख पड़ा—'भाभी, तुम—!

'हां, मैं नहीं चाहती थी कि तुमसे कुछ कहूँ। तुम्हें इतना भी बताऊँ। किन्तु मैं नारी हूँ। मैं तुम्हारी तरह भारी अथवा रहस्यभरी नहीं हूँ। तुम एक अफसर को मारकर यहाँ आकर छिप सकते हो, अपने मित्र को भी फँसाने की चेष्टा कर सकते हो, परन्तु मैं तो हल्की और सरल

हूँ। तुम्हारी भी भाभी हूँ। मैं तुम्हें भी अपने अन्तर में स्थान दे सकती हूँ। और जब तुम कहते हो कि मैं रूप की परी हूँ, देवी हूँ, तो मन में हँसती हूँ। मैं तो तुम्हें छिपाये रखने के लिये इस घर के द्वार का पत्थर बन सकती हूँ। परन्तु तुम···तुम विपिन बाबू !'

विपिन उस समय अपने कोट की जेब में हाथ डाले हुये था। उसके माथे में बल पड़े थे। पसीना आ गया था। वह गर्मी अनुभव कर रहा था। जेब में पड़ा हुआ पिस्तौल उसके हाथ में था।

किन्तु उसी समय रजनी ने फिर कहा—'क्या यह हम लोगों के लिये खेद का विषय नहीं, कि तुम जो कुछ सोचते अथवा करते हो, हम न देख सकें। समझ भी न सकें। और फिर भी तुम हमें अपना कहते हो !'

उस समय, विपिन जाने कितनी तन्मयता तथा तीव्र दृष्टि के साथ रजनी को देख रहा था। वह जैसे निरा आशंकित हुआ उसकी बातें सुन रहा था। लेकिन रजनी ने उसे फिर टंकोरा—'बोलते क्यों नहीं, विपिन बाबू ! अब कैसे चुप हो ! मैं पूछती हूँ जब यह दुराव और छिपाव है, तो फिर आत्मीयता कहाँ ! जब तुम्हारे मन में ऐसा हिंसक भाव भरा है, तो अनुभूति का स्थान कहाँ ! तुम मारते हो और छिपते हो ! यह तो कायरता है ! जब ऐसी अवस्था है, तो क्यों नहीं इस मार्ग को छोड़ देते ! तुम अपने हृदय को समाज के समक्ष क्यों नहीं खोल देते···!'

विपिन ने कठोर स्वर में कहा—'तुम चुप रहो, भाभी ! तुम !' इतना कहते विपिन ने पिस्तौल निकाल लिया। पिस्तौल के मुँह को ठीक रजनी के सामने करके बोला— 'तुम यह सब कहोगी, इतना कहोगी····भाभी—!'

विपिन का वह अकल्पित रूप देखते ही, रजनी ने जाने कितने अटूट और स्थिर हुए भाव में कहा—'यह तो मैं सुन चुकी हूँ कि तुम इस पिस्तौल से काम लेना जान चुके हो। तुम इतना भी सीख गये हो। तो चलाओ,—तुम अपनी इस भाभी पर भी गोली चलाओ··· !'

किन्तु तुरन्त ही, फिर विपिन ने झल्लाकर कहा—'तुम मुझे छोड़ दो, तुम मुझे इस कमरे में अकेला रहने दो, भाभी ! बस एक रात के लिये !'

रजनी ने कहा—सो तो जानती हूँ कि तुमने रात भर के लिये ही यहाँ रहना पसन्द किया है। इस घर को तुमने सराय समझा है कि रात भर मुसाफिर ठहरेगा और सुबह होते ही चला जायगा !'

'तुम पहेली बुझाती हो भाभी ! तुम...!'

रजनी ने कहा—'मैं कहती हूँ कि तुम यह खून करना छोड़ दो ! तुम उस रास्ते का चलना भी त्याग दो !'

किन्तु विपिन क्रोध में था। वह बरबस अपने को रोके हुए था। उस समय वह और तेज बन गया। बोला—'तुम आत्माराम की पत्नी हो। उसे उपदेश दे सकती हो ! मुझे नहीं !'

यह सुनते ही, रजनी ने विपिन की ओर देखा। उसने उसे अधिक व्याकुल पाया। विपिन ने जो-कुछ कहा, उसका उत्तर नहीं दिया। उसने तब भी मृदु स्वर में कहा—'तुम्हें यही कहना था ! मुझे तुमसे यही सुनना था ! पर हुआ क्या ? तुम्हें इतना कहने से मिला क्या ?'

विपिन ने अपनी पूर्व अवस्था को स्थिर रखा। उसने अपने दोनों हाथों को ऊपर उठाया। जिस हाथ में पिस्तौल था, जाने कब का, अँगूठे से घोड़ा ऊपर उठ गया। जो अब उसके अँगूठे के नीचे खड़ा था।

उसी समय रजनी ने कहा—'मैंने जो कुछ आज तक नहीं समझा वह अब समझ लिया। वह तुम्हें देखकर समझा ! एक खूनी अपनी आत्मा को और अपने परमात्मा को भूलकर कितना विवेक-शून्य बन जाता है, यह मैंने तुम्हें देखकर जान लिया। तुम्हारी निर्लज्जता को भी समझ लिया। जी में आता है कि अभी पुलिस में जाऊँ और तुम सबके नाम बता आऊँ। तुम्हें गिरफ्तार करा दूँ ! तुम्हें.........!'

यह कहने के साथ ही, रजनी क्रोधित बनकर काँपने लगी। वह

सर्पिणी के समान फूत्कार करने लगी। वह कमरे से लौट चली। रजनी अभी द्वार पर ही पहुँची कि तभी पीछे जोर का धड़ाका हुआ। कमरे में पिस्तौल की गोली का धुआँ फैल गया। विपिन का सर दीवार से लगा था। उसके माथे से खून बह रहा था।

रजनी ने इतना देखा, तो जैसे, उसकी आँखों के समक्ष अँधेरा छा गया। उसका सिर चकरा गया। बरबस, उसके मुँह से चीख का एक हल्का स्वर निकल गया। लपककर उसने विपिन का सिर पकड़ लिया। उसे पलंग पर बैठाया। अपनी धोती का आँचल माथे के घाव पर रख दिया। उसने विपिन को लिटा दिया।

विपिन ने खिन्न स्वर में पुकारा—'भाभी—!'

'अरे, तुम इतने जंगली और हिंस्र बन गये, विपिनबाबू ! पागल कुत्ता भी अपने को काटने लगता है। वह भी अपने बदन पर जख्म करता है ! तुमने स्वयं अपना ही वध करना विचार लिया··· तुमने इतना भी··· ···!'

'यह सब बेसमझे हुआ, भाभी ! पिस्तौल भरा था।'

'हां, सो तो जानती हूँ। जब भेड़िया शिकार करने निकलता है, तो वह अपने दाँतों को तेज रखता है !'

'मेरा सिर बाल-बाल बच गया, भाभी !'

'पर जो कुछ हुआ, जितना हुआ, क्या यही तुम्हारे लिए पर्याप्त नहीं हुआ ! अब समझे तो, इस भार में कितनी पीड़ा है, व्यथा है !' यह कहते हुए, रजनी ने विपिन के सिर में पट्टी बाँध दी। जब वह फिर खड़ी हुई, तो विपिन को सुनाकर बोली—'तुम्हें शिक्षा देने के लिए इतना हुआ। कम नहीं हुआ।'

किन्तु विपिन मौन रहा। वह चुपचाप पड़ा रहा।

रजनी ने पिस्तौल जमीन से उठाया। विपिन से कहा—'यह पिस्तौल रखा है। उठा लो। जेब में रख लो।'

यह सुनते ही, विपिन ने आँखें खोलीं और रजनी की ओर देखा।

उसने होठों पर हल्का हास्य लाकर कहा—'तुम आज सभी कुछ कहोगी, भाभी ! तुम आज··· ···।'

'हाँ, मैं आज सभी कुछ कहूँगी, विपिन बाबू ! क्योंकि तुमने एक आदमी का वध किया है ! तुमने अपने को मुसीबत में डाल दिया। तुम बदलो, तो मैं अपने को भी तुम पर लुटा दूँगी। तुम्हारे एक ही संकेत पर··· ···!'

'भाभी, तुम······!'

रजनी ने बाहर की चाँदनी देखते हुए कहा—'यह तुम्हारे कहने की नहीं, मेर समझने की बात है, विपिनबाबू! तुम बदलो।'

किन्तु विपिन ने अटूट साहस और उद्वेग भरे स्वर में कहा—'नहीं, भाभी ! यह मेरे लिए भी है। तुम्हें जिस दिन से मैंने देखा, तो तुम्हें अपना आत्मीय समझा। विश्वास रखो, मैंने तुम्हें आत्माबाबू की पत्नी समझा है।'

रजनी खिड़की छोड़कर विपिन के पलंग के पास हो गयी। वह उसके सिर पर भरे मन के साथ हाथ फेरने लगी। वह तब विपिन की सीमा में ऐसी लीन हुई, ऐसी निरी जड़ बनी कि अपना सोना और कुमुद भी भूल गयी। रजनी यह भी भूल गयी कि माँ देर से उसकी प्रतीक्षा करती होगी। वह जाने क्या सोचती होगी···!

: ३४ :

जब बहुत रात गये रजनी अपने कमरे में गयी, तो वह बिस्तर पर पड़कर भी, नहीं सो सकी। उसने वह रात विपिन की चिन्ता में व्यतीत कर दी। उस अवस्था में उसे सुख भी मिला और दुःख भी। उसे बार-बार विपिन से यह सुना हुआ याद आया कि मैं तुम्हें आरा-

धना की देवी मानता हूँ। मैं तुम्हें अपने हृदय के सुरक्षित स्थान में रखता हूँ। मैं तुम्हें आत्माराम की पत्नी समझता हूँ।

अपना विवाह होने के बाद से, रजनी ने, आत्माराम के अनेक मित्रों और सम्बन्धियों से परिचय प्राप्त कर लिया था। उनके पास उठने-बैठने का अवसर भी पाया। किन्तु इस विपिन के प्रति आरम्भ से जैसी ममता और आत्मीयता का भाव उसने अपने मन में रखा, वह कभी घटा नहीं, उत्तरोत्तर बढ़ता गया। उस रात में भी उसने अनुभव किया कि विपिन सदा की तरह आज भी उसके पास है। उसका अपना है। देवर है। वह विपिन की भाभी है। और आज उसने अपने हृदय के सुकुमारपन का, हिंसक विपिन का भी परिचय दिया। जैसे विपिन अभी बच्चा है! निरा अजान! जो जानता नहीं, जिन्दगी का मर्म समझता नहीं! विपिन यह भी नहीं देखता कि यह रजनी जाने कैसे कच्चे धागे से बँधी है! यह नारीत्व के पराग में फँसी है। उसकी सुगन्ध से ही पुलकित बनी है! जो हवा के एक ही झोंके में उड़ती है ··· ··· वह सुगन्ध खोजती है ··· ··· इस रजनी का—धर्म और विवेक इसका प्रहरी है—इसका मार्ग-दर्शी! इनके विरुद्ध चलकर क्या यह जीवित रह सकती है,—कदापि नहीं!

लेकिन अपने मन की इस भ्रांति को रजनी ने देर तक नहीं रखा। उसने छोड़ दिया। उसने अपने-आप ही यह निश्चय कर लिया कि उसका काम है विपिन को रोकना। उसे बधिक बनने से बाधित करना! मानों यही रजनी की सफलता है। उसका त्याग है। परम लक्ष्य!

जब प्रातः हुआ और सूरज चढ़ गया, तो रजनी जाग कर सीधी विपिन के कमरे में गयी। विपिन कपड़े पहने हुए तैयार था। आत्माराम का मित्र रतनलाल उसके पास बैठा था। वह विपिन से बात कर रहा था। दोनों ही, गम्भीर मन्त्रणा में लीन थे। रजनी को देखते ही रतनलाल खड़ा हो गया। उसने हाथ जोड़कर कहा—'भाभी, नमस्ते!' वह हँसते हुए बोला—'बहुत सोती हो, भाभी! भैया आत्मा-

राम जेल गये, तो तुम्हें छूट मिल गयी ! माँ आई थीं, वह हमें दूध पिला गयीं। वही हमें बता गयीं कि तुम सो रही हो।'

रजनी ने रतनलाल की बात सुनी, तो हँस दिया। उसने कमरे से जाते हुए कहा—'रतनबाबू, मैं अभी आई !'

पीछे से विपिन ने कहा—'भाभी, हम जा रहे हैं। तुम्हारी प्रतीक्षा थी, तो अब अपने रास्ते पर चढ़ते हैं।'

इतना सुनते ही, रजनी ने कमरे के बाहर रुककर कहा—'हाँ, हाँ, मैं समझ गयीं। अभी आती हूँ। तब तुम्हारी बात सुनती हूँ।' रजनी चली गयी।

उसी समय, विपिन ने रतनलाल से कहा—'एक नारी क्या कुछ कर सकती है, वह कितनी शक्तिमयी है, यह मैं अब समझा हूँ। मैं इस भाभी को देखकर समझा हूँ।'

रतनलाल ने कहा—'यह भाभी देवी है। मुझमें इसी के लिये श्रद्धा उत्पन्न हुई।'

'लेकिन देखते हो, इन्हें जैसे हँसने के सिवा और कुछ नही आता। इन्हें और कुछ नहीं सूझता !'

रतनलाल ने कहा—'तुमने रात जो कुछ किया, बुरा किया। अच्छा नहीं किया।'

'हाँ, रतनबाबू ! मैं इसीसे, रात स्वप्न में जाग गया। मुझे दिखाई दिया कि पिस्तौल मेरे नहीं लगी, भाभी के लगी। वह भाभी की छाती में लगी।'

रतनलाल बोला—'छोड़ो ! छोड़ो ! सच, निरे अन्धे कहीं के ! ऐसा होता, तो तुमको, हमको—सभी को—कहीं मर जाना था ! वह तो हमारे लिये बड़ा कलंक होता। आत्माराम भले ही आज हमसे दूर हो गये हैं, परन्तु उनका सम्मान हमें सदा करना पड़ेगा। वह इसी योग्य हैं।'

विपिन बोला—'परन्तु भाभी ने जैसे मेरी अवस्था को देखकर

ही, इतना-सब कहा। बरबस मेरा मस्तिष्क झंकृत कर दिया। मुझे पागल बना दिया। इस भाभी में इतना साहस है, इसका मुझे रात ही पता चला।'

रतनलाल कुर्सी से खड़ा हो गया। वह खिड़की के पास जाते हुए बोला—'विपिनबाबू, तुम यह क्यों भूल जाते हो, यह नारी आत्माराम की पत्नी है। वह अपने पति की भावना और विचारों को ग्रहण कर चुकी है। रजनी अपने पति द्वारा बनाई और सँवारी गयी है।'

उसी समय वासन्ती रंग की साड़ी पहने रजनी कमरे में आई। आते ही वह कुमुद को रतनलाल की गोद में देकर बोली—'तुम आज बहुत दिनों में आए, रतनबाबू! माँ ने कहा है आप दोनों को खाना खाकर ही कहीं जाना है। पहले नहीं।'

रतनलाल ने कहा—'भाभीजी, हमें काम है। हमें अभी यहाँ से चले जाना है। बस, आपसे और माताजी से आज्ञा माँगनी थी।'

किन्तु रजनी ने मुस्कराते हुए कहा—'जो कुछ माँ ने कहा वह मैंने कह दिया।' इतना कहते ही उसने विपिन की ओर देखा और हँस दिया।

कुछ अन्यमनस्क भाव में विपिन ने कहा—'यह तुम्हारी बात है, भाभी! माँ की नहीं। हमें जाने दो।'

उसी समय माँ कमरे में आई। उसे देखते ही रजनी बोली—'तुम सुनती हो, माँ! विपिनबाबू कह रहे हैं कि हम जाते हैं। अभी जाते हैं। भला इनकी बात है कुछ! दोपहर होने आया, खाना खाने का समय हो गया और इन्हें जाना लगा है! जैसे गैर का घर है। इन्होंने यही रतनबाबू को पढ़ा दिया!' रजनी ने उस समय फिर रतनलाल की ओर देखा। बड़े भावुक भाव में मुस्करा दिया।

माँ ने कहा—'क्यों विपिन! न, भैया! आज मत जाओ। दिन भी अच्छा नहीं! और यह रतन तो जाने कब-कब में आज आ सका

है। जैसे रास्ता भूल गया। आत्मा नहीं है तो कोई भी नहीं आता। जैसे वही नाता रखता है।' वह बोली—मैं तो आत्मा की माँ हूँ, उसकी बहू है और खिलाने-खेलने के लिए उसका लड़का है। कहते हुए माँ ने रजनी से कहा—'जाओ, बहू! तुम खाना चढ़ाओ! कुमुद को यहीं खेलने दो। इसे अपने इन दोनों चाचाओं से भी बात करने दो। आज तो आए हैं, जाने कब-कब में आए हैं, ये चाचा बेचारे!'

विपिन ने कहा—'माँ, मैं भी!'

'अरे, हाँ, तू भी तो! तू ही कौन महीनों ठहरता है! आता है तो जैसे सिर पर पैर रखकर आता है और भाग जाता है!'

यह सुनते ही, विपिन हँस दिया। रतनलाल भी हँस दिया।

रतनलाल ने कहा—'अच्छा, माता जी! हम नही जायेंगे। आज तो जरूर नहीं जायेंगे।'

'और कल ही क्यों? यहाँ कुछ दिन रहो। गाँव की हवा लो, भैया! मेरी बहू भी अकेली है। दिन भर आत्मा की किताबों में लगी रहती है। आत्मा जेल क्या गया, घर सूना कर गया। बहू दिन-पर-दिन सूख चली है। अब यह पहले से आधी भी नहीं रही। मुँह से तो कुछ कहती नहीं, पर मन में तो इसके धुन लगी रहती है!'

उसी समय रजनी होठों से हँसती हुई घर में चली गयी। रतनलाल तब कुमुद के साथ खेलने लगा। वह कमरे के फर्श पर बैठ गया और बात-की-बात में जमींन पर औंधा होकर कुमुद के लिए घोड़ा बन गया। जिस पर कुमुद चढ़ गया। वह अपनी तोतली बोली में कहने लगा—'तिक्-तिक् घोरे···तिक्-तिक्···।'

और रतनलाल घोड़ा बना हुआ कमरे में चल रहा था और अपने सवार का आदेश यथाविधि पालन कर रहा था।

तभी माँ ने कहा—'अरे, कुमुद! चाचा को घोड़ा बनाता है, रे! नीचे उतर!'

यह सुनकर कुमुद तुनक गया—'ऊँ-ऊँ, मैं तो घोले पर चढ़ूँगा—

तिक्-तिक् !'

और माँ हँस रही थी, विपिन हँस रहा था। रतनलाल घोड़ा बना हुआ, अपने सवार की इच्छा के अनुसार दुलकी चल रहा था...... ।

: ३५ :

दोपहर होते-होते रतनलाल और विपिन ने भोजन कर लिया। जब उन्होंने गाँव से जाने के लिए माँ और रजनी से विदा माँगी, तो उन्हें कह दिया गया। रजनी ने विपिन से शीघ्र लौटने के लिए वचन ले लिया। दोनों चले गए। विपिन और रतनलाल को गए कई दिन हो गए। लेकिन उनमें से कोई भी नहीं आया। तभी एक दिन स्वामीजी का आदमी आत्माराम की माँ के पास आया। उसने स्वामीजी का पत्र दिया। जिसमें लिखा था कि आत्माराम जेल से जल्दी आ रहा है। वह स्वस्थ है। पत्र के अन्त में रजनी को सम्बोधित कर स्वामीजी ने लिखा कि उसने अपने पति की इच्छा का पालन नहीं किया। विपिन और उसके साथियों को उनके मार्ग से नहीं हटाया। रजनी ने ऐसा कोई प्रयत्न नहीं किया। विपिन गाँव में गया और फिर शहर पहुँच गया। वह अब अपने घर पर है। उसकी गति-विधि दिन-पर-दिन विषम बन रही है। वह घटनाओं के चक्रव्यूह में फँस रहा है। विपत्तियाँ उसके सिर पर हैं। रजनी चाहे तो शहर जाकर विपिन को रोकने का प्रयत्न करे। उसे फिर गाँव में लौटा लाए।

पत्र पढ़ने के बाद माँ ने रजनी की ओर देखा—रजनी ने माँ की ओर। उसने माँ के विचार को समझना चाहा। किन्तु माँ ने कहा—'बहू, मुझे ऐसा संगत नहीं लगता। तुझको अकेली शहर भेजना नहीं रुचता। आत्मा सुनेगा, तो क्या कहेगा !'

रजनी ने साँस भरकर कहा—'स्वामीजी ने अपनी इच्छा से नहीं लिखा। निश्चय ही, उन्होंने तुम्हारे पुत्र का संकेत पाकर ही ऐसा लिखा होगा।'

'तो आत्मा यही चाहता है?' तुरन्त ही माँ ने कहा—'जो काम वह नहीं कर सका, उसे अब तुझ पर छोड़ता है! आत्मा पागल है! वह जाने क्यों इन पागलों के पीछे पड़ा है!'

रजनी ने कहा—'अपनी पत्नी से कौन नहीं आशा रखता, माँ! कौन नहीं मदद माँगता! पत्नी का यही काम है। उसे पति की आज्ञा और आकांक्षा के सामने झुक जाना ही शोभता है।'

यह सुनकर माँ ने हर्षित बन, रजनी के सिर पर हाथ रखा। उसने कहा—'बहू, तू बड़ी समझदार है। तू मेरे घर का दीपक है। अच्छी बात है, तू जाना। तू कल जरूर शहर चली जाना। और कुमुद?'

'कुमुद तो तुम्हारा है, माँ! तुम्हारे पास रहेगा और खेलेगा।'

माँ हँसी। वह दूसरी ओर जाती हुई रजनी को अपार ममता और स्नेह-भरे भाव से देखती रही।

अगले दिन का प्रातःकाल आ गया। माँ ने मुख्तार के साथ रजनी को शहर भेज दिया। कुमुद अपने पास रख लिया।

संन्ध्या होते-होते रजनी विपिन के घर पहुँच गयी। विपिन घर पर ही था। वह अकस्मात् रजनी को देख, हर्ष और अचरज से भर गया। किन्तु जब रजनी ने बताया कि उसने कल स्वप्न देखा कि तुम बीमार हो, तुम बिस्तर पर पड़े हो, तो मैं चली आई। यह सुनकर विपिन हँस पड़ा। वह उस समय खाना खाकर कहीं जा रहा था। रजनी फूआ से मिली और उनसे बात करने में लग गयी। जब देर बाद विपिन फिर घर में गया तो वह रजनी से बोला—'अच्छा, भाभी! मुझे काम है। बाहर जाना है। शायद आज मुझे देर में लौटना है।'

रजनी उस समय केशरिया रंग की साड़ी पहने हुए, माथे पर

बिन्दी लगाए, माँग में सिन्दूर दिए ऐसी लगती थी कि जैसे नई दुल-हिन ! जैसे आसमान से परी उतर आई हो। विपिन की बात सुनते ही वह होठों से हँसकर बोली—'वाह, विपिनबाबू ! तुम खूब हो ! तुम भी बस, अपनी ही बात देखते हो। यह जानते हो कि भाभी आई है। तुम्हें देखने और मिल-बैठकर बातें करना चाहती है और तुम्हें बाहर जाना है। किसी काम से जाना है। मैं कहती हूँ आज न जाओगे, तो नहीं निभ पाएगा क्या ?'

विपिन ने विचलित बनकर कहा—'न, भाभी ! जरूरी काम है। मुझे जाना है।'

'तो ठहरो ! मैं खाना खा लूँ। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँ।'

'तुम !' विपिन ने आश्चर्य से कहा—'तुम्हे कहाँ चलना है ! तुम्हे मेरे साथ कहाँ-कहाँ फिरना है भाभी ! मैं स्वयं नहीं जानता कि मुझे कब वापिस आना है। जाने कितनी देर हो। कितनी दूर जाना हो !'

इतना सुना तो रजनी होंठ और आँखों से एक साथ हँस पड़ी। वह विपिन के और निकट होकर बोली—'मैं समझी, तुम मुझे साथ नहीं ले जाना चाहते। तुम मुझ पर विश्वास नहीं करते। अपना कोई भी गुप्त काम मुझे बताना नहीं चाहते।' यह कहते ही रजनी ने विपिन की ओर देखा। उसने तत्क्षण ही फिर कहा—'विपिनबाबू, मैं अब तक यह सुनती आई हूँ कि नारी माँ है, बहिन है, पर क्या कभी भी यह इसी प्रकार देखी और समझी गई है ! सच, मैं ऐसा एक दिन भी नहीं समझ पाई। न मैं देख पायी। और एक तुम हो, वैसे ही एक व्यक्ति, जो अपनी इस भाभी को महान कहते हो, अनुपम बताते हो ! इस रजनी को जाने कैसे-कैसे सुन्दर शब्दाडम्बरों से अलंकृत करते हो, तुम ! पर बताओ कभी अपने मन से—हृदय से—इसे ऐसा समझे भी ? न, कभी नहीं ! पर मैं बताए देती हूँ, मैं आज तुम्हारे साथ चलूँगी। मैं आज रात भर तुम्हारे साथ फिरूँगी। आज मैं भी तुम्हारे नित्य के जीवन को देखूँगी और समझूँगी......।'

विपिन उस समय स्तब्ध था। आकस्मिक रूप से रजनी ने जो कुछ कहा, वह मानो उसके लिए अकल्पनीय था। तभी कमरे की ओर जाता हुआ वह बोला—'तुम्हें चलना है, तो चलो! परन्तु मैं सोचता हूँ फूआ सुनेगी, तो क्या कहेगी! अच्छा यही है कि उससे पूछ लो।'

रजनी ने अपनी जगह खड़े-खड़े कह दिया—'यह मेरा काम है। वैसे फूआ भी इन्कार नहीं करेंगी। कह दूँगी।'

'अच्छा, खाना खाओ। जल्दी करो!'

रजनी रसोई घर में चली गयी। वहीं पर उसने फूआ से कहा—'मैं विपिनबाबू के साथ बाहर जा रही हूँ, फूआ! मुझे एक काम है। देर में भी आना हो सकता है।'

फूआ ने कहा—'तो रात में जायगी, बहू! कल मिल आना।'

रजनी ने कहा—'जिस व्यक्ति से काम है,वह सुबह नहीं मिलेगा। उसके बीबी-बच्चे बाहर चले जायेंगे।'

फूआ ने कहा—'अच्छा, अच्छा, चली जाना। जल्दी लौटना।'

खाना खाकर रजनी फिर विपिन के पास पहुँच गयी। उसे देखते ह बोली—'चलिये।'

विपिन चल दिया। वह दोनों बाहर खड़े हुए ताँगे में आ बैठे। ताँगा चल दिया।

रास्ते में विपिन ने पूछा—'आज तुमने क्या सोचा, भाभी? फूआ से क्या कहा?'

'जो मुझे कहना था, कह दिया।'

'तुम चालाक हो!' विपिन ने हँसते हुए कहा—'तुम्हें आज न छकाया, तो बात! तुमने जिस काम को सम्पादित करने का बीड़ा उठाया है, उसका मुझे पता है।'

यह सुनते ही, रजनी ने अचरज भरा मुँह बनाया—'कैसा बीड़ा! बताओ, तुम्हें क्या पता है! मैंने क्या करना चाहा?'

''ऊहुँक!' विपिन ने भी उसी प्रकार मुँह बनाकर कहा—'मैं

क्यों बताऊँ ! तुम बताओ।'

'यह लो ! जैसे कोई पहेली बुझाते हो। तुम भी अजीब आदमी हो !' रजनी ने विद्रूप के साथ कहा।

यह सुनते ही, विपिन ठहाका मारकर हँस दिया। उसने रजनी को चौंका दिया।

रजनी ने तुनककर कहा—'हँसते हो, बताते नहीं !'

'अच्छा, मैं ही पूछता हूं, तुम क्यों मेरे साथ आई हो ? तुम इस रात में मेरे साथ कहाँ चली हो ?'

'जहाँ तुम चले !' रजनी ने कहा—'क्या तुम घूमने नहीं निकले ? किसी से मिलने नहीं ?'

'अच्छा, अच्छा !' विपिन ने रजनी से कहा। वह तभी ताँगे वाले से बोला—'अरे, बस ! ले, पैसे।' कहते हुए वह ताँगे से उतर लिया। वह रजनी को साथ लेकर एक मोहल्ले में प्रविष्ट हुआ। कई गलियों के चक्कर काट कर, विपिन एक अँधेरे शून्यप्राय मकान के द्वार पर पहुँच, किवाड़ थपथपाने लगा। रजनी उसके पीछे खड़ी थी। वह उस बड़े मकान को नीचे से ऊपर तक देख रही थी। गली की नाली से आती हुई बदबू उसके दिमाग में चढ़ रही थी। साड़ी के छोर से रजनी ने नाक बन्द कर ली थी। वह कठिनाई से ऊपर को मुँह करके साँस लेती थी।

द्वार खुला। एक तरुण और सुन्दर युवती ने सामने आते ही, हाथ में ली हुई लालटेन के प्रकाश में विपिन की ओर देखा। उसका अभिवादन किया। उसने कहा—'आप, विपिन बाबू ! आइये ! आइये !'

विपिन ने पीछे की ओर देखकर कहा—'भाभी, आओ !'

रजनी को देखते ही, उस युवती ने विपिन की ओर देखा। उसने रजनी का परिचय पाना चाहा।

विपिन ने कहा—'यह भाभी हैं,—आत्माबाबू की पत्नी !'

'बाबू आत्माराम की पत्नी ! रजनी देवी !' उल्लास-पूर्ण स्वर में कहते ही, उस युवती ने रजनी की ओर देखा और कहा—'भाभीजी,

नमस्ते ! आज आपके दर्शन हुए, धन्य भाग मेरे !'

विपिन ने रजनी से कहा—'भाभी, यह कमलादेवी हैं। कालिज में मेरे साथ-साथ पढ़ी है।'

रजनी ने हर्षित बनकर कहा—'अच्छा ! तो आज दिखायी दीं ! तुमने पहिले भेंट नहीं करायी !'

विपिन ने कहा—'ऐसा अवसर नहीं मिल पाया, भाभी !'

द्वार फिर बन्द कर दिया गया। कमला के साथ विपिन और रजनी जीने के रास्ते ऊपर चढ़ लिये। वह एक कमरे में पहुँच गये। वहाँ जाते ही, कमला ने संकोच के साथ कहा—'आओ, भाभीजी ! यह गरीब का स्थान भी गौरवान्वित करो।'

रजनी ने कमरे में बिछी हुई चटाई पर बैठते हुए कहा—'हां, हां, कमला बहिन, तुम बड़े-बड़े शब्द जानती हो ! कालिज में पढ़ी हो ! पर देखती हो मुझे, एक गँवार को,—एक गाँव की रहने वाली को—फिर भी यह सब कहने चली हो ! भला ठीक है, क्या ! मैं गरीब-अमीर की बात नहीं मानती। मैं पैसे को आदमी से बड़ा नहीं समझती। भावना बड़ी मानती हूँ। उसी में भगवान पाती हूँ।'

हँसते हुए, विपिन ने कमला की ओर देखा। वह बोला—'तुम्हें बहुत सँभलकर बात करनी होगी, कमला देवी ! भाभी से मैं भी हार गया हूँ।'

कमला ने हँसकर कहा—'तुम पुरुष हो। तुम हार-जीत देखते हो। हम नहीं !'

'अच्छी बात है, मैं चुप हुआ। तुमने जो कई बार इनसे भेंट करने को कहा, सो आज वह पुराना कार्य, आनायास ही सम्पन्न हो गया।'

कमला ने रजनी की ओर देखकर कहा—'हां, भाभीजी ! मैं आप से मिलना चाहती थी। मैं इसके लिये आत्माबाबू से भी कह चुकी थी। और आप तो हैं ही भाभी, मेरी बुजुर्ग; भला मैं आपसे कैसे जीत सकती हूँ। ऐसी रात में, अपने ऐसे घर में देखकर, मैं निश्चय ही, एक

अलभ्य हर्ष अपने में पा सकी हूँ। आपको यहाँ देखकर संकोच भी करती हूँ।'

'नहीं, नहीं, कमला बहिन! यह कुछ नहीं। मैं तो जानती हूँ, यहाँ गाँव जैसी बात तो है नहीं, शहर की बात है। यहाँ न स्वास्थ्य-प्रद हवा है, न स्थान है। यहाँ तो मिट्टी से लेकर सोना तक एक ही काँटे पर तुलता है। और, हां—'

उसी समय विपिन ने बताया कि यह कमला शहर की एक पाठ-शाला में पढ़ाती है। उससे जीविका चलती है। अब अकेली है। माँ थी, एक मास हुआ कि वह स्वर्गस्थ हो गयी।

'तो अभी अविवाहित हैं?' रजनी ने पूछा।

'हां, अभी अविवाहित हैं।' विपिन ने कहा।

'यह बड़ी बात है!' रजनी ने कमला की ओर देखकर कहा—'यह विषय चिन्ता का है। तुम्हारे अकेलेपन का—!'

'न, भाभीजी! मैं संतुष्ट हूँ। मेरे लिए यही सार्थक है।'

यह सुनकर, क्षण भर रजनी ने विपिन की ओर देखा। उसने फिर कमला की ओर देखकर कहा—'शून्यता में शांति की व्यापकता है, —मैं इसे मानती हूँ। किंतु हमारा जीवन इस शून्यता को स्वीकर नही करता। कमला बहिन, तुम्हारा भी कोई साथी होता, तो शायद जीवन में सन्तोष और हर्ष मिलता।'

इतना सुनकर, कमला हँसी। वह विपिन की ओर देखने लगी।

रजनी ने फिर कहा—'कमलाजी, तुम मुझसे अधिक पढ़ी हो। लेकिन मैं पूछती हूँ, जब तुम किसी नारी की गोद में कोई बच्चा देखती हो, उसे हँसते और तुतलाकर बोलते पाती हो, तो तब, उसे क्यों अपनी गोद में लेना चाहती हो। तब तुम उस ओर से मुँह नही फेर लेतीं। निश्चय ही, ऐसे समय, तुम अपने में कोई अभाव भी पाती होगी। निःसन्देह, तुम भी अपने मानस की कथा-कहानी कहने की इच्छा रखती होगी।'

कमला ने हँसकर कहा—'भाभीजी, मैं कुछ नहीं चाहती। सच, कुछ नहीं!'

'मैं नहीं मानती! मैं इसे स्वीकार नहीं करती। मैं नारी हूँ। मैं नारी के हृदय की भावना और इच्छाओं को समझती हूँ, कमला बहिन!'

कमला ने अपनी बात का फिर समर्थन किया—'भाभीजी, यह पेट-भरों की,—राग-रंग देखने वालों की बात है! हम निर्धनों की नहीं।'

रजनी ने कुछ अप्रतिभ होकर कहा—'तुम जिस निर्धनता और अवशता को लेती हो, तुम समझो कि वह सत्य नहीं है। वह अपने-आप ही निर्मित नहीं। ऐसी स्थिति बनायी जाती है। इस प्रकार विवाह भी मुख्य और जीवन का एकांत प्रश्न नहीं है। यह भी धार्मिक और सामाजिक है। जब कभी हमारे मानस पर कोई बोझ पड़ता है और हमारा विवेक कुछ अव्यवस्थित बनता है, तो इसी परिपाटी का आश्रय लेना श्रेयस्कर माना गया है। तुम इससे बच सकती हो, बचो। तुम अवश्य अपने जीवन को दूसरी ओर ले जाओ। तब यह गँवार भाभी भी तुम्हें बधाई देगी। तुम पर अभिमान भी करेगी।' यह कहते हुए, रजनी रुक गयी। वह तुरन्त ही फिर बोली—'किन्तु यह सत्य नहीं है। सारभूत नहीं। निभता नहीं। हमें जीवन में साथी अवश्य चाहिए। कुछ अपनी कहने के लिए, कुछ उसकी सुनने के लिए! क्योंकि यह जीवन स्वयं सामाजिक है। यह अकेला नहीं है। ऐसा इसका स्वभाव भी नहीं।'

कमला उस समय हँस नहीं सकी। देखा, विपिन भी गम्भीर था। वह बाहर अँधेरे की ओर देख रहा था।

उसी समय, विपिन ने उठकर कहा—'अच्छा, तुम बैठो, भाभी! मैं अभी आया।'

'तो तुम कहाँ?' रजनी ने कहा—'मुझे आये देर नहीं हुई कि लेक्चर देने लगी! यह कमला भी क्या कहेगी कि अजीब है, यह भाभी! बात का बतंगड़ बना बैठी। विवाह की बात ले बैठी! पर तुम कहाँ चले?'

विपिन ने द्वार की ओर देखते हुए कहा—'इस मकान में और भी आदमी रहते हैं। उनमें एक मेरे मित्र हैं। मैं उनसे मिल आऊँ।'

'जल्दी लौटना !' रजनी ने कहा।

विपिन ने वहाँ से जाते हुए कहा—'हां, अभी आया, भाभी !' वह चला गया। पास के जीने से खट-खट करता हुआ वह ऊपर पहुँच गया।

विपिन के जाते ही, कमला ने कहा—'अच्छा, भाभीजी ! मैं चाय बनाऊँ।'

रजनी ने कहा—'नहीं, नहीं ! तुम बैठो। तुम अपनी बात सुनाओ।'

किन्तु कमला ने उठकर कहा—'हां, हां, मैं अभी आई, भाभीजी ! चाय तो जरूर बनाऊँ। मेरे पास मिठाई नहीं, तो गरम पानी ही तुमको पिलाऊँ !' इतना कहते हुए वह दूसरे कमरे में चली गयी। वह चाय बनाने में लग गयी।

तब अकेली होकर, रजनी ने एकाएक अस्थिर भाव में कहा—विपिन बाबू जरूर झूठ बोलते हैं। वह किसी काम से गये हैं। और यह कमला,—निपट अकेली, तरुण, सुन्दरी,—अविवाहित और विपिन बाबू की सहपाठिनी······!'

उस समय रजनी को सभी कुछ विचित्र लगा। जैसे एक पहेली—गूढ़ ! वह अवस्था विचार करने वाली समस्या भी प्रतीत हुई। किन्तु रजनी के मस्तिष्क में उस समय कुछ नहीं आया,—कुछ भी नहीं !

: ३६ :

लगभग आधा घण्टे बाद, कमला तश्तरी में मिठाई और चाय लेकर आई। वह उस सामान को रजनी के समक्ष रखकर बोली—

'आपका आतिथ्य नहीं कर पाई। न अच्छी जगह बैठा पाई!'

सुनते ही, रजनी ने दार्शनिक की तरह कहा—'कमला बहिन, गाँव और शहर में यही अन्तर है। आतिथ्य गैरों के साथ किया जाता है, अपनों के साथ नहीं। मुझे तुम्हारा स्नेह चाहिए। तुम मुझे 'भाभी' कहकर भी अपना नहीं समझतीं! मैं शहरातिन होती, तो कदाचित् इस चाय की भी आदी होती। तुमने व्यर्थ ही परिश्रम किया।'

कमला ने हँसकर कहा—'अच्छा, आज खा लो। चाय पी लो।' वह बोली—'आत्माबाबू मेरे लिये श्रद्धेय और गुरु हैं। आप उनकी पत्नी हैं।'

रजनी चाय पीने लगी। साथ में कमला भी चाय पीती हुई बोली—'आप जब पहिले यहाँ आई थीं, तो मैं तब बाहर थी। मैं अपनी बीमार माँ के साथ बाहर गयी थी। अभी एक दिन विपिनबाबू कहते थे कि वह जब भी गाँव जायेंगे, तो मुझे भी ले चलेंगे। सो, आज आप स्वयं ही, इस अँधेरे और सड़ाँद भरे घर में आगयी। आप—।'

'अब तुम मेरे साथ चलो!' रजनी ने चाय पीकर प्याले को रखते हुए कहा–'अपने स्कूल से छुट्टी ले लो। तुम जरूर कुछ दिन गाँव मे रहो।'

कमला ने कहा—'यह मिठाई खाइये!' वह बोली—'आपके साथ चलूँगी।'

'बस-बस पेट भर गया। रजनी ने कहा—'सच, तुम चलना! गाँव का आनन्द भी देखना! यहाँ का कोलाहल तो देखा, वहाँ की शांति देख पाना। गाँव की गरीबी का भी अनुभव करना।'

कमला ने कहा—'यह रसगुल्ला खाइये। मेरे कहे पर।'

रजनी ने हँसकर, तश्तरी से रसगुल्ला उठा लिया। वह खा लिया।

कमला ने उन प्यालों को उठाकर ले जाते हुए कहा—'मैं अभी आई। इन प्यालों को रख आऊँ। ऊपर भी हो आऊँ। विपिनबाबू को ले आऊँ।'

रजनी ने कह दिया—'हां-हां।'

'इतने आप कोई किताब देखिये, अखबार।' कहते हुए कमला चली गयी।

रजनी ने एक किताब उठाई, देखी। वह अंग्रेजी की थी। वह उसे नहीं पढ़ सकी। बस, उसका सरनामा देख सकी। सो, वह पुस्तक जहाँ से उठाई थी, वहीं रख दी। किन्तु जब दूसरी किताब उठाई तो वह हिन्दी में थी। उसे खोलते ही, रजनी ने देखा कि एक कार्ड-साइज की तस्वीर उसमें रखी थी। वह कमला और विपिन की थी। उस चित्र में विपिन खड़ा था, कमला कुर्सी पर बैठी थी। वह मुस्करा रही थी। रजनी ने यह भी देखा कि उस फोटो के नीचे विपिन ने अपना नाम और तारीख के साथ महीना और सन् भी लिख दिया था। रजनी बोली—यह विपिन के पढ़ने के समय का चित्र है,—कालिज के समय का। यह कहते हुए, उसने चित्र को किताब में पूर्ववत् रख दिया। उसने किताब को भी रख दिया। उसी समय उसने हाथ की हथेली पर ठोड़ी रखकर कहा—विपिन बाबू का यह नया परिचय है। उसने बाहर की ओर देखते हुए कहा—'यह आदमी बड़ा विचित्र है! यह जैसा बाहर से दिखता है, अन्दर से निखालिस वैसा ही नहीं है। यह गहरा है। इसका वास्तविक रूप और है, वह इस विपिन के हृदय की गहराई में छिपा है। यह कहते ही, रजनी ने चाहा कि विपिन आये और वह उससे घर चलने के लिये कहे। किन्तु विपिन तो ऊपर ऐसा गया कि जाकर बैठ गया। शायद चलना भूल गया। और यह कमला भी गयी, तो वहीं रम गयी! अभी तक नहीं लौटी!

इसी उलझन और ऊहापोह में पड़ी हुई, रजनी बैठे-बैठे ऊब गयी। वह खड़ी हो गयी। कमरे के द्वार पर जा खड़ी हुई। देखा कि मकान बड़ा था। उस अँधेरे में साँय-साँय कर रहा था। उस अवस्था में रजनी को लग रहा था कि जैसे वह एक भूत के समान खड़ा था। वह मकान निपट कंकाल और हड्डियों का ढाँचा दिखाई देता था। इस प्रकार वह मकान-रूपी भूत हँस रहा था और किलकारी मार रहा था! सच, वह

कितना भयावना था और कैसा काल रूप······!

उसी समय, रजनी बड़ी तीव्र झुंझलाहट के साथ अपने-आप बोली, विपिन नहीं आया ! अभी तक नहीं दिखायी दिया ! उसने चाहा कि आवाज दे। वह विपिन को बुलाये। तभी उसे ऊपर दिखायी दिया कि वह सामने कमरा है। उसमें कोई बोल रहा है। विपिन भी बोल रहा है। इतना देख-सुनते ही, रजनी ने लालटेन उठा ली और उसने ऊपर जाने का रास्ता देखा। फिर उसने लालटेन को कमरे में रख दिया। रजनी ने ऊपर जाने का विचार कर लिया। तत्क्षण ही, जब वह ऊपर पहुँची, तो उसने कमरे के बाहर से सुना कि कमरे में अनेक व्यक्ति हैं, वे सभी किसी विषय पर बहस कर रहे हैं। रजनी सोचती थी कि द्वार अन्दर से बन्द होगा। किन्तु जैसे ही, उसने किवाड़ों पर हाथ रखा, तो वे खुल गये। कमरे का प्रकाश रजनी के ऊपर आ गया। अनायास ही, रजनी ने सभी उपस्थित व्यक्तियों को देख लिया। किन्तु रजनी को देखते ही, सामने बैठे, रतनलाल ने खड़े होकर कहा—'भाभी, तुम—!'

रजनी ने उन सबकी ओर देखते हुए, अत्यन्त गम्भीर हुए स्वर में कहा—'हां, रतनबाबू, मैं !'

'आओ, आओ !' रतनलाल ने आगे बढ़कर कहा—'मैंने अभी सुना कि तुम आई हो। तुम नीचे बैठी हो।'

रजनी कमरे में बढ़ गयी। वह एक अन्य तरुण की ओर देखकर बोली–'मोहन बाबू तुम ! और यह श्रीरत्न भी !' उन सबसे नमस्ते लेकर, उत्तर देते हुए, रजनी तनिक मुसकरायी फिर रतनलाल को देखने लगी। उसी से बोली—'यहाँ आकर मैंने अच्छा नहीं किया। मैंने व्यर्थ ही, आप सबके कार्यक्रम में विघ्न पैदा कर दिया। आप बैठिये, चाहें तो, इन विपिन बाबू को मुझे घर पहुँचाने की छुट्टी दे दीजिए !'

मोहनबाबू नाम के तरुण ने कहा—'नहीं। भाभी ! बैठो। हम सोचते थे कि अभी नीचे जायेंगे और आपसे मिलेंगे।'

यह सुनते ही, रजनी अपने मधुर होठों से हँस पड़ी। वह रूप की परी जैसे उस समय उन पन्द्रह-बीस युवकों के मध्य साक्षात् आराधना की देवी बनकर उतर आई। वह पहिले ही उन सबके लिये मान्य थी। आत्माराम की पत्नी थी। किन्तु जब रजनी ने मोहनबाबू की बात सुनी, तो वह अपनी भावनामयी आँखों से उसे लक्ष्य करके बोली—'क्या यह मुझे बहकाने की बात नहीं है, मोहन बाबू! तुम सब मुझसे नहीं मिलते, तुम अवश्य ही, चुपचाप निकल जाते।' इतना कहा और रजनी ने कुछ अस्थिर और वेदना भरे भाव में रतनलाल की ओर देखकर कहा—'रतनबाबू, यहाँ आकर, सचमुच ही, मैंने अच्छा नहीं किया! यह तो मेरा अपराध सिद्ध हुआ। तुम्हारे भाई से मैंने एक बार सुना था कि इस प्रकार के अपराध का जो विधान है, वह मौत है। तुम्हारी गोष्ठी की जो व्यक्ति बातें सुन पाता है, वह निश्चय ही मौत पाता है। क्यों, ठीक है न? सो, यह तुम्हारी भाभी भी आज इसी दोष से पतित है। यह भी तुम्हारे विधान के अनुसार मृत्यु की अधिकारिणी है। यह भी—।'

'तुम क्या कहती हो, भाभी!' उसी समय रतनलाल ने कातर हुए भाव मे कहा—'तुम आत्माबाबू की पत्नी हो। तुम हम सबकी माँ हो। तुम इस गोष्ठी की पूजा के फूल हो, भाभी! तुम—'

'क्या तुम भी असंगत बात नहीं कहते, रतनबाबू!' रजनी ने नितान्त उद्विग्न हुए स्वर में कहा—'कैसी बात है कि तुम सभी जिसे पूजास्पद कहते हो, उसी से अपना भेद छिपाते हो! तुम उसीसे दूर रहकर, आपस की बात करते हो।'

उसी समय, कमला ने आगे बढ़कर कहा—'भाभीजी, यह मेरा दोष है। इस अपराध के लिए तो मुझे क्षमा करें।'

यह सुनते ही, रजनी ने कमला की ओर देखा। उसने जैसे कमला की आँखों के पीछे भी कुछ देखना चाहा। उसी ओर देखते हुए, उसने कहा—'कमलादेवी, मैं अब तक यह सुनती थी कि नारी ममतामयी

है,—नारी दयामयी ! पर मुझे दिखता है, तुम वह नहीं हो । तुम रूपवती हो, तुम शिक्षित हो, तुम अपनी उँगली के एक-एक इशारे पर इन युवकों में से किसी को भी नचाने की शक्ति रखती हो । लेकिन, तुम अपने उस गुण को भूलकर, इन पागलों की—जवानी के जोश भरे इन युवकों की—अन्धी दुनिया में स्वयं भी खो गयी हो । और जानती हो यह सभी मेरे पति के मित्र हैं । यहाँ जितने बैठे हैं, सभी मेरे हाथ की रोटियाँ खाकर आये हैं । मुझे भाभी कहकर आये हैं । मेरे बच्चे को अपना 'बेटा' कहकर सम्बोधित कर आये हैं । परन्तु आज मैं इनके नगर में आई, तो ये मुझसे मुँह छिपाते है। मुझसे दूर रहना पसन्द करते हैं । भला क्यों है ? ऐसा किसलिए है ? मैं जानती हूँ, कमला देवी ! ये सभी खूनी बनने का स्वप्न देखते हैं । यह शासित का खून करके ही, देश को स्वतन्त्र करना चाहते है । वही तुम ! नारी बनकर भी और दयामयी होकर भी तुम यही चाहती हो । तुम निश्चय ही, इनसे एक दिन भी यह नहीं कह सकी कि स्वतन्त्रता प्राप्ति का पथ यह नहीं है । वह और है । वह प्रेम और सहानुभूति से प्राप्त होता है । जनता-जनार्दन की झोली में अपने को खून से लथपथ बनाकर डाल देना ही देशभक्ति नहीं । वह सार्थक नहीं । हमारे लिए प्राप्य भी नहीं ।' यह कहते रजनी के मन का रोप जैसे मुँह पर उतर आया। आँखों पर भी तैर आया ।

उसी समय, रजनी ने रतनलाल को सम्बोधित किया—'भाई, आप जब-जब गाँव गये हैं, तो तब-ही-तब, मुझे एक होनहार और उन्नति के पथ पर जाते हुए दिखाई दिये । लेकिन आज देखती हूँ, तुम्हारे मन में कुछ और है । मैं यह तो नहीं कह सकती कि तुम्हारा आदर्श देश-सेवा नहीं । त्याग नहीं, वलिदान नहीं । मेरा आज भी यह मत है कि जो व्यक्ति देश के लिए अपने-आपको ज्वाला की भट्टी में झोंकता है, वह सबसे बड़ा देशभक्त है। जो युवक अपने प्राणों की आहुति माँ के चरणों में अर्पित करता है, अपना रुधिर अञ्जलि भरकर भेंट करता है, वह

महान् है। वह बलिदान अजेय है। अक्षत है। किन्तु इस देश को जिस भावना की आवश्यकता है, वह और है। देश का गन्दा वातावरण इस प्रकार दूर नहीं होगा। स्वतन्त्रता का स्वरूप भी नहीं दिखाई देगा। समाज का छल और फरेब बढ़ गया है। इस देश में भाई ही भाई को मारता है। देश पतित है। दूषित है। आप वही जीवन दें। रचनात्मक कार्य पर बल दें। गाँव में जायें! लोगों को स्वतन्त्रता, जागृति का मन्त्र प्रदान करें। आप अपने जिस रुधिर का दान देने के लिए आतुर हैं, उसका महत्व भी इस देश को समझने दें।'

रतनलाल उस समय अतिशय गम्भीर था। रजनी की बात सुनकर बोला—'भाभी, तुमने हमारा रास्ता समझ लिया। आज सभी कुछ देख लिया। निःसन्देह, हमने यही पथ चुना है। जिस सर्प ने देश को डसा, उसको मारना हमारा उद्देश्य है। सर्प को दूध पिलाना इस देश की पुरानी परिपाटी है। परन्तु सर्प तो बढ़े। जहरीले बने! उनसे मरने वालों का संख्या भी बढ़ती गयी। अतएव, हमारी इच्छा है कि यह चिर परम्परा अब मिटा दी जाये। सर्प मार दिया जाय!' वह बोला—'भाभी, इस मानव ने जिस पूँजीवाद का, साम्राज्यवाद का निर्माण किया, ऊँचे-ऊँचे महलों में सुरक्षित बैठना पसन्द किया, उसीके निकट मानव का हा-हाकार और चीत्कार भी बढ़ता गया ··· चारो ओर परिव्याप्त हो गया। देखती हो, इन्सान तड़प रहा है! उसी की प्रस्फुटित ज्वाला के पतंगों से इस हिंसावादी समाज का निर्माण हुआ। हम जानते है, अहिंसा का पथ भी कम कठोर नहीं। परन्तु उसका आधार सहानुभूति है। और वह अमीरों, राजाओं से प्राप्त की जाती है। तो बताइये आप, क्या वे इतने सहृदय बन जायेंगे? अपने आराम को छोड़ देंगे? हमारा मत है, ऐसा कभी भी नहीं होगा। वे कुछ टुकड़े डाल देंगे और इन अहिंसावादियों को सोने के चमकते हुए सिक्के दिखाकर मौन कर देंगे······उन्हें अच्छे आश्वासन देते रहेंगे! अतएव, तुम हमें आशीष दो, भाभी! हम जिस पथ पर चले

है, उसी पर चलते रहें। हम देश के लिए मरते रहें। देश के समक्ष नया और अनुपम बलिदान उपस्थित करते रहें। आज हम सब मृत्यु और जीवन के मध्य खड़े हैं। मृत्यु की लपलपाती हुई जिह्वा हमारी ओर बढ़ रही है। किन्तु हम निडर हैं। मौत का पहले ही आवाहन कर चुके हैं। हमने उसे समझ लिया है। हम जानते हैं, मरकर भी हम नहीं मरेंगे। हम फिर उत्पन्न हो जायेंगे। फिर बलिदान देंगे। यों यह बलिदानों की परम्परा नहीं रुकेगी। माँ की प्यास निरन्तर ही बुझाई जायेगी ...... उसे इन्सानों के सिर भेंट किये जाते रहेंगे।'

रतनलाल बोल रहा था। वह रजनी के सामने बैठा हुआ जैसे नितान्त बालक के सदृश प्रार्थना कर रहा था। वह अतिशय गम्भीर था। आँखें चढ़ी थीं, माथे में बल पड़े थे। वह फिर कहने लगा—'भाभी, यह मृत्यु का सन्देश हमें सदा ही आकर्षित करता है। सचमुच, भगवान ही यह प्रेरणा प्रदान करता है। उस जगत्-नियन्ता का हम पर आशीष है। वह हमारे द्वारा अपना कार्य सम्पादित कर रहा है। वह हमें साधन-रूप पाकर ही, उत्थान और पतन, जीवन और मृत्यु की रचना कर रहा है। वह जैसे इस उपत्यका में स्वयं ही हिलोरें ले रहा है।' रतनलाल ने बाहर के तारों भरे आकाश की ओर देखते हुए कहा—'भाभीजी, तुम जिन आत्माबाबू की पत्नी हो, विश्वास करो, हम सब उन्हीं से दीक्षित हुए है। यह उन्हीं की देन और कृपा का फल है कि हमने भगवान को समझा......इस इन्सान को समझा। हम उनके आभारी हैं। आज वह दूसरे पथ पर हैं, वह हमसे पृथक् हैं। वह अब अहिंसावादी हैं। परन्तु उनका सरल स्नेह और आशीष सदा ही हमारे साथ है। हममें दम्भ नहीं। अपना स्वार्थ नहीं। हम देश के पूजक हैं। और तुम इसे अच्छा नहीं मानतीं। तुम हमारी बातें सुनकर सुख नहीं पातीं! मैं समझता हूँ कि तुम अत्यन्त दुःखी हो!'

यह कहते हुए, रतनलाल ने अपनी जेब से चाकू निकाल लिया। उसे खोल लिया। चाकू की उस तेज और चमचमाती धार को अपनी

बाँह में मारकर, खून निकालता हुआ बोला—'इसे भावुकता मत समझना, भाभी ! अपने इस रतन के रुधिर से लिख दो—रतन पापी ··· ··· रतन अन्यायी ··· ··· रतन खूनी और लुटेरा ··· ···!'

बात-की-बात में रजनी ने इतना देखा और सुना तो वह जैसे चौंक गयी। वह काँप गयी। उसने तुरन्त अपनी साड़ी का छोर फाड़ लिया और रतन की बाँह को पकड़ते हुए कहा—'ओह, तुम !' वह बोली—'सचमुच, तुम कठिन हो ! तुम दुष्कर हो !' उसने रतन की बाँह पर पट्टी बाँध दी और कहा—'तुमने इतना भी किया······ इतना भी कहा ! अफसोस, कि तुमने इस भाभी को इतनी तुच्छ और हीन समझ लिया !'

किन्तु रतन ने अपने मन की उसी अवस्था में रजनी के पैर पकड़ लिये और आतुर बनकर कहा—'भाभीजी, तुम पूज्या हो ! तुम हमारी माँ हो !'

यह सुनते ही, रजनी ने बाहर के गूढ़ अन्धकार की ओर देखकर कहा—'रतनबाबू, मैं कुछ नहीं समझी ! आज तुमने जो-कुछ किया, मैंने जो-कुछ देखा और सुना, वह सभी अनोखा और महान् !' और तभी उसने झटके के साथ, वेदनायुक्त बन, सभी की ओर देखकर कहा—'तुम सभी मेरे हो ! तुम सभी मेरे सखा हो ! मैं तुम्हें नहीं मरने दूँगी। मैं तुम्हें यह कृत्य नहीं करने दूँगी।' यह कहते हुए, रजनी ने रतनलाल को पकड़ लिया और कहा—'रतनबाबू, तुम देश के हो, तुम माँ के लाल हो। तुम लुटने और मिट्टी में मिलने के लिए निर्मित नहीं हुए। नहीं हुए,—रतन भाई !'

रतनलाल ने रजनी को अशान्त और विह्वल देखकर, शान्त स्वर में कहा—'अच्छा, भाभी ! आओ, चलें। तुम्हें घर पहुँचा दें। अब दो बजे हैं।'

रजनी खड़ी हो गयी। वह सभी के साथ-साथ नीचे उतर चली।

द्वार पर पहुँचकर रजनी ने कहा—'आप आराम करें। मेरे साथ विपिनबाबू हैं, चली जाऊँगी।' यह कहत हुए उसने कमला की

ओर देखा। उसने हँसते हुए कहा—'और कमला बहिन, तुमसे तो मुझे बहुत-कुछ कहना था। जब मिलोगी, तो कहूँगी।'

कमला ने कहा—'हां, भाभीजी ! मैं मिलूँगी, मैं जरूर आऊँगी।'

'और रतनबाबू तुम ? मोहन बाबू और सुशीलकुमार क्या फिर नहीं आयेंगे, उस गाँव की ओर ?'

'आयेंगे, भाभीजी ! क्यों नहीं आयेंगे।' सुशीलबाबू नाम के युवक ने कहा—'हम अपनी भाभी के हाथ की रोटियाँ फिर खायेंगे। अपने कुमुद को गोद खिलायेंगे।'

रजनी ने रतनलाल की ओर देखकर कहा—'मुझे तुमसे कुछ माँगना भी है। दोगे ?'

'भाभीजी, क्या—?' रतनलाल ने चकित बनकर पूछा।

रजनी बोली—'मुझे देखना है कि तुम लोगों ने क्या-कुछ किया। किन साधनों को अपने पास एकत्र किया।'

'अच्छा, अच्छा, तुम देखना, भाभी !'

'तो कल ? मैं तुम्हारी प्रतीक्षा करूँगी। मैं तुम्हारे साथ चलूँगी।'

'यह विपिन का काम है। इसे कल हमसे मिलना है।' रतनलाल ने कहा।

रजनी ने विदा ली और विपिन के साथ, उस गली से निकल, बाजार में पहुँच गयी। वह ताँगे में बैठकर घर की ओर बढ़ चली। उस समय रजनी प्रसन्न थी। इसके विपरीत विपिन मौन था। गम्भीर भी बना था। वह रजनी के पास बैठा हुआ भी, दूसरी ओर देख रहा था। वह बार-बार लम्बी साँसें भरता और छोड़ देता। उसी समय रजनी ने कहा—'विपिनबाबू !'

विपिन चौंक गया। वह रहस्यपूर्ण दृष्टि से रजनी की ओर देखने लगा।

रजनी ने हँसकर कहा—'क्या सोच रहे हो ? क्या किसी गहरी समस्या में उलझे हो ? कमलादेवी तो याद नहीं आईं ?' यह कहते ही,

रजनी ने हँसा। उसने उसी प्रकार हँसते हुए, विपिन की ओर देखा। जबकि विपिन पूर्ववत् मौन था। वह तब भी, रजनी को अपनी उन्हीं आँखों से देख रहा था। निःसन्देह, वह उस हँसती हुई और मुस्कराती हुई रजनी को जैसे सचमुच ही, समझने में असमर्थ हो गया था।

: ३७ :

दूसरे दिन दोपहर के बाद, रजनी को साथ लेकर विपिन घर से चल दिया। वह ताँगे में बैठकर, शहर के बड़े-बड़े बाजारों को पार करता हुआ, गंगा के किनारे पहुँच गया। वहीं पर ताँगा छोड़ दिया गया। दोनों पैदल ही गंगा के किनारे-किनारे चलकर, ऐसी जगह पहुँचे कि जहाँ से, पीछे छोड़ आये पेड़ों से शहर भी छुप गया। कपड़े की मिलों की चिमनियों का धुआँ आसमान में फैलता दीखता। इतनी देर में सूरज और नीचे हो गया। किनारे के उस उतार-चढ़ाव पर आगे बढ़ते ही, उन्हें एक नाव किनारे पर आती दिखायी दी। जब वह तट पर आ लगी, तो मल्लाह ने विपिन को नमस्ते की। विपिन ने रजनी से कहा—'आओ, भाभी! हमें उस पार जाना है।'

रजनी नाव में बैठ गयी। वह जंगल की ओर देख रही थी। उसी समय मल्लाह की ओर देखकर विपिन बोला—'कहो, रज्जू! तुम दुबले कैसे हो? कुछ अस्वस्थ हो?' और तभी उसने रजनी की ओर देखकर कहा—'यह रज्जू,—राजपालसिंह—हमारा साथी है। इसने इसी वर्ष बी. ए. किया। मल्लाह का काम इसने स्वेच्छा से लिया है।'

यह सुनने के साथ ही, रजनी ने उस रज्जू की ओर देखा। उसने जैसे फिर से उसे समझना चाहा। वह उस समय एक अभ्यस्त और निपुण मल्लाह के समान उपयुक्त पोशाक पहिने अपना काम सम्पादित

कर रहा था। उसके घोटों से ऊपर तक की धोती, सिर पर बँधा हुआ दुपट्टा, शरीर पर आधी बाँह की गाढ़े की मिरजई—इस वेष में वह कितना भला और अनुपम लग रहा था! इतना देखते ही, रजनी ने साँस भरी। उसने गंगा की धार देखी। दूर तक फैला हुआ जल। उसी अवस्था में उसने कहा—ये युवक जब प्राण देने पर तुले हैं, अपना-अपना कर्त्तव्य निभा रहे हैं, तो तब भी भारत माता परतन्त्र रहेगी··· नहीं! हर्गिज नहीं! ये नौजवान देश के दीपक हैं। प्रकाश-स्तम्भ हैं। यह देश का अन्धकार जरूर दूर करेंगे! और वह रज्जू मुस्करा रहा था। गंगा की तरंगों के समान, जैसे उसका मानस भी तरंगित हो रहा था। अभी मुश्किल से बीस-बाईस वर्ष का होगा। गोरा और सलोना युवक। रजनी ने जब उसे फिर देखा, तो उसने साँस भरी। उसने गंगा की ओर देखकर कहा—ये सभी खिले और अधखिले फूल भारत माता के चरणों में चढ़ जायेंगे···ये अपने गरम और लाल रुधिर से माँ के चरण पखारेंगे! ये देश के गौरव! ये भारत के भाग्य! ये युवक पतंगों के समान अपने को देश के अर्पण कर देंगे!

उस समय विपिन का ध्यान गंगा की ओर था। वह होठों से सीटी बजा रहा था। सिर पर रखे हुए हैट को उसने टेढ़ा कर लिया और टाँगें फैलाये वह उस समय स्वस्थ तथा प्रसन्न बना था। वह गाने लगा—

इन लहरों के उस पार—
हमारा जीवन···इन लहरों के उस पार!
इन लहरों का गहरा तल है,
जल भी कितना अगम अतल है,
ओ माँझी! ले चल पार!
हमारा जीवन····इन लहरों के उस पार!

गीत गाते-गाते उसने रजनी की ओर देखा। हँसकर बोला—'क्या सोचती हो, भाभी? तुम क्या देखती हो?'

और विपिन का गीत सुनते हुए, रजनी के मन में आ रहा था कि वह इस विपिन के चरणों में अपना सिर झुका दे। भला यह कितना निर्द्वन्द्व है, कितना निश्चिन्त है! इसने खून किया है। शासन की समस्त शक्ति इसकी खोज में है। फाँसी का फंदा इसे निमन्त्रण दे चुका है। और यह तब भी,—तब भी—

किन्तु उस अवस्था में ही, जब उसे विपिन ने टंकोरा, तो वह चौंक गयी। हतप्रभ बनकर विपिन की ओर देखने लगी। वह बरबस, मुस्करा भी पड़ी।

विपिन ने कहा—'मेरे मन में आया कि भाभी यह न सोचे कि यह विपिन कैसा है कि जो शहर से इतनी दूर, इस जंगल में ले आया। अब जाने कहाँ ले जाने वाला है!' कहते हुए वह हँस दिया।

रजनी ने इतना सुनकर भी, मन्द-सा हँस दिया। उसने उसी भाव में विपिन और रज्जू को लक्ष्य किया।

रज्जू ने कहा—'मुझे अभी रतनबाबू ने बताया कि आज मुझे अपनी किस माननीय भाभी को नाव पर बैठाकर पार उतारना है।'

'अरे, हां, तो तूने भाभी का परिचय पा लिया? मैं तो कहना भूल ही गया!' सुनते ही विपिन ने कहा।

रज्जू ने हँसकर कहा—'हां, नहीं तो! यह नाव का खिवैया इतना भी न जान पायगा कि वह बाबू आत्माराम की पत्नी को उस किनारे पहुँचा रहा है। लो, उतर जाओ। किनारा आ गया।'

उसी समय रजनी ने खड़े होकर रज्जू की ओर देखा और मुस्कराते हुए कहा—'तो तुम मुझे जान गये, सचमुच?'

'हाँ, भाभीजी! मैं भी आपको जान गया। आज दर्शन करने मे सफल हो गया।'

'अच्छा, अच्छा! मेरे अच्छे रज्जू! तुम बड़े भले हो। तुम बड़े हँसोड़!'

यह सुनकर रज्जू हँस दिया। वह तब निरा विनयशील बन क

मुस्कराकर रह गया।

विपिन ने नाव से उतरकर कहा—'अच्छा रज्जू, हम जल्दी लौट आयेंगे। तुम यहीं मिलना।' और वह रजनी को साथ लेकर जंगल में घुस गया। कुछ दूर पर, पेड़ों के झुरमुट में एक मकान था। उसी के गुप्त द्वार पर जाकर, विपिन ने मुँह से सीटी बजाई। द्वार खुल गया। उसी द्वार से वह रजनी को साथ लिए एक तहखाने में पहुँचा। जिसके बाद ही, एक बड़ा हॉल था। वहाँ जाते ही, रजनी ने देखा कि पचास-साठ युवक थे। वे किसी विषय पर बहस कर रहे थे। विपिन और रजनी को देख, वे सब-के-सब खड़े हो गये। उनके सामने एक तख्त बिछा था, रजनी को उसी पर बैठाया। रजनी ने एक-एक कर सभी को देखा। उन्हीं में कमला को देखकर, रजनी ने न तो आश्चर्य दिखाया और ना ही, उसे कोई संकेत किया। उस युवक-समाज के बीच में, अपने को देखकर और उससे सम्मान पाकर, रजनी को एकाएक लगा कि जैसे वह निरी तुच्छ और हीन बनकर भी उस नारी-रूप में, व्यर्थ ही, उस समाज के द्वारा सम्मानित हुई! वह उन सबके समक्ष आदरणीय हुई…।

उसी समय, रतन ने खड़े होकर, उन युवकों को सम्बोधित किया—'आप सभी अपने सम्मानीय अतिथि का परिचय जानते हैं। आप यह भी जानते हैं, इनके जो पति हैं, वह आज समूचे देश के गौरव हैं। ऐसे व्यक्ति की पत्नी को हम अपने बीच में पाकर, हर्ष और सुख का अनुभव करते हैं।'

रतनलाल ने आगे कहा—'यह सम्भव है, हमारे विचार से रजनी देवी सहमत न हों। आपके पति भी आज असहमत हैं। यह तो अपनी-अपनी दिशा है। किन्तु लक्ष्य सभी का एक है। मेरा रजनी देवी से यह निवेदन है कि हमें आशीष दें कि हमारा लक्ष्य पूर्ण हो।' रतनलाल बैठ गया।

उसी समय रजनी ने अपना मुँह उठाया। उसने रतनलाल की

ओर देखकर कहा—'रतनबाबू, अपने साथियों और सहयोगियों के समक्ष जिस प्रकार मेरा परिचय दिया, कदाचित् मैं इसके लिए योग्य नहीं ! मैं भाषण भी नहीं दे पाती। आपने मेरे अनुरोध की रक्षा की, इसके लिये मैं आभारित हुई।' उसने सभी को लक्ष्य किया और कहा—'हिंसा और अहिंसा के प्रति मेरा अधिक ज्ञान नहीं। क्योंकि घर को छोड़कर, मेरा और कार्य क्षेत्र भी नहीं। किन्तु नारी के रूप में,—दुर्बल और ममतामयी नारी के रूप में—मैंने जो निश्चित किया, वह यहाँ कहना शायद संगत नहीं दीखता ! वह आपको पसन्द भी नहीं आ सकता ! मैं अपने को धन्य मानूँगी कि जब आप में से किसी को भारत माता के चरणों में समर्पित हुआ देख, उसकी माँ, बहिन अथवा पत्नी के समान, मेरी आँखों के आँसू भी उसके चरणों में अर्पित हो पायें !'

रजनी कह रही थी—'यद्यपि मैं हिंसा को स्वीकार नहीं करती। परन्तु जो युवक देश के लिये अपना विसर्जन करता है, वह महान् है। मैं ऐसे बलिदान को प्रणाम करना नहीं भूल सकती। किन्तु, मेरी यह एक कठिनाई है कि हिंसा को जीवन का—किसी एक परम लक्ष्य की प्राप्ति का आधार भी नहीं स्वीकार करती। मैं नहीं सोच पाती कि अपने सिद्धान्त तथा अपनी वस्तु को प्राप्त करने के लिये इतना गुरुतर अपराध किया जाये कि व्यक्ति मार दिया जाय···उसे इस धरती से उठा दिया जाय ! हो सकता है कि यह मेरे हृदय की दुर्बलता हो। लेकिन अपनी अन्तरात्मा के जिस प्रकाश में, यह मानव, देर से जीवन का अध्यात्म, जीवन का दर्शन और जीवन का परम ध्येय देखता आया है, वह क्या इस प्रकार की हत्या करके भी देखा जा सकता है ? मेरा मत है, शायद नहीं ! खून करके नही ! हमारा विवेक ऐसी आज्ञा नहीं देता। कदाचित् इसी हेतु हमारे पुरखों ने अहिंसा को बल दिया। मेरा अपना यह भी निश्चित मत है कि इस प्रणाली का आविष्कार बुद्धिवाद की सबसे प्रखर और उज्ज्वल दिशा में हुआ। राम, कृष्ण, बुद्ध, और ईसा आखिर क्या थे ? केवल परम बुद्धि का चमत्कार करके ही तो

उन्होंने भगवान् का पद प्राप्त किया ! बुद्धि ने हिंसा को प्रश्रय नहीं दिया। आत्मा ने उसे स्वीकार नहीं किया। यह विश्व खून की नदियाँ बहाकर शांति नहीं प्राप्त कर सका।'

एक युवक ने खड़े होकर कहा—'आप अहिंसा का आदर्श मानती हैं। लेकिन क्या इस प्रकार अंग्रेज इस देश से जा सकते हैं ?'

रजनी ने उस युवक को देखा। तनिक मुस्कराया—'भाई, मैंने तो कहा, मैं जाति की नारी हूँ। स्वभावतः ही, मैं अहिंसावादी हूँ। लेकिन मेरा यह भी मत है कि अंग्रेज क्या, संसार की और कोई हिंसक जाति भी हमारे इस प्रयोग से प्रभावित हो सकती है।'

उसी युवक ने फिर खड़े होकर कहा—'तो क्या हम समझें कि आप हमें अपना प्रयोग स्वीकार करने के लिये कह रही हैं ?'

रजनी ने ध्यान से उस युवक की ओर देखा। तदन्तर उसने गम्भीर बनकर कहा—'निःसंदेह, मेरी यही प्रार्थना है। यद्यपि, मैं अहिंसा-वाद का अधिक अध्ययन नहीं रखती। मेरा ज्ञान विस्तृत नहीं। परन्तु व्यवहारिक रूप से इतना मानती हूँ कि आपके अन्दर जो तीक्ष्ण प्रवाह प्रवाहित है, वह आपको सूक्ष्म बनकर नहीं सोचने देता। आप क्रोध में हैं। मे इस हॉल में रखे सभी शस्त्र और बमों को देख रही हूँ। मैं इनकी शक्ति भी समझती हूँ। मैं यह भी देखती हूँ कि समाज आपसे डरता है। वह पिस्तौल और बम की कल्पना करके भी काँपता है। मृत्यु का चीत्कार सुनते-सुनते वह ऊब गया है। अब आप बताइये, किस प्रकार आपका लक्ष्य विस्तृत होगा ! सफल बनेगा ! निरन्तर की हिंसा, खून और लूट-मारी से समाज तंग आ गया है। वह अपने प्रति भी संदिग्ध बन गया है। मैंने रात ही आपके एक साथी से सर्प-दंशन का उदाहरण सुना। मुझे मनुष्य की समता में ऐसी उपमा पाकर चकित रह जाना पड़ा। निश्चय ही, इस परम्परा ने मानव को मानव से दूर रखा है। विश्व सदा ही रौरव पूर्ण बना रहा। तेल का खौलता हुआ कड़ाह कभी ठण्डा नहीं पड़ा। मानव भय और और भूख से त्रस्त

और दु:खी बना रहा। आपका यह भी एक उद्देश्य है कि देश जीवन पाये···विश्व में अपना स्थान पाये !'

रजनी कहने लगी—'आपके देश में तो अन्धकार है, उसे अपने जीवन की ज्योति से दूर कीजिये। आप स्वयं अपनी निष्ठा मानिये। आप पराभव मत स्वीकार कीजिये। आपके कार्य की आलोचना करना मेरा उद्देश्य नहीं। यहाँ आने का यह अर्थ भी नहीं। किन्तु यदि आप देश का सांस्कृतिक, बौद्धिक जीवन-स्तर ऊँचा उठा सकें, तो आप पुण्य के भागीदार होंगे। आपका चरित्र उज्ज्वल होगा, आत्मा उदार होगी, तो देश भी आपसे कुछ पा सकेगा। हिंसा और अहिंसा एक आधारभूत सिद्धान्त हैं, किन्तु इनमें से किसी को स्वीकार करने वाला व्यक्ति यदि अपने-आप में हीन है, तो वह निस्सन्देह, न केवल अपना, अपितु अपने संघ का संहार करने में सिद्ध होगा। आज यही अवस्था है। मैंने आपसे इसीलिये निवेदन किया कि आप नये पौधों को मत उखाड़िये। मैं नहीं सोच पाती कि आप में से कितने ही कम आयु के युवक संकट काल में किस प्रकार अपने को सँभाल सकेंगे···वे आपकी रक्षा करेंगे ! पुलिस की एक ही तीखी डाट से वे अपने साथियों का भेद खोल देंगे ! इसलिए जीवन का चरित्र, जीवन का ध्येय, जीवन का दर्शन गहन विषय है। उसे समझना आवश्यक है। यही मेरे पति ने मुझसे कहा। मैंने आपसे कह दिया।'

उसी समय, रजनी ने साँस भरी और उस बड़े हॉल पर विहंगम दृष्टि डालकर बोली—'विश्वास रखिये, मैं आपके हेतु पर श्रद्धा रखती हूँ। देश के लिये मरने वालों के पथ पर मैं अपने को बिछा सकती हूँ···मैं अपनी आँखों के जल से दरिद्रनारायण के भक्त का अभिनन्दन करती हुई उसके चरण पखार सकती हूँ···'

रजनी मौन बन गयी। वह उस तख्त से उठकर, रतनलाल के पास पहुँच गयी। वे सभी युवक एकटक भाव से रजनी को देख रहे थे। लौटने पर द्वार की ओर साथ-साथ चलते हुए रतनलाल ने कहा—'भाभी,

तुम्हें जो-कुछ कहना था, वह सभी कहा। हमने वह सभी-कुछ सुना।'

सुनकर, रजनी हँसी। वह उसी प्रकार रतनलाल की ओर देखने लगी। गंगा के किनारे जाकर रजनी नाव में बैठ गयी। विपिन भी बैठ गया। उसी समय रजनी ने रतनलाल से कहा—'कुछ अन्यथा न मानना। जो मेरे अपने विचार थे, उन्हीं को व्यक्त किया।'

रतनलाल ने कहा—'वह हमारे लिए शिरोधार्य हैं, भाभी!'

'अच्छा, नमस्ते!' रजनी ने कहा।

नाव चल पड़ी। वह फिर गंगा के मध्य में पहुँची, तो पानी की गहराई को लक्ष्य करते हुए विपिन ने साँस भरी और कहा—'तुम इतना पढ़-लिख चुकी, यह मैंने आज समझा, भाभी!'

रजनी ने हँसते हुए कहा—'क्या? क्या?'

'वह मैं नहीं बता सकता! मैं वकील होकर भी, तुम्हारे बराबर नहीं बैठ सकता।'

यह सुनकर, रजनी ने जोर से हँस दिया। उसने उसी प्रकार हँसते हुए, उस रज्जू की ओर देखा, जो जल्दी-जल्दी पतवार लगा रहा था। वह गंगा की धार के तीव्र प्रवाह को काटने का प्रयत्न करने में लगा था।

उसी समय, रजनी ने फिर विपिन की ओर देखकर कहा—'मैं कल घर लौट जाऊँगी। मुख्तारजी कल जा रहे हैं। मैंने उनसे कह दिया है कि मैं चलूँगी। तुम चलोगे?'

विपिन ने कह दिया—'फिर आऊँगा।'

'फिर कब? अभी चलो!'

किन्तु विपिन ने कहा—'बस, जल्दी ही! किसी दिन भी तुम्हारे सामने जा पहुँचूँगा।'

यह सुनकर, रजनी ने कुछ नहीं कहा। उसने पास आये हुए किनारे की ओर देखा। दूर कोहरे तथा धुएँ से ढँके हुए शहर की ओर भी उसने अपनी आँखों को उठा दिया। रजनी ने पतवार से छप्-छप होते पानी के शब्द को भी सुना। किनारे पर बैठे हुए पक्षी और दूर का शहर—इन्हीं तीन पदार्थों में अपने को लगाकर, जैसे बरबस ही, रजनी ने विपिन अथवा अन्य किसी के प्रश्न से अपने को पृथक् करने का प्रयत्न किया।

: ३८ :

रजनी गाँव नहीं लौट सकी। अगले दिन के प्रातः में ही, नगर के कुछ व्यक्ति विपिन के घर आये। उन्होंने रजनी को बताया कि आज एक सभा का प्रबन्ध किया गया है। बाबू आत्माराम जनता की जिस लड़ाई के लिये जेल गये हैं, तो उसीके उपहार-स्वरूप, नगरवासियों ने तुम्हारा सम्मान करना उचित समझा।

किन्तु रजनी चाहती थी कि उस आडम्बर को अस्वीकार कर दे। किन्तु स्वयं विपिन भी अपने नगर के लोगों की सम्मति का समर्थक था। फलस्वरूप, रजनी ने उस दिन सभा में जाना स्वीकार कर लिया।

संध्या को नियत समय पर, विपिन के साथ रजनी सभा-स्थल में गयी। वह समझती थी कि वहाँ सौ-पचास व्यक्ति होंगे। किन्तु सभा-स्थान पर कई हजार व्यक्तियों की भीड़ थी। उसमें नारियाँ भी थीं। जब रजनी सभा-मण्डप में पहुँची, तो लोगों ने तालियाँ बजाकर, उसका स्वागत किया। उस समय स्वामीजी और आत्माराम को जय से भी वह स्थान गूँज उठा। रजनी मंच पर बैठायी गयी। एक महिला ने उसके गले में फूल-माला डाली। उसी समय रजनी ने दर्शकों में रतन-लाल और उसके कई साथियों को देखा।

सभापति ने रजनी का परिचय दिया। उन्होंने अपने जिले के आदर्श व्यक्ति के रूप में आत्माराम का उल्लेख किया। वह जिस प्रांत में जाकर, सत्याग्रह करते हुए जेल गया, उसका भी सभापति ने अपने भाषण में विशद वर्णन किया।

उसी समय, सभापति ने रजनी को लक्ष्य किया। किन्तु रजनी के मन में बात थी कि वह नहीं बोलेगी—बोल नहीं सकेगी! क्योंकि उसने कभी भाषण नहीं दिया। यद्यपि, वह पहले दिन ही रोचक और प्रभावशाली ढंग से बोल आई थी, परन्तु उस खुली सभा में बोलने की, जैसे उसमें क्षमता नहीं थी। किन्तु जब सभापति ने उससे अनुरोध

किया तो वह खड़ी हो गयी। उसने सभापति और उपस्थित जनता को सम्बोधित किया। उसी समय, जनता ने तालियाँ बजाईं, तो आश्चर्य-जनक रूप से उसका उत्साह बढ़ गया। रजनी ने कहा—'आप जिस स्वतन्त्रता और दरिद्रनारायण की सेवा का पुरस्कार मुझे देने चले हैं, निस्सन्देह, मैं उसकी अधिकारिणी नहीं। मेरे पति हैं। वे आपके देर से परिचित हैं और समझे-बूझे सेवक हैं। मैं यह भी अनुभव करती हूँ कि स्वागत-सत्कार हमारे लिये शोभनीय नहीं। यह हमारे लिये भी नहीं। अभी तो देश परतन्त्र है। संघर्ष चल रहा है। आप निहत्थे हैं। शासक शस्त्रधारी हैं। मैं जानती हूँ कि जिस गुलामी की जंजीरों को तोड़ने के लिए आज का मानव तड़प रहा है, जिस श्राप का बोझ उठाये वह चल रहा है, उसकी भी एक सीमा है। कष्टों का कहीं तो अन्त है। आप अपने अधिकार की माँग करते हैं, देश के प्रति अपना अनुराग प्रगट करते हैं, निःसन्देह, यह कोई पाप नहीं। परन्तु आप इस बात के लिये भी अपराधी मामे जाते हैं। शासक के प्रति द्रोही कहे जाते हैं। जेल जाते हैं। गोलियाँ खाते हैं। अब निर्णय कीजिये कि ऐसी स्वेच्छा अथवा दम्भ क्या स्थिर रह सकता है···ऐसा अन्याय क्या देर तक चल सकता है!'

उसने कहा—'मैंने जब-जब निरीह सत्याग्रहियों पर कोड़े पड़ने, गोली चलने और उन्हें घोड़ों की टापों से रौंदे जाने के समाचार सुने, तो सोच नहीं पाई कि सचमुच, इन्सान नहीं रहा···उसके शरीर में हैवान का जन्म हो गया! इस पृथ्वी से भगवान भी उठ गया! किन्तु मेरे मन में यह बात एक दिन भी नहीं आयी कि किस प्रकार यह आवाज दब जायेगी! बर्बरता और इस नृशंसता का अन्त अवश्यम्भावी है। यदि किसी की दृष्टि में दो भगवान हो सकते हैं, तो मैं कहूंगी कि अमीर का भगवान यदि हँसता है, तो कंगाल का भगवान भी रोता है···पीड़ाओं के इस जीवन में वह भगवान सिसकता है, चीत्कार करता है!'

उसी समय, सभा में एक ओर हलचल का शोर उठा! देखा कि

पुलिस के घुड़सवारों का दल वहाँ आया। जिसने क्रोधित बन कर कहा—'यह सभा बन्द करो···यह व्याख्यान···!'

'यह नहीं होगा ! भाषण होगा !' उपस्थित जनता ने चीत्कार किया।

लेकिन वह उद्धत और सख्ती करने के लिये प्रस्तुत पुलिस का दल, जनता की उस आवाज को नही सुन सका। घुड़सवार आगे बढ़े। जब जनता ने उस पर मिट्टी-कंकड़ फेंकने आरम्भ किये, तो वह पुलिस-दल पीड़ित सर्प के समान फुँफकार कर, जनता पर डण्डे मारने लगा। उसने बात-की-बात में अनेक व्यक्तियों को चुटीला और घायल बना दिया।

रजनी बैठ गयी। सभापति ने बार-बार पुलिस को फटकारा। उसे रोकना चाहा। किन्तु वे मदान्ध भेड़िये नहीं सुन रहे थे। वे जैसे अपनी शक्ति के भार से स्वयं दबे जा रहे थे। उसी समय, विपिन ने रजनी के पास जाकर कहा—'तुम चलो, भाभी ! तुम यहाँ से हटो।'

किन्तु रजनी ने अभी तक सुना-ही-सुना था, देखा कुछ नहीं था। जब देखा, तो जैसे उसका सम्मान जाग गया। उसमें रोमांच फूट गया। विपिन ने चलने की बात कही, तो उसने चीखकर कहा—'विपिन बाबू, जाने कितनों के सिर फूट गये···कितने घोड़ों के पैरों से कुचल दिये गये ! देखिये, वह बच्चा···हे राम !'

वह शोर दबा। पुलिस गयी। जनता लौट आई। किंतु लोगों ने देखा कि वहाँ सभा-मंच पर रजनी बेहोश पड़ी थी। वह घायल अवस्था में थी। उसका सिर फट गया था। जब उसके चोट लगी, तो विपिन एक बच्चे को बचाने के लिये उससे दूर हो चुका था।

रजनी को तुरंत अस्पताल पहुँचाया गया। उस अवस्था को जिसने देखा, उसीने हा-हा खाया। वही बेचैन बन गया। विपिन तो जैसे पागल बन गया था। वह उस समय निरा संज्ञाहीन और बेदम हो चुका था। उसे रजनी के पास नहीं जाने दिया गया। जब देर बाद,

रजनी के सिर का चोट खाया हुआ भाग सीं दिया गया, और उसे होश भी आ गया, तो तब, विपिन वहाँ पहुँचा। उस समय, जनता का एक बड़ा समूह भी एकत्र हो गया। पुलिस और जनता के प्रतिष्ठित आदमियों की ओर से कहा गया कि रजनी देवी अब स्वस्थ हैं, वह होश में आ गयी हैं।

किन्तु जब विपिन रजनी के पलंग के पास पहुँचा, तो उसने भर्राये और अवरुद्ध स्वर में पुकारा—'भाभी—!'

'हाँ, विपिनबाबू! मैं ठीक हूँ, तुम चिन्ता न करो!' वह बोली—'मैं आज अत्यन्त सुखी हूँ। अपने पति से अब तक जितना सुनती आई, आज उसीको देख पाई हूँ।'

विपिन ने कहा—'माँ को तार दे दिया है। उन्हें बुलाया है।'

रजनी ने साँस भर कर विपिन की ओर देखा। उसने पास खड़ी नर्स को भी लक्ष्य किया। उसी समय नर्स ने विपिन को हट जाने के लिये कहा। वह चला गया। विपिन उस समय जैसे निरा शून्य बनकर अस्पताल के कमरे से इस प्रकार चल दिया, जैसे वह निःशक्त था—निरा प्राणहीन!

: ३९ :

पुलिस और जनता के उस संघर्ष में रजनी को जिस प्रकार चोट लगी, उसका समाचार अगले दिन देश भर में फैल गया। उसे स्वामीजी ने भी सुना। किंतु जिस समाचार को पाकर स्वामीजी अधिक चिंतित हुए, वह था कि जिस पुलिस के गोरे सार्जेंट द्वारा रजनी के सिर पर डण्डा पड़ा, वह उसी दिन की रात में गोली से मार दिया गया। स्वामीजी को इस समाचार से अधिक कष्ट पहुँचा। उनका

मानसिक संताप जैसे अपनी सीमा को लांघ गया। रजनी के पास उन्होंने तार भेज दिया। उसमें लिख दिया कि तुमने जिस साहस का परिचय दिया, वह देश में गौरव का प्रतीक रहा। तुमने अपने पति के पग-चिन्हों पर चलकर नारी-समाज का मार्ग प्रशस्त किया!

किन्तु उस-सार्जेंट की हत्या करने का दुष्परिणाम यह हुआ कि पुलिस ने नगर और बाहर के अनेक युवकों को गिरफ्तार कर लिया। उनको यातनाएँ दी जाने लगीं। वे पीड़ाएँ जो पुलिस द्वारा दी गईं वे सभ्य-वर्ग में कदापि उल्लेखनीय नहीं। किन्तु दोष का पता लगाने के लिए अनेक निर्दोष उस यातना को पाने के साझीदार बन गए। देश में आतंक छा गया। आतंकवादी क्रांतिकारियों की खोज करने में पुलिस ने कुछ भी नहीं उठा रखा।

अस्पताल में रजनी के सिर का घाव धीरे-धीरे भर रहा था। बाद में अस्पताल छोड़ दिया गया। विपिन के घर ही उसका इलाज करने के लिए डाक्टर आने लगा। आत्माराम की माँ और रजनी के पिता भी शहर आगए। विपिन की यह चेष्टा थी कि रजनी से किसी आतंकवादी के विषय पर चर्चा न की जाय! रजनी को बाहरी दुनिया का कोई भी समाचार न दिया जाय। किन्तु जब रजनी की पट्टी खुल गयी और डाक्टर द्वारा उसे स्नान करने की भी अनुमति मिल गयी, तो एक दिन रजनी ने स्नान किया। कपड़े बदले। उसी समय हाँफता हुआ कोलाहल से पूरित बना हुआ विपिन घर में आया। वह आते ही, कुर्सी पर धम्म-से गिर गया। जो रजनी लगभग एक मास में उठी और स्नान करके प्रसन्न दिखाई दी, विपिन ने उसे भी नहीं देखा,—जैसे देखना पसन्द नहीं किया।

किन्तु विपिन की उस दशा को देखते ही, रजनी ने पूछा—'क्या बात है? आज मुँह क्यों उदास है?'

विपिन ने उत्तर नहीं दिया। वह कुर्सी से खड़ा होगया और दोनों हाथ पीछे ले जाकर उनकी मुट्ठी बाँधकर घूमने लगा। वह तेज

चलने लगा ।

रजनी ने अपनी बात लेकर फिर कहा—'माँ कहती है, हमें आज गाँव लौटना है । माँ ने तुम्हें भी चलने को कहा है ।'

यह सुनते ही, विपिन खड़ा हो गया । वह बोला—'हां, मैं भी चलूँगा । मैं तुम्हारे गाँव में जाकर शांति पा सकूँगा ।'

'और कमला ने भी मेरे साथ गाँव चलने को कहा था । उसे भी खबर दे देना ।'

विपिन ने कहा—'मैं वहीं जा रहा हूँ । उससे कह दूँगा ।'

'उसे भी साथ लेते आना । मेरी ओर से कहना ।'

विपिन बाहर चल दिया । कहता गया—'आएगी, तो लेता आऊँगा ।'

देर हुई कि विपिन चला गया । दोपहर हो गयी । घर में सभी ने खाना खा लिया । आत्मा की माँ ने सामान बँधवा लिया । गाड़ी का समय हो गया । ताँगे में सामान भी रखा गया । किन्तु विपिन नहीं आया । वह नहीं दिखाई दिया ।

आत्मा की माँ ने रजनी से कहा —'चलो, बहू ! विपिन नहीं आएगा । शायद वह जान-बूझकर नहीं आया ।'

रजनी ने विपिन की फूआ से विदा ली । उसने कहा—'विपिन बाबू आयें तो कहना, तुरन्त गाँव चले आयें ।'

फूआ ने रजनी, उसके पिता और आत्माराम की माँ को विदा कर दिया । स्टेशन जाकर वे सब गाड़ी में बैठ गए । माँ कुमुद से बात करने में लगी थी । किन्तु सबके विपरीत रजनी बाहर की ओर मुँह किये नीले आसमान की ओर देख रही थी । उस समय वह अपने मन में केवल एक ही बात लिए थी और वह यह कि एक मास पूर्व वह इसी स्टेशन पर गाड़ी से उतरकर विपिन के घर गयी थी । तब जाने कैसी आशा और अकांक्षा लिए थी । वही अब फिर जीवित हो गयीं । वह मानो उसकी ओर देख रही थी और कह रही थी—तुमने मुझे क्या

दिया ? मैंने तुमसे क्या पाया ? तुमने मेरे लिए क्या किया, रजनी ?'

और रजनी मूक भाव में, मर्माहत-सी, जैसे खोई हुई-सी, निरी जड़ बनी बैठी थी। वह अपनी निरुद्देश्य और निरभिमान आँखें कभी सामने आते-जाते मुसाफिरों पर डालती और कभी हरे आसमान की ओर।

उसी समय, ऊपर की ओर देखते हुए उसने कहा—मैंने कुछ नहीं किया! मैं जिस लिए आई थी, उसके निमित्त मुझसे कुछ नहीं हुआ! कुछ भी नहीं!

तभी गार्ड ने सीटी बजाई। उसे सुनते ही, रजनी ने फिर अपने-आप कहा—जो मैंने नहीं देखा और नहीं पाया, वह मुझे यहाँ मिला। इस रजनी में एक भय था, वह दूर हुआ। अब इसका जीवन सार्थक हुआ।

उसी समय, हाँफता और भागता हुआ विपिन रजनी के पास आकर खड़ा हुआ। उसके पीछे ही कमला ने आकर नमस्ते कहा। ग़ार्ड दूसरी सीटी बजा चुका था, जिसके साथ इन्जन का भोंपू भी बोल चुका था। देखते ही रजनी ने कहा—'विपिनबाबू—!'

'हाँ, भाभी! आज बुरा हुआ! आज सभी कुछ नष्ट हुआ!'

यह सुन, रजनी ने विस्मित बन, उसकी ओर देखा। उसे विपिन का भर्राया हुआ स्वर भी दुखप्रद लगा। उसने गाड़ी के चलते-चलते, आवेशपूर्ण होकर पूछा—'कुछ बताओ भी, क्या हुआ ? क्या—?'

विपिन ने गाड़ी के साथ-साथ चलते हुए एकबारगी रोकर कहा—'रतनबाबू मर गए···वह एक साथी द्वारा बताये जाने पर, जैसे ही, पुलिस के घेरे में पड़े, तो अपने बचाव में असफल बनकर, स्वयं ही अपनी पिस्तौल से गोली खाकर हम लोगों से दूर गये! वह पुलिस द्वारा ही चिता पर रखकर जला दिये गये···!'

'रतनबाबू मर गए···आह!' रजनी ने कहा और अपना सिर खिड़की पर पटक दिया। उसकी आँखों से अश्रु-जल प्रवाहित हो गया।

विपिन खड़ा हो गया। वह अपनी आँखों से बहते आँसू पोंछने लगा। गाड़ी निकल गयी। वह प्लेटफार्म से बाहर हो गयी। उसके एक डिब्बे में बैठी हुई रजनी शोक-मग्न होकर अपने सामने एक सुन्दर और स्वस्थ रतनलाल को देख रही थी। उसकी कल्पना करके, वह भरी आँखों के साथ, नीले आसमान को भी देखने में लगी थी। उसी अवस्था में रजनी बोली—आह! तुम गये, रतनबाबू! यों चले गये! तुम अपनी इस भाभी से एक दिन अनायास मिले और उसी प्रकार चल दिए! वह बोली—सच, तुम कितने सलोने थे! तुम अपने हृदय के कैसे सुकुमार थे! तुम अपनी इस भाभी का जाने कितना आदर करते थे! तुम मेरे हृदय में थे। तुम मेरे सबसे बड़े आत्मीय थे। इस भाभी को जिस सार्जेंट ने डण्डा मारा, तो तुम उसे जीवित भी नहीं देख सके। तुम उसे उसी दिन इस दुनिया से उठा देने में सफल हो गये···मेरे रतनबाबू!

: ४० :

सजा की अवधि पूरी करके आत्माराम जेल से छूट आया। वह जब आया, तो जनता द्वारा उसका अपूर्व स्वागत किया गया। स्वामीजी ने उसे गले लगा लिया। घर पहुँचकर आत्माराम ने माँ के पैर छुये। उस समय स्वामीजी भी उसके साथ घर आये। उन्होंने आत्माराम को सुनाकर कहा—'रजनी देवी ने अपूर्व साहस का परिचय दिया। इस इलाके के अधिकांश गाँवों में रजनी ने अहिंसा का प्रचार किया। रजनी ने गर्मी, सर्दी और बरसात का भी ध्यान नहीं किया। तुम्हारा कार्य रजनी ने यथाविधि सम्पादित किया।'

माँ ने कहा—'बेटा, रजनी का तो जीवन ही बदल गया। जैसे भगवान बहू के अन्तर में आकर बैठ गया। जब से शहर से लौटी,

तो किसी एक दिन भी घर में आराम नहीं किया। इस रजनी ने पहले तो इसी गाँव के घर-घर को जगाया। स्त्रियों का एक दल स्थापित किया। घरों की और गलिहारों की सफाई करना भी, इसी रजनी ने लोगों को बताया। जो काम तुम्हारे सत्याग्रहियों से नहीं हुआ, वह अकेली रजनी ने कर दिखाया।'

इतना सुनकर, आत्माराम ने रजनी की ओर देखा। उसने स्वामीजी से कहा—'मैं ने जेल में सभी-कुछ सुन लिया था। नगर में, रजनी के चोट लगी, वह आपके पत्र से पूर्व ही मुझे मालूम हो गया था। देश में जो-कुछ हुआ, वह सभी कुछ मुझे बराबर सुनाई देता रहा।'

उसी समय रजनी ने कहा—'और तुमने यह भी सुना कि रतनबाबू—?'

आत्माराम ने तुरन्त ही, खिन्न और उदास बनकर कहा—'हां, रजनी! मैंने यह भी सुन लिया। जिस सार्जेंट ने तुम्हारे डंडा मारा, रतनलाल ने उसीको मारा था। रतनबाबू ने अनेक अधिकारियों को गोली का निशाना बनाया। सरकार ने उसे पकड़ने के हेतु लाखों रुपया व्यय किया। जिस युवक ने रतन भाई का नाम बताया, वह भी जिन्दा नहीं रहा। उसे जेल में ही ठण्डा कर दिया गया। वह जीवित रहता, तो कदचित कुछ और भी बताता, वह बोला—'रजनीदेवी, रतनलाल अपने-आप में एक आदर्श था! उसने अपने जीवन को तपाया था। वह वीर और साहसी था। अफसोस है कि वह चला गया···एकाएक ही उसका अन्त हो गया! जब सुना, तो मैं दिन भर रोता रहा। उस दिन खाना भी नहीं खाया! मुझे लगा कि मेरा सबसे बड़ा हितैषी और आत्मीय उठ गया···!'

रजनी ने आसमान की ओर देखकर कहा—'वह रतनबाबू···'

आत्माराम ने कहा—'रतनलाल दर्शनीय था। वह अब केवल याद ही बन कर रह गया···जो अब···।'

उसी समय माँ ने पास आकर कहा—'ले, आत्मा! यह कुमुद

आ गया। अब बड़ा शैतान बन गया है। यह अब···!'

कुमुद ने तुतलाते हुए कहा—'आबूजी नमस्ते!'

सुनकर, आत्माराम हँस दिया। उसने कुमुद को गोद में ले लिया। प्यार के साथ उसके गाल पर चपत रखता हुआ बोला—'क्यों बे, तू शैतान हो गया है!'

कुमुद ने सिर हिलाकर कहा—'नहीं, आबूजी! मैं तैतान नही!'

आत्माराम फिर हँस दिया। उसी प्रकार हँसते हुए, उसने माँ से कहा—'अब तो यह तुम्हारे पास रहता है, माँ!

माँ ने कहा—'हां, आत्मा! रजनी तो शहर से आकर फिर घर में बैठी नहीं। यह तो स्वामीजी के आदेश पर चल पड़ी।'

'और माँ, तुम—?'

'तब घर और कुमुद को कौन देखता! और इस बुढ़ापे में मुझसे होता क्या! यही देखकर तो स्वामीजी ने रजनी को पकड़ा। इन्होंने बड़ी इच्छा के साथ रजनी को माँग लिया। रजनी शहर की जिस सभा में बोली, स्वामीजी ने उसी को लोगों से सुना। रजनी को योग्य मान लिया।'

इसी बीच में स्वामीजी अन्यत्र चले गये थे। वे संन्ध्या करने मे लगे थे। जब माँ ने अपनी बात कही, तो इसके बाद ही, मुख्तार के साथ कई गाँव के आदमी आये। आत्माराम ने सबका कुशल-समाचार पूछा। अपना कहा। जब आत्माराम आगतों से छूटा, तो उसी संन्ध्या के प्रहर में, विपिन कमला के साथ उस घर पर आ पहुँचा। वह जब आया, तो आत्मा ने उसे देखते ही, गले से लगा लिया। उस समय आत्माराम बाहर के बैठक-खाने में बैठा था। उसने कमला को घर में भेज दिया। उसी समय दोनों मित्र घर में पहुँचे। कमला रजनी के पास बैठी थी। वहाँ जाते ही, आत्माराम ने कमला को लक्ष्य किया और हँसकर कहा—'कहो, कमला, प्रसन्न हो?'

कमला ने कहा—'जी, कृपा है!'

'आज बहुत दिन में दिखाई दीं ।' आत्माराम ने कहा और विपिन की ओर देखकर हँसता हुआ बोला—'और तुम सुनाओ, विपिनबाबू ! कुछ दुर्बल हो ! शायद इस बीच में चिन्तित भी रहे हो ?'

विपिन ने कहा—'हां, चिन्तित रहा । उलझनों में भी फँसा रहा । भैया रतनलाल क्या गया, मेरा सहारा टूट गया !'

उसी समय, आत्माराम ने फिर कमला की ओर देखा । वह मुस्कराया । उसी को लक्ष्य कर, उसने कहा—'क्यों कमलाजी, इतने समय में बहुत परिवर्तन हुआ ? मैंने जेल में ही तुम्हारी माँ के देहावसान का समाचार सुना था ।'

रजनी ने हँसकर कहा—'कमला ने बहुत बड़े काम का बीड़ा उठाया है ।'

'उसका भी मुझे पता है !' आत्माराम ने कहा—'जब विपिनबाबू का साथ हुआ, तो अचरज क्या !' यह कहते वह हँस दिया ।

उसी समय आत्माराम की माँ सामने आई । विपिन ने माँ को नमस्ते किया । उसी प्रकार कमला ने ।

माँ ने कहा—'आत्मा, यह तो बड़ी बात कि कमला आ गयी । शायद तुझसे मिलने आ गयी । यह विपिन के कहने पर आ गयी ।'

कमला ने कहा—नहीं, अम्माजी ! मैं आती !'

'तू झूठी !' माँ ने उसी समय हँसकर कहा—'याद तो कर, जब रजनी बीमार थी, तब मैं कितना कहती थी । और रजनी ने तो नित्य ही यहाँ आने की बात कही थी ।'

'तब मैं नहीं आ सकती थी, अम्माजी ! तब मैं···।'

'माँ, कमला आज भी आ गयी, यही कम बात है !क्या ' आत्माराम ने कहते हुए हँस दिया ।

रजनी ने कहा—'स्वामीजी आये है । संन्ध्या कर रहे है !'

कमला ने कहा—'अच्छा ! मैं दर्शन करूँगी ! स्वामीजी से मिलूँगी ।'

उसी समय विपिन कुमुद से हँसने-बोलने में लग गया। वह कह रहा था—'अरे, कुमुद ! जानता है, हम क्या माल लाये हैं ! ले, देख !' यह कहते ही, विपिन ने फलों की टोकरी जो वह साथ लाया था, उसे कुमुद को दिखायी। उसका मुँह खोला। सेब, सन्तरे और अनारों को दिखाकर, वह अंगूरों की एक डाली उठाकर बोला—'बोल, तू क्या खायगा ? अनार ? मैं जानता हूँ बे, तू अंगूर खायेगा !'

फलों को देखकर, आत्माराम ने माँ से कहा—'माँ देख, कुमुद भाग्यशाली है। उसके लिये यह विपिन फल खरीद लाया है !'

विपिन ने कहा—'हां, भाई ! यह कुमुद ने सिखाया है कि कहीं जाओ, तो कुछ लेकर जाओ। किसी बाल-बच्चेदार के घर में खाली हाथ मत जाओ।'

'क्यों-क्यों ? कुमुद ने कैसे सिखा दिया ?' आत्माराम ने पूछा।

विपिन बोला—'यह भाभी बतायेंगी।'

हँसते हुए रजनी बोली—'ओह, मैं समझी !' उसने आत्माराम की ओर देखकर कहा—'अजी, कुमुद अब शैतान बन गया है। जब पिछले दिनों विपिनबाबू आये, तो घर में मैंने इस कुमुद से कहा, जा रे, चाचा जी आये हैं। नमस्ते कर आ। मिल आ। तो तुरन्त बोला—'चाचाजी क्या लाये हैं ? मेरे लिये कोई मिठाई लाये हैं ? और अपने-आप बोला—'माँ, वह कुछ नहीं लाये। वह तो जेब में हाथ डाले और छड़ी हिलाते हुए आये हैं।'

आत्माराम ने जोर से कहा—'यह बात !' वह कुमुद की ओर देखकर वोला—'क्यों, वेटा ! अब तू इतना समझदार बन गया है,—शाबाश !' और उसने रजनी की ओर देख कर कहा—'कुमुद ने ठीक तो कहा। चाचा आये और भतीजे के लिये कुछ भी न लाये, तो क्या लाभ ? पर आज तो चाचाजी टोकरी भर लाये हैं। दिखता है, एक छोटी-मोटी दुकान उठा लाये हैं। नये मुसल्ला जो बने ह, तो इसीसे इतना सब ले आये !'

विपिन ने कहा—'अरे, भाई ! बेचारे कुमुद का तो नाम है, खाना तो हमीं लोगों को पड़ेगा !'

माँ ने कहा—'कुमुद तो बस, अपने नाना के पास दौड़ जाता है। वह भी नित्य आते हैं और इससे एक-दो बात कर, कुछ-न-कुछ दे जाते हैं। नानी लड्डू बनाकर भेजती है।'

आत्माराम बोला—'अच्छा, माँ ! मैं तो जेल से आया हूँ। आज तो मेहमान हूँ। और विपिन तो क्या, पर कमला तो आज आई है, पहले-पहल ! बताओ क्या खिलाओगी ?'

माँ ने कहा— 'तुम सभी का खाना तेरी ससुराल में है। ठाकुर साहब ने यही कहला भेजा है। वह आ न सके, पैर में दर्द है।'

विपिन ने कहा—'तुम मोटे हो आये हो !'

आत्माराम ने कहा—'मुफ्त का खाना था। आराम था। फिक्र का नाम नहीं था।'

'और लिखा क्या ?' विपिन ने पूछा।

आत्माराम ने कहा—'वह भी बताऊँगा। वहाँ मैंने लिखा और पढ़ा ही था।'

उसी समय वहाँ स्वामीजी आये। कमला और विपिन उन्हें देखकर खड़े हो गये। दोनों ने नमस्ते की, तो स्वामीजी सरल भाव में मुस्करा दिये।

: ४१ :

गुर्जर ताल्लुका का सत्याग्रह अभी चल रहा था। आत्माराम एक सप्ताह घर रहा, तो उसे स्वामीजी की गिरफ्तारी का समाचार मिला। वह फिर घर नहीं बैठ सका। तुरन्त कार्य-क्षेत्र में उतर गया। एक

दिन आत्माराम पुनः जेल पहुँच गया। किन्तु देश अभी गुर्जर ताल्लुका की ओर देख ही रहा था कि तभी, महात्मा गांधी ने हरिजनों के लिए अनशन-व्रत आरम्भ कर दिया। वह एक महान् व्यक्ति का महान् प्रण था जो न हिला, न मिटाया जा सका। और ब्रिटिश सत्ता मदान्ध थी। वह क्रूर बनकर, देश के अभिमान और स्वत्व का अपहरण कर रही थी। त्रस्त मानव की आवाज चारों ओर सुनाई देती थी। महात्मा गांधी ने अपने जीवन में जो एक और नया प्रयोग आरम्भ किया, तो देश की आँखें उस पर थीं। उस ऋषि के प्राण अपनी मौत की कन्दरा में पहुँच रहे थे, तो अपने हृदय का स्पन्दन रोककर देश उधर देख रहा था। भगवान से उस पुनीत संन्यासी का जीवन माँगा जा रहा था। वह बड़ा दयनीय समय था। देश विषम परिस्थिति में पड़ा था।

विपिन निरुद्देश्य था। कमला जिस स्कूल मे पढ़ाती, वह उसने छोड़ दिया। उसने अब रजनी का साथ कर लिया। रजनी के साथ गाँवों में प्रचार करना, उसका भी लक्ष्य बन गया। किन्तु इसके विपरीत विपिन अपने घर जाता, और कभी रजनी तथा कमला के पास आ जाता। उन दिनों वह कोई काम नहीं कर रहा था। वकालत करना उसने पहले ही छोड़ दिया था।

लेकिन विपिन के मन में क्या था, वह क्या करना चाहता था, रजनी यह जानने के लिए चिन्तित थी। विपिन को न गिरफ्तारी का भय था, न जीवन पर खर्च होने वाले पैसे की चिन्ता। क्योंकि वह मालदार था। पैसा उसके पास जरूरत से ज्यादा था।

किन्तु कमला और विपिन के प्रति रजनी अपना एक उत्तरदायित्व मानती थी। कदाचित् इसी भावना से प्रेरित बनकर रजनी ने कमला को अपने साथ रखा। रजनी को यह विश्वास था एक दिन अवश्य ही कमला और विपिन जीवन से बँध जायेंगे। रजनी ने यह भी अनुभव किया कि कमला कर्मण्य है। मधुर है।

परन्तु उसी समय कमला ने रजनी का साथ छोड़ दिया। वह नगर में चली गयी। कई मास तक रजनी को उसका समाचार नहीं मिला। कमला ने कोई पत्र भी नहीं दिया। किन्तु एक दिन के प्रात: ही, कमला गाँव में आई। वह ताँगे से उतरकर सीधी घर में चली गयी। उसे देखते ही, रजनी ने पूछा—'और विपिन बाबू ? वह नहीं आये ?'

यह सुनते ही, कमला ने रुखाई और उपेक्षापूर्ण भाव में कह दिया—'वह नहीं आये ! नहीं आ सके !'

किन्तु रजनी ने तब भी साधारण स्वर में कहा—'किसी कार्य में लगे हैं ? कोई काम करने लगे ? तुम दोनों ने पत्र भी नहीं दिए !'

उसी समय, कमला ने रजनी की ओर देखा। उसने रजनी की आँखों में जैसे कुछ उँडेल देना चाहा।

रजनी ने मुस्कराकर पूछा—'क्यों, कोई बात है ? नई बात है ?'

कमला ने पूर्ववत् देखते हुए कहा—'दिखता है, तुम अभी अजान हो, भाभी ! अखबार नहीं पढ़तीं ! इस बीच में जो घटनायें हुईं, उन्हें तुम नहीं पा सकी !'

रजनी ने कहा—'हां, मैं बिल्कुल अजान हूं, कमला ! मैं देर से घर पर हूं। इस बीच किसी से भी नहीं मिली ! माँ को बुखार आता है। कुमुद की देख-रेख का काम भी मुझ पर आ पड़ा है। और गाँव तो है ही अँधेरा ! यहाँ शहर का प्रकाश नहीं आता ! कोई समाचार भी नहीं मिलता !'

कमला ने ऊपर आकाश की ओर देखते हुए कहा—'भाभी, पुरुष नहीं समझा जाता···यह पास से भी नहीं देखा जाता ! विपिन बाबू को देखकर मैंने यही समझा ! उन्हें जो कुछ नहीं करना था, वही किया। वह देश भक्त और माँ के सपूत बनने चले थे, परन्तु उन्होंने तो माँ की छाती में पत्थर मार दिया··· देश के रास्ते में काँटों का जाल बिछा दिया··!'

रजनी ने चौंककर, जैसे अप्रतिभ बनकर कहा—'क्या है, कमला ! क्या कहती है ! विपिन बाबू ने क्या किया···क्या···?'

कमला ने गम्भीर और स्थिर स्वर में कहा—'वह पकड़े गए ! वह मुखबिर बन गये ! जिन-जिन व्यक्तियों को पुलिस चाहती थी, वे सब, विपिन बाबू द्वारा बता दिए गये ! वह···!'

एकाएक चीखकर, आतुर भाव में कमला का हाथ जोर से पकड़ कर, रजनी बोली—'ऐसे हैं, विपिनबाबू ! ऐसे !' उसने कहा—'रे, परमात्मा !' इतना कहते हुए, रजनी पीड़ित अवस्था में खड़ी हो गयी। वह कमरे में घूमने लगी। वह काउच पर जा गिरी और कमरे की कड़ियों को घूरने लगी। उसके पीछे ही कमला ने जाकर जाने कैसी दृष्टि से उसे देखा। उसने भी रजनी की वेदना को समझना चाहा। उसी समय रजनी ने पूछा—'तुम उनसे मिलीं ?'

उस समय कमला खिड़की के सहारे खड़ी थी। वह बाहर की ओर देख रही थी। रजनी की बात सुनकर, उसने पीठ फेरी और कहा—'मैं नहीं मिली। जेल नहीं गयी !' और तभी उसने तड़पकर कहा—'भाभी, मैं नारी हूँ ! विपिनबाबू को अपना साथी भी स्वीकार कर चुकी हूँ। परन्तु देश-द्रोही, समाज-द्रोही विपिन से मैं नाता नहीं जोड़ सकती ! मैं नारी बनकर भी अपना उपहास नहीं करा सकती ! मैं अपनी आत्मा नहीं मार सकती ! जिस विपिन को मैंने प्यार किया, मैं अब उस पर थूकती हूँ···उसे कुत्ता मानती हूँ !'

रजनी ने इतना सुना और काउच पर बैठे-बैठे ही, उस मधुर तथा सलोनी कमला के अन्तस् का वह फूटता हुआ क्रोध देखा। वह उसकी आँखों में भी झलक आया। रजनी खड़ी हो गयी। वह कमला के पास गयी। उसके सिर पर हाथ रखकर बोली—'शावाश ! तुझे यही कहना था ! तुझे यही करना था, कमला देवी ! तुमने अपनी प्रतिष्ठा समझी, यह सुनकर मुझे गर्व हुआ !' और तभी रजनी ने जैसे निढाल बनकर अपना स्वर गिराकर कहा—'पर जो कुछ हुआ, बुरा हुआ ! भयानक

हुआ ! विपिनबाबू का पतन हो गया ! मालदार घर का था, वह इतना बड़ा त्याग करने के योग्य नहीं था। उस पर भरोसा नहीं करना था। कुमुद के बापू सुनेंगे, तो हा-हा खायेंगे···वह···!'

कमला ने कहा—'उन्होंने सुन लिया होगा ! अखबार में पढ़ा होगा।' वह बोली—'जो भी सुनेगा, एक बार तो विश्वास भी नहीं करेगा।'

रजनी ने अपने हाथों की हथेलियाँ मलते हुए, वेदना के साथ कहा—'अब विपिनबाबू नहीं आयेंगे ! वह अब हमें नहीं मिलेंगे। वह अब सदा के लिए हमसे टूट जायेंगे······!'

'वह अब दुनिया से टूट जायेंगे, भाभी ! वह अब शीघ्र ही मर जायेंगे ! वह मार दिए जायेंगे !'

'वह मार दिए जायेंगे···मारे जायेंगे···कमला !'

कमला ने दूर अन्तरिक्ष की ओर देखकर कहा—'हाँ, भाभी ! वह मारे जायेंगे ! ऐसे आदमी क्या जीवित छोड़े जायेंगे !'

एकाएक रजनी ने फिर कहा—'कमला !'

कमला ने कहा—'भाभीजी ! जिस साँप ने दूसरों को डस लिया, उसके दाँत तोड़ने ही पड़ेंगे ! ऐसा व्यक्ति कब तक जियेगा ! वह कब तक इस पृथ्वी के लिए भार बना रहेगा ! वह जियेगा, तो तड़पेगा ! घुट-घुटकर मरेगा ! लांछना और प्रतारणा का बोझ उसके सिर पर रहेगा ! वह माँझी रज्जू भी पकड़ा गया ! विपिनबाबू द्वारा बताया गया। वह तो गंगा के पार ले जाता था और लाता था ?'

रजनी ने अपने होठों से फुसफुसाकर कहा—'आह, वह बेचारा रज्जू !'

कमला बोली—'अभी क्या आयु थी, उसकी ! माँ का इकलौता था ! अपने घर का चिराग था !'

रजनी ने जैसे चिढ़कर कहा—'और ऐसे ही व्यक्ति को तुमने प्रेम किया, कमला ! क्या उसका पैसा देखा ? रूप देखा ?'

कमला ने जैसे अपराधी के समान कहा—'भाभी, मैंने न पैसा देखा, न रूप देखा। मैंने तो भावना का सौदा किया था। उसी सौदे में मेरा दिवाला निकल गया। मेरा यह जीवन मर गया। हृदय विदीर्ण बन गया!'

रजनी बोली--'तू अब भी प्यार करेगी! क्रोध रुकेगा, तो विपिन की याद करेगी!'

किन्तु कमला मौन थी। वह जैसे वहाँ नहीं थी।

रजनी ने फिर कहा—'तुम स्त्री हो, स्त्री का हृदय रखती हो! वह दुर्बल है, तुम जीते जी विपिन को नहीं भूल सकती!'

कमला ने रजनी के और समीप जाकर कहा—'भाभी, अब इस विषय को छोड़ दो। मुझे कायर मत बनने दो। मुझे जीने दो।' यह कहते उसने हुए एक पत्र रजनी के हाथ पर रख दिया। पढ़ने के लिए.कहा।

रजनी ने पत्र खोला और पढ़ा। वह दल का पत्र था। उसमें कमला को आदेश दिया गया था कि वह अदालत में जाकर, विपिन को मार दे। विपिन उसी के हाथों मारा जाये!

पत्र पढ़कर रजनी ने बाहर की ओर देखा। उसने जैसे साँस रोक-कर कहा—'तो यह काम तुम्हें सौंपा गया है! तुम्हे करना है! करोगी? अपने प्रेमी पर गोली चलाओगी? बोलो, कमला!'

कमला ने कहा—'भाभी, प्रेम से कर्तव्य ऊँचा है। हमने राष्ट्र का पद महान् है।'

'हां, हां, मैं यह तो समझती हूँ। इसी से पूछती हूँ। तुम्हारे दल के साथियों ने तुम्हें क्यों चुना? क्या तुम्हारी कमजोरी को देखा? विपिन से क्रूर बदला लेना चाहा?'

कमला काउच पर गिर पड़ी। वह जैसे मरणासन्न बन गयी। वह उसी अवस्था में बोली—'मेरे दल के साथी भी अविवेकी बन गए हैं। जैसे बुद्धि-भ्रष्ट हो गये हैं। वह नारी-जीवन के साथ भी खिलवाड़

करने पर तुले हैं। और विपिन तो मर चुका। अब उसकी खाल को खींचा जायगा! दल के आदमियों को भय है कि वह अदालत की पहली पेशी में अपना बयान दे देगा! पुलिस के बयान की पुष्टि कर देगा!'

रजनी ने कहा—'यह कुछ नहीं होगा! विपिन मेरे रहते कुछ नहीं कहेगा!'

कमला ने तड़पकर कहा—'मैं अशान्त हूं, भाभी! मुझे बचाओ! कल अदालत में विपिन आयेगा। मै जानती हूँ विपिन को मारकर फिर मुझे भी जीवित नहीं रहना पड़ेगा!'

'हां, हां, तू भी मर जायेगी! विपिन को भी मार देगी! बड़ी बहादुर कहीं की! जरा-सा पिस्तौल चलाना क्या आ गया, जैसे सभी कुछ पा लिया। कल मैं भी चलूँगी। मैं भी तुम्हारा कृत्य देखूँगी।'

'तुम चलोगी, भाभी?'

'हां, क्यों नहीं चलूँगी, री! तुम्हारा इतना भयानक विचार हो, और मैं यहीं बैठी रहूँगी! मैं यहीं से तुम्हारी पिस्तौल की आवाज सुन सकूँगी! एक युवती को अपने प्रेमी का खून करता पा सकूँगी!'

कमला ने विनीत बनकर कहा—'मैं आज अन्तिम वार तुमसे मिलने आई हूं, भाभी! तुम्हारा आशीष पाने आई हूँ। मैं अपने दुर्बल मन को स्थिर और सुदृढ़ बनाने आई हूँ।'

रजनी ने उसी समय फिर कमला के सिर पर हाथ रखा। उसे प्यार और अपनत्व के साथ सहलाया। उसने बाहर की ओर देखा। वहीं दूर पर जो एक पक्षी उड़ता हुआ जा रहा था, तो उसी की उड़ान में रजनी ने अपनी दृष्टि को लगा दिया। तब सचमुच ही, जो कमला उससे शान्ति और स्थिरता पाने आई थी, शहर से दूर गाँव में आ सकी थी, तो तब, वह स्वयं ही अशान्त बनी हुई अपने अन्दर-ही अन्दर विषाक्त बन गयी। वह जाने जीवन के किस अज्ञात किनारे पर जा लगी।

उस समय दोनों मौन थीं। दोनों ही, अपनी-अपनी बात लिये अपनी दृष्टि से उसे सूक्ष्मतर बनकर नाप रही थीं।

यों, रात आगयी। दोनों अपने-अपने बिस्तर पर पड़ गयीं। किन्तु न देर तक न रजनी सो पाई, न कमला। दोनों ही, अपने-अपने विचारों में लीन बनीं, केवल एक ही बात पर टिकी थीं,—वह एक ही लक्ष्य को लिये थीं,—जिसका नाम था, विपिन! रात आधी से अधिक हो गयी। रजनी की आँखों में नींद नहीं। कमला सो गयी। रजनी के मन में बात थी कि मेरी तरह यह कमला भी नारी है। यह भी प्रेम तथा ममता को अपने हृदय में सँजोती है। इसीसे, आज यह दीन है। अशान्त है!

रजनी कह रही थी कि इस कमला ने जिसको प्रेम किया, अपना हृदय दिया, जिस विपिन को नारी-जीवन का अक्षत और पवित्र-स्नेह प्रदान किया, उसीको यह कल मार देगी। यह फिर फाँसी पर चढ़ेगी। निरी बेचारी······दुर्भागी यह कमला!

उसी समय रजनी के मन ने प्रश्न किया—क्या यह सब तुम होने दोगी, रजनी? अपनी आँखों के सामने ही, विपिन को मरता देख लोगी?'

रजनी मौन थी। वह फिर निरे अन्धकारपूर्ण पथ पर जा टिकी। उस समय वह आँख मूँदे पड़ी थी। जब उसने आँख खोलीं और लैम्प के प्रकाश की ओर दृष्टि की, तो वह उसी ओर देखते हुए, गम्भीर तथा बँधे स्वर में बोली—'विपिन ने बुरा किया! उसने मनुष्यता के साथ घात किया! जिसका दण्ड ही यह है,—मौत!'

किन्तु यह कहने के साथ ही, जैसे रजनी का हृदय अपने-आप ही उमस गया। वह मुँह को आने लगा। उसने अपने ऊपर पड़ी हुई चादर हटा दी और उठने के साथ ही, अपने-आप कहा—'लेकिन उसे मारना भी न प्रायश्चित्त है, न उचित दण्ड है। यह तो हिंसा का घृणित रूप है! अमानवीय है! मृत्यु के बाद तो जीवन है, तो किसी योनि में, किसी भी स्थिति में, फिर प्राप्त होता है। पर जब विपिन जीवित है,

तो उसे क्यों मारा जाय ! उसे जीवित अवस्था में ही प्रायश्चित्त क्यों न करने दिया जाय ! वह अपना दण्ड भोगे ! दोष की गुरुता समझे !

तब ? तब क्या हो ? रजनी ने अपने से प्रश्न किया। उसने अपने की खोजना चाहा।

रजनी ने खिन्न बनकर कहा—विपिन का दण्ड मृत्यु नहीं है। मृत्यु अमानुषीय है ! मृत्यु घृणित है। इसमें सुधार नहीं। यह हत्या है ! इसमें जघन्यता है ! विपिन भी आदमी है। वह भी निर्बल है। जो कुछ उसने किया, उसकी प्रतिक्रिया मौत नहीं,—उसका अन्त करना नहीं !

और रजनी ने तब चन्द्रमा के प्रकाश की ओर देखते हुए, अपने स्वर पर जोर देकर कहा—मैं विपिन को नहीं मरने दूँगी ! मैं कमला को भी यह घृणित कृत्य करने से रोकूँगी !

उसी समय कमला की आँख खुलीं। रजनी ने जो कुछ कहा, उसने सुन लिया। तकिये से सिर उठाकर उसने रजनी की ओर देखा !

रजनी ने कहा—तू सुनती है कमला, मैं विपिन को नही मरने दूँगी ! तेरे हाथ से मैं उसका अन्त नही करने दूँगी ! मर्द को मर्द मारे,—औरत नहीं ! मर्द का ऐसा अपमान मुझे स्वीकार नही। मै तुझे भी ऐसा भद्दा और निकम्मा खेल नहीं खेलने दूँगी !

एकाएक कमला के मुँह से निकला—भाभीजी······।

'कमला, तू सोचती है कि विपिन के लिये मौत ही श्रेयस्कर है। यही उसके पाप का प्रायश्चित है ! यही अन्त ! पाप उसने किया और भोग तू रही है। अरी, नादान लड़की !'

कमला ने कहा—'इस समाज ने,—मनुष्य ने—अब तक यही देखा है, भाभी ! यही अवलम्ब माना है।'

सुनते ही, रजनी ने फिर आवेशपूर्ण बनकर कहा—'यह झूठ है ! बेहूदा है !'

'तो,—तो अब क्या हो भाभी। मै बँधी हूँ। समिति ने जो कुछ

कहा, जो काम मुझे सौंपा, वह टल नहीं सकता। मैं अब उसे किये बगैर जीवित भी नहीं रह सकती।'

रजनी ने फिर कमला की ओर देखा। उसने जैसे कमला की विवशता को समझ लिया। उसने लैम्प मद्दा कर दिया। चादर ओढ़ ली। कमला से कहा—'अच्छा, कमला! अब सो जा तू! मेरे कहे पर चलना। मैं जो कुछ कहूँ, उसे मानना।'

कमला ने निरी दीन बनकर, अयाचित की स्थिति में कहा—'भाभी, अपने मर्म को लिये तुम्हारे पास दौड़ आई हूँ। मैं तुम्हारे आदेश पर चलने के लिये प्रस्तुत हूं।'

रजनी ने कहा—'तो तुम यह काम छोड़ दोगी? इसके बाद ही तुम दल से त्याग-पत्र दे दोगी? बताओ, तुम मुझे यह वचन दो। तुम जिस पथ पर चली हो, उससे मुड़ जाओगी, ना?'

कमला ने कहा—'अब ऐसा ही होगा, भाभी! सच ऐसा ही!'

'तो तू विश्वास कर, विपिन अदालत में कुछ नहीं कहेगा। वह जो कुछ करने चला है, निश्चय ही, उससे रुक जायगा।'

इतना सुनकर कमला मौन थी! वह अज्ञात बनी थी।

रजनी ने पूछा—'क्यों, भरोसा नहीं है? विपिन पर नहीं, तो मुझ पर भी नहीं?'

कमला ने मुँह पर चादर डाल ली थी, फिर हटा ली। वह रजनी की ओर देखने लगी।

रजनी ने कहा—'कमला बहिन, तुम विपिन को जिस दृष्टि से देखती हो, वह और है, मेरी और! मैंने विपिन को तो बाद में देखा, पहिले अपने पति से उसके विषय में सुन लिया था। विपिन जिन परिस्थितियों में मुखबिर बना, वह भी कम कठोर नहीं। वह विपिन के सहने योग्य नहीं। पुलिस बाध्य करती है। नृशंस अत्याचार करती है! जब विपिन पर पिस्तौल चलाओ, तो इतना भी याद रखना!'

रजनी ने कमला को साँस भरती हुई पाकर कहा—'मैं नारी हूँ।

मैं अपनी कोख से एक मनुष्य का निर्माण कर चुकी हूँ। मैं अपनी छाती का दूध पिलाकर कुमुद को पाल-पोसने में समर्थ हुई हूँ। यह बच्चा भी शीघ्र बड़ा बनेगा। इसलिए मैं हिंसा या प्रतिहिंसा की कल्पना नहीं करती। मेरी दिशा और है। और तुम भी नारी हो कमला! तुम्हारा विवाह हो गया होता, तो अब तक माँ बन जातीं। तब निश्चय ही, मेरी इस भावना का आदर करतीं। पर आज नहीं, शायद नहीं! तुम अपने समाज और धर्म की दुहाई तो देती हो, पर क्या उसका अर्थ भी समझती हो! और तुम उसी समाज से विपिन का खून करने की आज्ञा माँगती हो! तुम खून के बदले में खून करने की कल्पना करती हो!' यह कहते हुए रजनी उठ बैठी। वह कहने लगी—'यह दिशा गलत है! जिस आतंकवादी दल ने तुम्हें यह आदेश दिया, सचमुच ही, उसने अपनी दुर्बल नीति को प्रकट किया। उसने आदर्श के नाम पर अविवेकी और मूर्खतापूर्ण निश्चय किया!'

रजनी ने कहा—'तुम्हारा ऐसा कौन साथी है कि जो नहीं जानता कि तुम विपिन को प्रेम करती हो। उसे अपना मानती हो। और इसमें अपवाद क्या कि विपिन ने जो कुछ किया, बुरा किया! किंतु जो कुछ हुआ, उसके प्रतिकार स्वरूप तुमने और तुम्हारे साथियों ने जिस पथ पर चलने का निश्चय किया, बताओ, वह सत्य कहाँ है? वह तुम्हारे लिये ग्राह्य कहाँ? तुम्हारे इस नारी-जीवन में जो सौन्दर्य है, जो तुम्हारे अंदर है, वह अभी तुम्हारी दृष्टि से भी दूर है। तुम उसे देखो, कमला! तुम उसी की मनोरम आभा से उस पापी और नराधम बन गये विपिन को प्रकाश दो···उसे पखार दो! तुम उसे जीवन बनाये रखने का आशीष दो। अपने निर्मल और भावना भरे हृदय में भी उसे स्थान दो। निश्चय ही, वह फिर पवित्र बनेगा। वह फिर सुकुमार और अक्षत दिखाई देगा! मैं जानता हूँ विपिन हल्का है, भारी नहीं है, वह निर्मल है।'

विनीत बनकर कमला बोली—'मैं मति-भ्रष्ट हूँ, भाभी!'

'सो मैं जानती हूँ ! मेरी कमला रानी का हृदय इतना कोमल है, यह इतना स्निग्ध है कि पल में पिघलता है और पल में निरा सख्त दिखायी देता है।' यह परिस्थिति की बात है।'

'तुम बताओ, भाभी, मैं क्या करूँ ! भला मैं मर जाऊँ ! मैं अब कहाँ जाकर छिप जाऊँ !'

'वह मैं बताऊँगी। मैं तुम्हें सहारा दूँगी, कमला देवी ! मैं अब तुम्हें नहीं छोड़ दूँगी। मैं अब छोटी बहिन के समान, तुम्हें छाती से लगाये रहूँगी।'

उसी समय रजनी ने देखा कि कमला रो रही है। वह फुफक पड़ी है। रजनी ने कहा—'रोती हो ! तुम कैसी क्रांतिकारी हो ! ऐसे ही, पिस्तौल से आदमी को मारने की बात सोचती हो,—छिः !'

कमला ने अपनी रोती हुई आँखें ऊपर उठाकर कर कहा—'भाभी, मैं पीछे और कुछ दूं, पहिले नारी हूँ।'

'हां, हां, यह तो मैं जानती हूँ, समझती हूं !'

: ४२ :

जिस अदालत में विपिन और उसके साथियों का मुकद्दमा आरम्भ हुआ, रजनी और कमला वहाँ ठीक समय पर पहुँच गयीं। दर्शकों से अदालत भरी थी। पुलिस की सतर्कता भी पर्याप्त थी। साथियों सहित विपिन अदालत में लाआ गया। उसी समय रजनी उसके सामने जा खड़ी हुई। कमला साथ थी। रजनी को देखते ही, अनायास विपिन पुकार उठा—'भाभी—!'

मानों अज्ञात भाव में रजनी ने भी कह दिया—'विपिन बाबू—'

उसी समय, कमला ने कहा—'आओ, बैठ जाएँ, भाभी ! विपिन

की फूआ भी आई हैं। वह तुम्हें देख रही हैं।'

किन्तु रजनी ने जैसे कमला की बात नहीं सुनी। वह देखती रही कि विपिन तो वही है, उसका आत्मा वही, रूप भी वही। किन्तु हाय! कितना बदल गया है यह विपिन! जैसे महीनों से भोजन नहीं मिला। स्नान नहीं किया। कपड़े नहीं नहीं बदले। हजामत नहीं बनी। निरा कंकाल···निरा दीन! यह देख, रजनी का दिल रो पड़ा। आत्मा चीख पड़ी। उसके मन में आया कि वह दौड़कर, विपिनबाबू को पकड़ ले। छाती से लगा ले! वह अपने उद्वेग को बहाकर कहे—तुमने क्या किया, विपिन बाबू! सच, क्या!

उसी समय, कमला ने फिर टँकोरा—'चलो, बैठो, भाभी! तुम्हें लोग देख रहे हैं। समझती तो हो, अब तुम समाज के लिये अपरिचित नहीं हो!'

रजनी ने कहा—'विपिनबाबू की बुरी हालत है! ये दुःखी हैं! पीड़ित हैं!'

कमला ने कहा—'पुलिस जिसे मुखबिर बनाती है, उसे खूब तंग करती है। प्रलोभन देती है। मारती है।'

रजनी ने साँस भरी और वह विपिन की फूआ के समीप जा बैठी। उसे निकट पाकर फूआ रो पड़ी। रजनी शान्त करने लगी।

अदालत का कार्य आरम्भ हो गया।

कमला ने कहा—'अब विपिन बाबू का बयान होगा। नाम लिया जायगा!'

किंतु रजनी मौन थी। वह कभी वृद्ध अंग्रेज जज को देखती, कभी अलग कटहरे में खड़े, विपिन को। उसके पैरों में बेड़ियाँ और हाथों में हथकड़ी पड़ी थीं। विपिन जहाँ खड़ा था, वहाँ से, वह रजनी को कई बार देख चुका था। रजनी भी उसे सुगमता से देख रही थी। वह मुस्करा रही थी। आँखों से हँस रही थी। और ऐसा अभिनय वह मानो कठिनाई से कर रही थी।

पुलिस ने मुकदमे की फाइल पेश कर दी। विपिन का बयान भी पढ़कर सुनाया गया। जज ने विपिन की ओर देखा। बयान की सत्यता के लिए उससे पूछा गया। उसी समय, विपिन ने एक बार फिर रजनी की ओर देखा। जाने रजनी के मन में क्या आया कि वह अपने स्थान पर खड़ी हो गयी। किन्तु तभी विपिन ने जोर से, जैसे चीत्कार करते हुए कहा—'यह सभी कुछ झूठ है···पुलिस का छल है! मुझे मारा गया है! मेरा मस्तिष्क विकृत किया गया है! मैंने कोई बयान नहीं दिया! कुछ नहीं कहा। किसी का नाम नहीं लिया।' इतना कहते हुए, विपिन ने अपना सिर कटहरे के ऊपर पटक दिया। उसने फिर सिर उठाकर कहा—'पुलिस ने मुझे पाखानों में सड़ाया है। मेरे सिर पर पाखानों के भरे घड़े उँडेले हैं। ऐसे जघन्य कृत्य मेरे साथ किये गये हैं कि जिनका मैं यहाँ उल्लेख भी नहीं कर सकता। मैं एक सभ्य और सम्पन्न कुल का व्यक्ति हूं। पुलिस का यह अपना बयान है,—मेरा नहीं!'

जज ने फिर पूछा—'तो यह सत्य है कि यह बयान तुम्हारा नहीं?'

यह सुनते ही, विपिन ने तब भी अत्यन्त कठोर और गम्भीर बनकर कहा—हां, हां, 'यह सब झूठ है! पुलिस का फरेब है!'

विपिन ने रजनी की ओर देखा। लगता था कि जैसे उसने कुछ कहना चाहा। किन्तु रजनी ने केवल उसके होठों को फड़कते देखा। तभी उसने कमला से कहा—'आओ, उठो। अब यहाँ से चलो!'

तत्क्षण ही, कमला ने रजनी की ओर देखा। जैसे वह स्वप्न देख रही थी, जो बीच में ही टूट गया। वह एकाएक बोली—'चलोगी, भाभी! चलो!' कहते वह खड़ी हो गयी।

रजनी ने उठकर कहा—'चलो, चलो!'

'भाभी, यह विपिनबाबू—!'

'हां, हां, विपिनबाबू छूट जायेंगे! अब जल्दी ही, हम लोगों से

आ मिलेंगे। कहते हुए, उसने कमला का हाथ पकड़ लिया। उसने फूआ से भी विदा माँग ली और अदालत के कमरे से चल पड़ी। वहाँ से वह सीधी स्टेशन पहुँच गयी। रास्ते में उसने कमला से कहा—'कमला रानी, तुम भी पाप से बच गयीं और विपिन भी! वह फिसला तो, पर सम्भल गया! समय को पहचान गया।'

कमला ने दूर अन्तरिक्ष की ओर देखते हुए कहा—'हां, भाभी! सभी काम सरलता से बन गया!'

रजनी ने कमला का हाथ पकड़ लिया। वह दाब लिया। उसने कहा—'मैं समझती थी, यही होगा; वही हुआ।'

संन्ध्या होने-होते रजनी फिर गाँव लौट गयी। कमला साथ नहीं आयी। वह नगर में रह गयी। रजनी को गाड़ी में बैठाकर चली गयी। जब रजनी घर पहुंची, तो उसे आत्माराम का पत्र मिला। वह पढ़ा। उस पत्र से यह स्पष्ट था कि आत्माराम का मन जेल में स्वस्थ नहीं। क्योंकि बाहर जो कुछ हो रहा था, वह उसे अकल्पित और अमानुषीय लग रहा था। उसी पत्र में उसने विपिन का उल्लेख भी किया। उसे कायर और बुजदिल बताया। उन्हीं दिनों महात्मा गांधी ने भी समस्त देश मे सत्याग्रह का युद्ध छेड़ दिया था। चारों ओर अशान्ति और अव्यवस्था का वातावरण उपस्थित था।

रजनी ने पत्र पढ़ लिया और रख दिया। माँ ने पूछा—'क्या लिखा, आत्माराम ने? कोई समझौते की बात लिखी?'

रजनी ने कहा—'अभी कुछ नहीं।'

किन्तु अवस्था यह थी कि स्वयं जेल में बैठा हुआ आत्माराम मानो अपने-आप में भिचा जा रहा था। वह जीवन की दिशा मोड़नी पसन्द करता था। उसी जेल में स्वामीजी थे। अधिकारी वर्ग से समझौते की बात भी चल रही थी। किन्तु दोनों ओर ही, शर्तें अमान्य थीं। इसलिए वह चर्चा बढ़ रही थी। समय ले रही थी। यह स्पष्ट था कि राज्य का खर्चा भी बढ़ गया था। वह उसकी कमर तोड़ रहा था।

जनता की कुछ माँगें स्वीकार करना उसे मान्य था। किन्तु इसी बीच में स्वामीजी ने जेल अधिकारियों के दुर्व्यवहार को देखकर उपवास आरम्भ कर दिया। सत्याग्रहियों की कुछ माँगें थीं, उन्हें स्वीकार कराना स्वामीजी को अभीष्ट लगा। उसी समय आत्माराम ने उस उपवास की कठोरता के विषय में स्वामीजी से कहा। परन्तु स्वामीजी ने कहा—'मैं अपनी आत्मा की पुकार से जागृत और प्रभावित हूँ। मैं ईश्वरीय प्रेरणा से भी प्रेरित हूँ। मै तुम्हारी चिन्ता का कारण समझता हूँ। तुम भगवान् से प्रार्थना करो, वह मेरा सहायक बने। मेरा संकल्प पूर्ण हो।'

परन्तु उन्हीं दिनों की बात है कि जब ब्रिटिश प्रभुत्व के क्षेत्र में सत्याग्रह छिड़ा, तो आत्माराम ने सुना, महिलाओं के जिस जलूस पर पुलिस के घुड़सवारों द्वारा शहर में प्रहार किया, तो उसमें स्वयं उसकी माँ भी थी। माँ भी शहर पहुँच गयी। उस जलूस में आत्माराम की माँ घायल हो गयी। पुलिस के डण्डों के प्रहार से मूच्छित बन गयी। वह बीच सड़क पर गिर गयी। घोड़ों की टापों के नीचे आ गयी···!

जिस समय, आत्माराम ने यह समाचार पाया, तो बरबस ही, उसका सोया हुआ क्रोध जाग गया। उसके हृदय में प्रतिहिंसा का भाव भी पैदा हो उठा। जिस विचार ने सत्याग्रही बनने से पूर्व, उसे झकझोरा और उसका मन्थन किया, वह फिर प्रबल बन गया। मानो स्णिति का सहारा पा गया। आत्माराम पागल बन गया। वह माँ के पास जाने के लिए तड़प उठा। वह कल्पना करने लगा कि उसकी वृद्धा माँ के हाथ में झण्डा है, वह महिलाओं का नेतृत्व कर रही है कि तभी पुलिस के उद्दण्ड और अपने स्वत्व के अभिमान में चूर, घुड़सवार आते ही डण्डे मारने लगे। उसकी माँ मूच्छित बनकर गिर पड़ी। वह घोड़ों के पैरों तले रौंदी गयी! ऐसी विषम और दारुण कल्पना करके आत्माराम जैसे उसी स्थल पर पहुँच गया। जिसका दुष्परिणाम यह

हुआ कि उसका मस्तिष्क झंकृत हो उठा। आत्मा में रोमांच पैदा हो गया। वह जिस कोठरी में पड़ा था, उसी के सींकचों को पकड़कर दाँत भींचने लगा और उन्हें तोड़ने की चेष्टा करने लगा। कदाचित् वह जेल से बाहर होता, तो उन मदान्ध. घुड़सवारों को दण्ड देता··· वह एक-दो को जरूर जान से मार देता ! वह तब निरा सत्यवादी, कोमल और मधुर न रह पाता !

किन्तु आत्माराम तो उन लोहे के सींकचों में बन्द था। वह असहाय और पराजित था। सचमुच, कितना दीन था, आत्माराम ! जैसे निरा एकाकी और असहाय ! इसका परिणाम यह हुआ कि आत्माराम स्वामीजी की आध्यात्मिक कल्पना के प्रति उदास बन गया। उसके हृदय में जो क्रोध रूपी धुआँ उठा, वह मस्तिष्क में भर गया। वह सदा की भाँति उस दिन स्वामीजी के पास नहीं गया। वह अपनी कोठरी के बाहर पीपल के पेड़ के नीचे बैठा रहा। वह देखता रहा कि उस पेड़ की छाती पर—डालों पर—हजारों छोटे-बड़े पक्षी बैठते हैं। सभी आश्रय पाते हैं ! पेड़ के पत्ते साफ थे। चमक रहे थे। रात में पानी पड़ा, तो वे सब धुल गये थे। पक्षी चहक रहे थे। उनका कलरव-गान चारों ओर गूँज रहा था।

पिछली रात में ही, आत्माराम ने स्वप्न देखा था। उस स्वप्न में ही, उसने माँ को मारने वाले सिपाही के पेट में उसी की संगीन चढ़ी बन्दूक छीनकर मार दी थी। और माँ तब भी सड़क पर पड़ी थी। किन्तु जब उसने आत्माराम का कृत्य देखा, सिपाही की छटपटाहट देखी और उसे प्राण तोड़ते पाया, तो माँ एकाएक ही पीड़ित स्वर में बोली—आत्माराम, दुष्ट कहीं का !···नर-पिशाच !'

माँ क्रोध में थी। वह आत्माराम को घृणा की दृष्टि से देख रही थी। वह रुधिर से भीगी पड़ी थी। वह तभी फिर बोली—अरे, तू ऐसा बन गया, आत्माराम ! इतना ढीठ ! इतना गँवार !' और तभी उस माँ ने जमीन में पड़े सवार का सिर अपनी गोद में ले लिया।

वह स्वयं पीड़ा से कराह उठी। उसकी चोट भी कसक गयी। किन्तु उसका ध्यान अपनी ओर नहीं था। उस सवार की ओर था। उसी-की ओर देखते हुए उसने कहा—'बेटा! अरे, उठ! ले, इस आत्मा को मार दे। मुझे निपूती कर दे! मेरे मुँह की कालिख पोंछ दे! इस आत्मा ने बुरा किया…अच्छा नहीं किया! और आत्माराम सिर झुकाये हुए, एक तरफ खड़ा था। वह कुछ भी नहीं बोल रहा था। वह केवल माँ की आँखें देख रहा था और उनसे बहते हुए आँसुओं को लक्ष्य कर, जाने किस लोक में पहुँच गया था।

किन्तु उसी समय, सवार की चेतना जागी। उसने आत्माराम की माँ के पैर पकड़ लिये और आतुर स्वर में बोला—माताजी, मैं ही कपूत हूँ। मैं जानवर हूँ। अपनी दो रोटियों के लिये मैं माँ-बहिनों के ऊपर प्रहार करने के लिये विवश किया गया। मैं आदमी नहीं, पशु हूँ। यह कहते हुए वह रो पड़ा। वह आत्मा की माँ के पैरों में सिर रखकर हिचकियाँ भरने लगा।

उसी समय माँ ने उसके सिर पर हाथ रखा। उससे कहा—तुम युग-युग जीओ, तुम फूलो-फलो!

लेकिन उस सिपाही ने तब भी व्याकुल हुए स्वर में कहा—नहीं, माताजी! मुझे यह आशीष मत दो! तुम कहो, कीड़े पड़-पड़कर और गल-गलकर नष्ट हो! यह कहते हुए वह खड़ा हो गया और माँ को प्रणाम करके चला गया।

उसी समय, आत्माराम जाग गया था। वह बैठकर अपने सामने जेल के सींखचे और बाहर नित्य के दीखने वाले उस पीपल के पेड़ को देखने लगा। उसी समय, उसने साँस भर कर कहा—अरी, माँ! तू! सच, तू अनुपम! तू अजेय!

आत्माराम प्रसन्न था। वह उस समय अपने को निरा अहिंसक सत्याग्रही देख रहा था। वह तब उसी स्थिति में समाधिस्थ हो गया था। किंतु आत्माराम की स्थिति ठीक उस मनुष्य के सदृश बन गयी कि

जिसने अनेक घटनाओं से घिर कर, मस्तिष्क से सम्बन्ध तोड़ दिया था। हृदय के ऊपर ही अपने को आश्रित कर दिया। जैसे वह व्यक्ति संज्ञा-हीन बन गया हो। कदाचित् यही कारण था कि उन दिनों आत्माराम चिड़चिड़ा और बदमिजाज भी हो गया। उसे बात-बात में क्रोध आने लगा। उसने अपने जेल-प्रवास में जो नियमित कार्यक्रम बनाया, उसमें से आधा भी नहीं पुर पाता। पहले वह प्रातः होते ही, व्यायाम करता था। अपनी कोठरी के सामने घास के लॉन में घूमता और कुछ नाश्ता कर लिखने-पढ़ने बैठ जाता था अथवा स्वामीजी की कोठरी की ओर निकल जाता था। लेकिन जब से उसमें मानसिक उथल-पुथल आरंभ हुई, उसके जीवन का क्रम ही बदल गया। पढ़ना बंद हो गया। शरीर में आलस्य आ गया। उत्साह गिर गया। वह जेल से छूटकर माँ के पास जाने के लिये छटपटाने लगा।

किन्तु ऐसे ही समय, एक दिन, एकाएक स्वामीजी जेल से छोड़ दिये गये। इससे भी आत्माराम को सुख मिला। स्वामीजी उसे कुरेदते थे, कुछ-न-कुछ उपदेश देते थे। जिनसे वह ऊब रहा था। उदास बन रहा था। कहता कुछ था नहीं, मन-ही-मन कुढ़ता था।

ऐसे ही समय, रजनी और कमला ने आत्माराम से जेल में भेंट की। उन्होंने बताया कि राज्य झुक रहा है। सभी सत्याग्रहियों को शीघ्र छोड़ दिया जाने वाला है। उसी समय, रजनी ने कहा—'विपिन का समाचार पढ़ा ?'

आत्माराम ने कह दिया—'हां, वह मुखबिर नहीं बना। अदालत में इन्कार कर गया।'

कमला ने कहा—'यह भाभी का प्रयत्न था।'

आत्माराम बोला—'विपिन नहीं बचेगा। वह फाँसी पायेगा।'

रजनी ने कहा—'अब कुछ हो, वह कलंकित बनने से बच गया !'

उस समय, आत्माराम का मन एकाएक व्याकुल बन गया। वह विपिन के ऊपर अपना मत रखते हुए भी, कुछ नहीं बोल सका।

रजनी ने कहा—'तुम्हारा स्वास्थ्य गिरा है।'

आत्माराम ने कहा—'मेरा मन भी गिरा है।'

रजनी बोली—'घटनाएँ तेजी से घट रही हैं। कुछ नहीं कहा जा सकता कि कल क्या होने वाला है। माँ अब अच्छी है। कुमुद तुम्हें याद करता है।'

दूसरे दिन अन्य सत्याग्रहियों सहित आत्माराम जेल से छूट गया।

जेल से बाहर होकर आत्माराम ने देखा कि जैसे देश का वातावरण अतिशय विषाक्त बन गया है। राज्य से कुछ शर्तों पर समझौता हो गया। स्वामीजी ने इसके बाद ही, राजनीति से संन्यास ले लिया। उन्होंने कहा, यह मेरा काम नहीं। मैं साधु हूँ। ईश्वर की उपासना करना मेरा लक्ष्य है। इस राजनीति में भाग लेना दूसरों का काम है। स्वामीजी के इस प्रकार दूर होने का एक कारण यह भी था कि उन्होंने देखा, कुछ लोग उस राजनीति में आकर, अपने स्वार्थ के हेतु जातियों का और उसके धर्मों का विभाजन तक करना चाहते थे। पृथक्-पृथक् दलों का निर्माण करते थे। जिसका परिणाम यह हुआ कि एकात्म की भावना मिट गयी। राष्ट्र के उत्थान की इच्छा गौण बन गयी। परस्पर संघर्ष बढ़ गया। व्यक्तियों का स्वार्थ श्रेष्ठ हो गया।

जेल से छूटकर आत्माराम घर आया, तो वह जैसे एकाएक ही मौन बन गया। एक मास तक वह किसी से न ी मिला। वह किसी काम में भी नहीं लगा। वह केवल अपनी जमीदारी देखता और लिखने-पढ़ने में व्यस्त रहता। देश में जो कुछ हो रहा था, मानों उससे आत्माराम का कोई सम्बन्ध नहीं था।

किन्तु रजनी ने जब आत्माराम की उस उपेक्षित प्रवृत्ति को पाया, तो उसे आश्चर्य हुआ। देश में स्थान-स्थान पर रौरव काण्ड हो रहे थे और उसका पति उदासीन हो, हाथ-पर-हाथ रखे बैठा हो, यह उस रजनी को कदापि प्रिय नहीं लगा। माँ ने अब केवल ईश्वरीय उपासना में अपने को लगा दिया। उसने घर की ओर से भी ध्यान फेर लिया।

रजनी के कन्धों पर घर का बोझ डाल दिया गया। जब आत्माराम को जेल से आकर काफी दिन हो गये, तो माँ ने हरिद्वार जाने का विचार किया। एक दिन उसने हरिद्वार के लिये प्रस्थान भी कर दिया। माँ चली गयी तो रजनी के ऊपर ही सब कुछ आ पड़ा। उसे पूर्ण रूप से घर में रहना पड़ा। बाहर से सम्बन्ध टूट गया। उसने जीवन में एक लक्ष्य बनाया था, वह अनायास ही मिट गया। यह देख, सचमुच ही, रजनी का मन व्याकुल हो उठा। उसे घर का वह सीमित क्षेत्र मानो असहनीय लगता। देश तेल के खौलते कड़ाह में पड़ा था और रजनी तथा उसका पति घर पर बैठकर जमींदारी को भोग रहे थे। यों, रजनी का मन तड़पता! उसे सभी कुछ अनैतिक और अस्वाभाविक लगता था।

अवसर की बात कि एक सप्ताह बीत जाने पर भी आत्माराम और रजनी में घरू वार्ता को छोड़ बाहर के किसी प्रसंग पर चर्चा नहीं चली। किन्तु रजनी चाहती थी कि वह आत्माराम से कुछ कहे। कुछ उसकी सुने। किन्तु दिखता यह था कि आत्माराम अत्यन्त गम्भीर बनकर भी, मानों सभी ओर से छूट रहा था। उदासीन था। वह अपने-आप ही किसी विचार में उलझा था। इधर रजनी को कमला का भी कोई समाचार नहीं मिला। विपिन का नाम प्रायः उस घर में अब नहीं लिया जाता। वह जैसे उनके स्मृति-पट पर भी नही उतरता।

एक दिन रात के समय, जब आत्माराम सो रहा था, तो रात के दो बजे के लगभग सोती हुई रजनी की आँखें खुल गयीं। उसने देखा कि आत्माराम अपने पलंग पर बैठा हुआ है और सिर के बालों में दोनों हाथों की उँगलियाँ दिये रो रहा है। उसके रोने का स्वर रजनी के कानों में भी आ गया। वह सुबकियाँ ले रहा है। रजनी ने इतना देखा तो उसका हृदय भर आया। जिस पति को उसने शिथिल और देश की दुर्दशा के प्रति उपेक्षित पाया, उसीको वेदना से भरा देखकर, उसका मानस भी हिलोरें लेने लगा। उसमें स्वतः ही, कोलाहल उत्पन्न

हो आया। रजनी तुरन्त उठ बैठी। आत्माराम के बिस्तर पर गयी और उसके सिर पर हाथ रख कर बोली—'क्या है···क्या!' उसने कहा--'मैं पूछती हूँ तुम्हारे इस रोने का कारण क्या है? जो रोग है, भला उसका निदान क्या? तुम्हारी दृष्टि में उपचार क्या?'

उसी समय, आत्माराम ने आँखों को पोंछ लिया। वह सूखी दृष्टि से बाहर की ओर देखने लगा।

रजनी ने फिर कहा—'देश को जिस वस्तु की आवश्यकता है, वह उसे नहीं मिली। वह इस प्रकार जेल जाने से उपलब्ध नही हो सकती! उसके लिए तो महान् त्याग की आवश्यकता है। कर्मठ व्यक्ति चाहिएं! भला एक गांधी को छोड़, हमारे पास और क्या है! निश्चय ही, इस दासता को दूर करने के लिए बड़े तपस्वी चाहिएं! महात्माजी को सहयोगियों से क्या मिला,—कुछ भी नहीं! लोगों ने देशभक्ति की आड़ में अपना स्वार्थ सिद्ध किया। जनता से आदर पाया। किन्तु उनकी सरल भावना का अधिकांश लोगों ने दुरुपयोग किया।' उसने साँस भरकर कहा—'यह बड़ा रोग है! असाध्य है! लगता है कि देश में मनुष्य कम है, पशु अधिक! यहाँ स्वेच्छाचारिता का बाहुल्य है! चोर और लुटेरे हैं! जैसे, साँप और बिच्छू! डंक मारना ही इन व्यक्तियों का स्वभाव है!'

उसी समय, आत्माराम ने कठोर और कठिन स्वर में कहा—'रजनी देवी, हमारा देश स्वतन्त्र नहीं बनेगा! दासता अब और गहरी हो जायगी। मैं कई दिन से इसी विचार पर टिका हूँ। मैं अशान्त हूँ। हम सद्भावना और जीवन की पवित्रता से दूर है। मजदूर जब अपनी मजदूरी के पैसे माँगने के लिये गिड़गिड़ाता है, तो तब, मालिक को बड़ा आनन्द आता है। वह मालिक यह भी चाहता है कि मजदूर शराबी रहे, जुआरी रहे और अभावमय बना रहे! वह पैसे से तंग रहेगा, तो उस मालिक का काम ईमानदारी से करेगा। स्वामि-भक्त बना रहेगा। भिखारी भी!' वह बोला—'यही अवस्था इस देश के

समूचे समाज की है। दासता में रहकर भी, यहाँ के लोग अंग्रेजों का शासन चाहते हैं। पैसे वाले निम्न वर्ग का शोषण करना पसन्द करते हैं। वह मजदूर को शिक्षित नही बनाते,—सजग नहीं!' इतना कहते हुए आत्माराम अतिशय दारुण बन गया। उसने दीनता भरे स्वर में फिर कहा—'भला यह कैसी दीनता है! मनुष्य की कैसी कायरता है! और शासक वर्ग पूँजीपतियों का पालक है! क्योंकि वही तो दलाल हैं, इन शासकों के! वे देश का शोषण करके स्वयं भी खाते हैं, सरकार को खिलाते हैं। विदेशी इसी प्रकार इस देश में हकूमत करते हैं। जाति-भेद और वर्ग-भेद भी शासक ने किया है। दुर्भाग्य है कि देश के नेताओं ने उसे मान लिया। क्योंकि स्वार्थ उनका भी बलवान है। वह फलना चाहता है!'

आत्माराम ने साँस भरी और छोड़ दी। वह कहने लगा—'रजनी देवी, मैं इसीलिए रोता हूँ कि मैं असमर्थ हूँ, दुर्बल हूँ। मैं मानव होकर भी, मानव की कमजोरी को दूर नहीं कर पाता। मै उससे यह नहीं कह पाता कि मानव तू भूल में है! तू इन पूँजीवादियों की बन्दर बाँट का शिकार बना है। तू इन्हीं के द्वारा निर्मित धर्म-ग्रन्थों को पढ़ता है और ठगा जाता है। यह जाति और धर्म कुछ नहीं है,—हाँ, कुछ नहीं! तुझे जीवन रखने के लिये रोटियों का और मानव की सहानुभूति का आश्रित होना है—होता रहेगा!'

उसी समय रजनी ने अपनी देर की रुकी हुई साँस छोड़कर कहा—'तुम तस्वीर का एक ही रुख देखते हो, दूसरा नहीं। मैं कहती हूँ, तुम यह क्यों भूल गये कि पूँजीवाद का लक्ष्य ही यह है! उसके जीवन का विधान ही यह! वह इसी पर जीवित है। इतना नही हो, तो उसका जीवन एक दिन भी नहीं चल सकता। वह सुरक्षित नहीं रह सकता! और मजदूर अपने-आप में मूर्ख है,—जैसे जानवर! वह इतना समझकर भी, उठना नहीं चाहता! वह स्वयं परवश और दास बन गया है!'

यह सुनते ही, आत्माराम ने आहत और प्रताड़ित हुए स्वर में कहा—'हां, रजनी ! मैं इसे मानता हूँ,—इतना समझता हूँ !'

'तो समझो कि यह मानव कभी सुखी नहीं रहेगा। यह स्वतन्त्र भी नहीं रहेगा !' रजनी ने कहा—'जो शासक आज है, उसके हटते ही, कोई और उस स्थान पर बैठेगा। शासन और उस की परिपाटी का रूप नहीं बदलेगा। और पूँजीपति लोग शासक के हाथ हैं, पैर हैं। वह इसी आश्रय पर टिका है। वह बोली—'जब तक पैसा है, उसका अर्थ है, तब तक, उस परिपाटी का अन्त नहीं हो सकेगा। इसी अवस्था में न कोई भाई है, न मित्र है ! स्वार्थ प्रमुख है ! वही प्राप्य है ! आज तो पैसा ही, मनुष्य को मनुष्यता प्रदान करता है। वही पशुता और बर्बरता की सीख देता है।'

आत्माराम उद्विग्न बन गया—'तो मैं क्या करूँ ! मैं अब देश के किस काम आऊँ, रजनी !'

रजनी ने अपने पति के उस अशान्त भाव को देखकर, प्यार तथा ममता भरे स्वर में कहा—'तुम कुछ नहीं करोगे। जो कुछ होना है, तुम्हें करना है, उसके लिये तुम सदा की तरह आज भी ईश्वरीय प्रेरणा पा सकोगे। तुम अपने भगवान की आज्ञा पर चलो। वही मानो। इस विश्व के आँगन में तुम भी अपना कर्म सम्पादित करो। इस प्रकार मौन मत रहो। उदास नहीं। इस जीवन का यों गला मत घोंट दो !'

उस समय आत्माराम बाहर अन्तरिक्ष की ओर देख रहा था। रजनी कितने पते की और गूढ़ बात कह रही थी, उसे सुनकर भी, सचमुच, उसका मन हल्का हो गया था।

: ४३ :

इतने समय में, रजनी के परिष्कृत विचारों को पाकर आत्माराम ने सन्तोष अनुभव किया। गाँव में और कोई तो उसका साथी था नहीं, इसलिए अपनी पत्नी रजनी से बात करना ही उसे पसन्द था। किन्तु रजनी के मन में बात थी कि उसका पति भले ही विपिन का उल्लेख नहीं करता। ऐसा प्रसंग छिड़ता है, तो आत्माराम झुंझलाता है और उसे उपेक्षा का भाव दिखाता है। लेकिन रजनी को विश्वास था कि विपिन उसके पति के मन में है। वह अभी निकाला नहीं गया।

उन्हीं दिनों उस घर के शुष्क और नीरस वातावरण में एकाएक कमला ने प्रवेश करके, उसे नव-जीवन प्रदान किया। कमला को देखकर आत्माराम भी प्रसन्न हुआ और रजनी को भी सुख मिला।

किन्तु कमला ने उस घर पर आकर जो नया समाचार दिया, वह यह था कि विपिन छोड़ दिया गया। यह सुनकर, रजनी और आत्माराम ने हर्ष के स्थान पर अचरज प्रकट किया। आत्माराम इतना सुनकर भी, मौन रह गया।

कमला ने कहा—'वह परसों छूटे थे। सुना कि घर आये और कहीं बाहर चले गये।'

रजनी ने पूछा—'विपिन बाबू तुम्हें नहीं मिले ?'

कमला ने कहा—'नहीं।' वह बोली—'शायद विपिनबाबू ने यह पसन्द नहीं किया। मैं समझती थी, वह यहाँ आये होंगे, परन्तु उन्हें यहाँ भी नही देखा गया !'

आत्माराम ने कहा—'वह यहाँ नहीं आयेगा। आना भी नहीं चाहिये।' किन्तु आत्माराम ने इतना कह तो दिया, लेकिन हृदय से नहीं स्वीकार कर सका। वह अपने कमरे में चला गया। वहां जाते ही वह किताब खोलकर देखने लगा। किन्तु अक्षर नहीं पढ़े गये। वे स्याही से लिपे-पुते लगे। और आत्माराम के मन में बात थी कि हाय ! परिस्थितियाँ भी अजीब है ! आदमी को कहाँ-से-कहाँ फेंक देती हैं।

परस्पर मिलने वालों को दूर-दूर कर देती है ! इतना कहते ही, उसे अपना और विपिन का सामीप्य याद आया। उन दिनों की अनन्यता भी स्मरण हो आई ! दोनों कितने गहरे सखा···अभिन्न मित्र ! परन्तु आज दोनों ही दूर हैं। दोनों के हृदय फटे हैं। वह पुरानी एकात्मीयता खण्डित बन गयी है !

उसी समय, रजनी के साथ कमला भी वहाँ आ गयी। वह आत्माराम को लक्ष्य करके बोली—'भाई जी, आप तो जैसे संन्यासी बन गये, निखालिस गाँव वासी ! यह गाढ़े की मिर्जई, घोंटे तक की धोती। आपने यह दाढ़ी के बाल भी बढ़ा लिए हैं।'

इतना सुनकर भी, आत्माराम हँसा नहीं। केवल मुस्करा दिया। वह कमला के उस खिले हुए मुँह की ओर देख, बड़ी भावनामयी दृष्टि से देखने लगा। उसका अपना वेश देहाती जरूर था, परन्तु सलीके का था। कपड़े साफ चमकीले थे। सिर और दाढ़ी के बाल भी तेल लगाकर कंघे से काढ़े हुए थे। इसलिए वह एक सभ्य संन्यासी के समान लगता था। आत्माराम की आँखों और मुँह का तेज भी देखने वाले को अपनी ओर आर्कषित करता था।

कमला ने फिर हँसकर कहा—'आप तो हैं ही जन्म के योगी ! स्वामीजी का रंग चढ़ा है।' यह कहते हुए उसने फिर खिलखिलाकर हँस दिया। उसने रजनी को भी हँसाने का प्रयत्न किया। उसने रजनी से कहा—'तुम्हारा भी यही हाल है, भाभी ! सन्यासी की पत्नी बनकर, तुमने भी संन्यास ले लिया दीखता है। न माँग में सिन्दूर, न माथे पर बिन्दी !' और उसने एक शेर का पद पढ़ दिया—

'हमें तो भरी जवानी में मौत आई है !'

हँस कर रजनी ने कहा—'अरी तू !' वह बोली—'देखती हूँ तुझे जैसे कुछ मिल गया हो ! बता तो, अब विपिनबाबू का क्या ठिकाना है ? और तू कहती है कि जेल से आकर भी मुझे मुँह नहीं दिखाया, विपिनबाबू ने !'

कमला ने उसी प्रकार मस्ती से इठलाते हुए कहा—'भाभी, वह दिन गए, जब खलील मियाँ फाख्ता उड़ाते थे !'

रजनी ने कहा—'क्या मतलब !'

कमला बोली—'मतलब साफ है ! विपिनबाबू न मुझे मिलगे, न मैं उनको ! सुना तो होगा ही तुमने कि मैंने अपने दल से स्तीफा दे दिया ।'

आत्माराम कमला के उस अप्रत्याशित रूप को देखकर, चकित था और प्रसन्न था ।

रजनी ने कहा—'कमला तू अच्छी आगयी, भाग्य तेरे कि ये भी घर पर रहने लगे । नहीं तो, दिन भर जंगलों की खाक छानते थे। इस गर्मी में भी जाने किस पेड़ के नीचे जा बैठते । देखती है, इनका शरीर कितना काला पड़ गया है । कभी ग्वालियों के साथ गाय-भैंस चराते भी देख लिया जाता ।'

किन्तु उस समय कमला हँसी नहीं । वह गम्भीर बन गयी । उसने आत्माराम को देखकर कहा—'भैया ग्वालियों और मजदूरों को भी इन्सानियत का सबक देते होंगे । किसानों को ठीक रास्ता बताते होंगे !'

आत्माराम ने कहा—'सभी अपना भला-बुरा समझते हैं । कोई उन्हें ठगता है, तो उसे भी जानते हैं । परन्तु वे कहते नहीं । कुछ कर नहीं सकते । निरावलम्ब हैं ।'

'यह तो सत्य है ! मुझे भी पता है ।' कमला ने कहा ।

आत्माराम ने फिर कहा—'आज के इन्सान का यह भी अपराध है कि वह कर्मण्य नही, असहाय है ! जीवन के प्रति उदासीन है ! अरक्षित है ।'

एकाएक कमला ने कहा—'भाई जी—'

'कमला बहिन, आज के इन्सान का जीवन झिझोड़ा जा रहा है । लगता है, कि मसला जा रहा है ।' आत्माराम ने कहा ।

'तो क्या साम्यवाद नहीं आयेगा ? यह मानव इस त्रस्तता की दलदल से पार नहीं होगा ?' कमला ने पूछा ।

आत्माराम खड़ा हो गया। वह बोला—'अभी कुछ नहीं दिखता नहीं।'

रजनी ने कहा—'साम्यवाद जरूर आयेगा! त्रस्त मानव की पुकार को अधिक दिन नहीं दबाया जा सकेगा!'

आत्माराम ने बात सुन ली। वह सूखे भाव में मुस्करा दिया। वह बाहर चला गया।

जब कमरे में कमला और रजनी रह गयीं, तो उसी समय, कमला ने कहा—'सुनती हूँ, भय के कारण ही विपिनबाबू दूसरे स्थान पर चले गये! उन्हें यह भी पता चल गया कि दल के व्यक्ति मुझे मारने पर तुले हैं।'

रजनी ने एकाएक कहा—'कायर! डरपोक!'

कमला बोली—'कायर व्यक्ति के पास आत्मबल नहीं होता, भाभी! पापी के पास भी नहीं!' उसने कहा—'ये पैसेवाले इसीलिये डरते हैं। शोषण करके ये अपना हृदय भी दुर्बल बना लेते हैं।'

रजनी ने बात सुन ली, तो एकाएक मत नहीं दिया। उसने कुछ नहीं कहा। जैसे उसे कमला से इतना सुनना भी दुष्कर लगा। अच्छा नहीं लगा। उसके मन में बात आई कि यह कैसी देश-भक्ति है। आपस में लड़कर ही, अपनी शक्ति कम की जा रही है। एक के दोष पर सभी दोषी बन रहे हैं। मानो तेज के दरिया में सभी प्रवाहित है··· डूब रहे हैं!'

उस समय संध्या आ गयी थी। दिन भर की गर्मी के बाद ठण्डी हवा चलने लगी थी। उस दिन लू भी कम थी। कहीं वर्षा पड़ गयी थी। बाहर से आकर आत्माराम ने कहा—'आओ घूम आयें। खेत दख आयें।'

रजनी और कमला तैयार हो गयीं। कुमुद उस समय नाना के साथ गया था। देर से घर नहीं लौटा था। शायद संध्या का खाना खाकर लौटने वाला था। इसलिये रजनी उसकी ओर से निश्चिन्त

थी। तीनों जंगल में निकल चले। आम के पेड़ों पर कोयल बोल रही थी। कमला उस स्वर को सुनकर रुक गयी। वह रजनी से बोली—'शहरों में यह स्वर नहीं···स्वाभाविकता नहीं! प्रकृति का यह रूप भी उपलब्ध नहीं!'

रजनी ने कहा—'शहर का जीवन बनावटी है। पैसे पर आधारित है।'

एक खेत की मेंड पर जाकर आत्माराम खड़ा हो गया। उसी समय कमला ने देखा कि एक पक्षी है, वह परेशान है। दूसरा पक्षी उसके पीछे लगा है। पहिला जिस डाल पर जाता है, तो दूसरा भी वहीं पहुँचता है। वह उसके चोंचें मारता है। क्या जाने कि वह शत्रु था या मित्र,—उसका प्रेमी! किन्तु कमला को वह शत्रु दिखता था। वह जिस बर्बरता से चोंच मारता, वह सचमुच ही, कमला के लिए असह्य था। उसे देखकर ही, कमला का मन स्वस्थ और सुखी नहीं रह सका। उसने तुरन्त रजनी से कहा—'देखो, भाभी—!'

रजनी ने उस ओर देखा। एक पक्षी की असहायता और दूसरे की दुर्दमनीयता ने उसे भी जैसे स्तब्ध कर दिया। किन्तु तुरन्त ही, रजनी ने कहा—'यह है, स्वर्गीय और अनुपम जीवन! मन करता है, मै पक्षी बन जाती···पंख लगाकर उड़ जाती!'

'तो, भाभी—!'

'अरी, पगली! ये दोनों प्रेमी हैं! किन्तु वह आघात करने वाला पुरुष है न,—महत्वाकांक्षी है! बर्बर है! वह अनायास ही, अपनी इच्छा लिए हुए मदान्ध बन गया है! आतुर हो गया है!'

कमला ने साँस भरकर और मुस्कराकर कहा—'अरी, भाभी!'

उसी समय आत्माराम भी वहाँ आ गया। कमला ने प्रसंग बदल कर कहा—'भाई जी, गाँव के लोग यदि यहीं पर गुजारा पाते, तो क्यों शहर के गन्दे वातावरण में जाकर रहते! सच, यहाँ मनुष्यता है। भाईचारा है।'

आत्माराम ने कहा—'कभी था, आज नहीं। आज तो यहाँ जहालत है। अंग्रेजों ने गाँवों को निकम्मा बना दिया।' वह बोला—'गाँव छोटा सा अंग है, शहर बड़ा है। वहाँ प्रकाश है। शोर है। वैभव है। गाँव उजड़े तो शहर बस गये। शहरों का गन्दी हवा यहाँ भी आती है। प्रभावित करती है।'

कमला ने कहा—'आप दोनों भी तो गाँववासी हैं।'

आत्माराम बोला—'यह भी दुर्भाग्य है कि गाँव का व्यक्ति इसमें भी अपनी हीनता मानता है। मैं भी अपने को गाँव का नही समझता। गाँव का वह है, जो यहाँ के जीवन में मिल गया। दुःख-सुख का साथी बन गया। जिसने गाँव के कच्चे मकान अथवा फूँस के झोंपड़े में जीवन नहीं बिताया, वह किस प्रकार गाँववासी बन सकता है। मेरे पुरखे पक्का महल बनवा गये तो मैंने उसी में साँस लिया। भला यह अच्छा है, क्या? यही रजनी की बात है। इसका पिता भी जमींदार है। ऐशपरस्त है। शहर की हवा में पला और रहा है।'

कमला ने रजनी की ओर देखा। उससे कहा—'तुम चुप हो, भाभी! कुछ कहो। सच, आज मुझे लगा कि साँस चल रहा है। मुक्त वायु का झोंका मिला है।'

रजनी बोली—'यदि यहाँ रहो, तो फिर इस वायु का मूल्य कम समझने लगोगी! फिर शहर की याद करोगी!'

'और तुम भाभी,—तुम! तुम मानो शहर में रही हो!'

रजनी ने आत्माराम की ओर देखा। तभी कहा—'मेरा कैसा प्रश्न! जहाँ शिव वहीं गंगा।'

इतना सुना, तो कमला के साथ आत्माराम भी हँस दिया। किन्तु इसके बाद ही, आत्माराम ने यह भो लक्ष्य किया कि आसमान में जो एक छोटी-सी काली और सफेद बदरिया उठ आई, तो कमला उसे बार-बार देखती और जैसे अपने मन में कुछ अजीब-सा अनुभव करती। तो आत्माराम ने अनायास ही अपने-आप कहा—इस कमला

के पास भी अभाव है···जीवन सूना···एकाकी है। फलस्वरूप आत्माराम बरबस ही बोला—'तो कमला, यह बताओ, अब तुम्हारा क्या लक्ष्य है ? क्या विवाह ? देश-सेवा ? या कि—?'

इस अप्रत्याशित बात को सुन, कमला ने रजनी की ओर देखा। सचमुच उसकी आँखों में निराशा थी, वेदना थी। रजनी बोली—'कमला का लक्ष्य बिगड़ गया। मार्ग भ्रष्ट हो गया।'

आत्माराम ने कहा—मैं इसे समझता हूँ। इसी से पूछा ! कमला जब से आई, कई बार यह प्रश्न मुझमें उठा। आज पूछ लिया। अभी मैं इन बादलों को देखकर भी समझा।' वह बोला—'रजनी, विपिन दूर हो गया। भ्रष्ट बन गया। परन्तु यदि कमला उसे पाना चाहे, तो पा ले। मेरा आज भी मत यह है कि विपिन हृदय का बुरा नहीं। जो कमजोरी उसने प्रदर्शित की, वह भी उसकी नही थी। पैतृक थी। उसके पिता धनिक थे। शहर के विशिष्ट व्यक्ति थे। अतएव, धन पाकर वे आत्म-दुर्बल भी थे। वही दुर्बलता पिता की सौगात बनकर विपिन को मिली। भूल मेरी भी थी। मुझे विपिन की इस कमजोरी को समझ लेना था। उसे इस काम से दूर रखना था। पर खैर, तुम चाहो कमला, तो उसे वर लो,—अपना पति बना लो। वह स्वीकार कर लेगा। तुम मिलीं, तो वह भी अपना जीवन सुखी बना लेगा। और तुम अकेली हो। एकाकी ! ऐसे तो निभाव नहीं होगा। तुम्हारे जीवन में अभाव रहेगा। जीवन का मार्ग कंटकपूर्ण बनेगा।'

रजनी ने कहा—'विवाह के लिए और भी वर मिल सकते हैं।'

कमला ने कहा—मैं ऐसी रहूँगी। अविवाहित ही इस जीवन को काट दूंगी।'

यह सुनकर, आत्माराम ने फिर बादल की ओर देखा। वह फैल रहा था। कहीं दूर बिजली भी चमक रही थी। आत्माराम ने कहा—'आँधी आयेगी, पानी बरसेगा।'

कमला बोली—'और जिसके जीवन में ही आँधी उठी हो, बरसात

आती हो, सूखती हो, उसका क्या ! हाँ, मेरा क्या ! कितने सावन आये · कितने भादों···!'

आत्माराम बोल नहीं सका। वह पीड़ित बनकर रजनी की ओर देखता रह गया।

रजनी ने कहा—'कमला, तुम चिन्ता न करो। भगवान पर भरोसा रखो।'

आत्माराम ने कहा—'कमला बहिन, विचलित मत बनो। मैं अनुभव करता हूँ, जो सबको चाहिए, वही तुमको भी चाहिए। तुम इन काले बादलों को देखकर हर्षती हो ! तुम भी इनकी आत्मा के मधुर-गान की कल्पना करती हो। वह गान तुम्हें भी विलोड़ित करता है। प्रेरणा देता है। ये बादल हँस-हँसकर, गलबहियाँ डाल-कर बरसात लाते हैं···जीवन का संदेश देते हैं।' वह बोला—'मैं तुम्हें उन कामनाओं के भोगने की सीख नहीं दूँगा, जिसे दुनिया भोगती है। उन्माद से भरती है। वह तो सड़ाँध है। बदबू है। मैं तो कहता हूँ कि तुम भी हँसो ! चहको ! इन बादलों के समान बरसो। जीवन दो। मुझे रजनी ने यह नहीं बताया कि विपिन को मारने का काम तुम्हें सौंपा। लेकिन यह अच्छा ही हुआ कि तुम्हारा वह दूषित संकल्प बिना फले ही मिट गया। ऐसा होता, तो सचमुच तुम्हारे मुँह पर कलंक लग जाता। प्रेम का मुँह काला हो जाता। लोग कहते हैं कि कर्तव्य बड़ा है। परन्तु वह तो आदर्श की कसौटी है। और आदर्श एक उफान,—जैसे जोश ! वह ठण्डा भी पड़ता है। आदर्श अव्यावहारिक भी बन जाता है। परन्तु प्रेम तो अमर है,—भावना है ! उसका आधार सत्य है। और तुम नारी की दहलीज पर खड़ी हो। तुम दया और क्षमा की मूर्ति हो !'

वे लौट पड़े। घर आ गए।

उसी समय, रजनी ने कमला को टँकोरकर कहा—'कुछ सुना ! तुमने जिस पुरुष को अपने हृदय में प्रतिष्ठापित किया, उसे सँजोओ !

उसे पाओ !'

'हां, भाभी ! मैंने सुना ! भाई और भाभी का कहना हृदय में उतार लिया !'

कमरे में बैठकर आत्माराम ने कहा—'विपिन के रोग का इलाज उससे घृणा नहीं; प्यार है। ऐसे तो वह सचमुच ही मर जायगा। जीवन से छिन जायगा। तुम चाहो, तो विपिन फिर बलवान बन सकता है। वह आदमी है। उसका प्राण है और परमात्मा है। आदमी को आदमी बनाना भी दुष्कर है। परन्तु तुम्हारे लिए सरल है। मैं मानता हूँ तुम आज भी उससे प्रेम करती हो। विपिन यहाँ आया होगा, इसीलिये तुम यहाँ दौड़ आई हो !'

एकाएक कमला ने कहा—'भाई जी—'

आत्माराम ने कहा—'मैं भाई हूँ। बड़ा हूँ। लज्जा मत करो। सत्य को मत छुपाओ ! अन्तर की प्रेरणा को मत रोको। प्रवाह को बहने दो। रुक जायगा, तो सड़ेगा। ऐसा मत करो।'

उसी समय आदमी डाक लाया। आत्माराम ने एक अखबार खोला। उसके मुख्य पृष्ठ पर ही पड़ा, वह बरबस चौंक गया। मुँह से निकला—'अरे,...परमात्मा !'

रजनी ने कहा—'क्या है ?'

आत्माराम ने उत्तर नहीं दिया। उससे अखबार छूट गया।

रजनी ने अखबार उठाकर देखा तो उसके मुँह से भी निकला—'विपिनबाबू—!'

उसी समय, कमला ने समाचार पढ़ लिया। जिसमें लिखा था—'एक अंग्रेज अफ़सर की हत्या ! विपिनचन्द्र गिरफ्तार !'

कमला का मुँह रजनी के कन्धे पर गिर पड़ा। उसके मुँह से फूट पड़ा—'भाभी—!'

'हां, कमला बहिन !' रजनी ने कमला की भरी हुई आँखों पर अपना गरम हाथ रख दिया। उसने कहा—'विपिनबाबू फिर फँस

गये ! वह फिर—!'

आत्माराम ने आप्त हुये स्वर मे कहा—'अब विपिन नहीं बचेगा ! वह फाँसी पायेगा ! उसने यह दुष्कृत्य अपना कलंक धोने के लिये किया। उसका मस्तिष्क विकृत हो गया···विपिन···!'

उस समय आत्माराम का स्वर भारी बन गया। वह अशान्त हो गया। वह विपिन के प्रति महीनों से उपेक्षित और उदासीन था, तो उस क्षण सभी-कुछ भूल कर, फिर अपने पहिले विपिन की सीमा में पहुँच गया।

: ४४ :

उस रात आत्माराम की आँखों में नींद नहीं थी, वह जाग रहा था। विपिन की समस्या मे उलझा था। उसके सामने प्रश्न था कि विपिन ने स्वयं ही, अपने को आग में झोंक दिया···मरना ही लक्ष्य बना लिया !

आत्माराम के कमरे के बराबर ही दूसरे कमरे में रजनी और कमला सो रही थी। देर हुई कि वहाँ का लैम्प भी बुझ गया। कुछ देर पहले वे दोनों बोल रही थीं। आत्माराम इस बात की चेष्टा में था कि सो जाये, किन्तु नींद आँखों से दूर थी। उसी समय, आत्माराम ने देखा कि उसके द्वार के सामने से कोई गया है। शायद बाहर गया है। यह देखते ही, आत्माराम ने आवाज दी—'कौन ?'

'भाई जी, मैं हूँ, कमला !'

'कमला बहिन, क्यों ?'

यह सुनकर, कमला आत्माराम के कमरे के द्वार पर रुक गयी, वह बोली—'नींद नहीं आई ! कमरे में गर्मी लगी।'

आत्माराम ने अपने लैम्प की बत्ती ऊँची कर दी। वह उठ बैठा। कमला की ओर देखकर बोला—'मैं तुम्हारे मन की पीड़ा समझता हूँ, कमला बहिन ! आओ, बैठो !'

कमला कमरे में आ गयी। बैठ गयी।

आत्माराम ने कहा—'मैं भी नहीं सो पाया। विपिन की समस्या में उलझा रहा। मैं प्रत्यक्ष देखता रहा कि उसने अपने हाथों आत्म-हत्या करने का प्रयत्न किया।

कमला ने बाहर के अन्धकार की ओर देखा। उसने कुण्ठित हुए स्वर में कहा—'भाई जी, उन्हें यही शोभता था ! यही तो जीवन पाने का एक रास्ता था !'

एकाएक चौंककर आत्माराम ने कहा--'क्या कहती हो, कमला ! ओह, तुमने भी यही कहना सीख लिया। मुझे दिखता है, कालेज की पढ़ाई में, विपिन और उसके साथियों की बैठक में तुमने भी इसी धारणा पर अपना विवेक खो दिया। कभी गम्भीरता से भी सोचोगी ! अपनी आत्मा की वाणी भी सुनोगी !' यह कहते हुए आत्माराम ने फिर शान्त और स्थिर स्वर में कहा—'मेरी भोली बहिन, तुम संगठित और एक नहीं हो। तुम अपने विचारों में स्वयं उलझी हो। जिस आदर्श की कल्पित दुनिया से तुम नाता जोड़ती आई हो, देखो तो, वह स्वयं बिखरी है। वह अव्यवस्थित है। इस जीवन में तुम सत्य को पीछे नहीं रख सकती। निःसन्देह, तुम सेवा का लक्ष्य निर्धारित नहीं करती। किसी को मारना और स्वयं मरना कठिन नही। लेकिन जीवित रहना कठिन है। इस रास्ते से मेरे कई अच्छे साथी चले गये। रतनलाल नहीं भुलाया जा सकता। आज विपिन भी उसी रास्ते पर जाने के लिये आगे बढ़ गया। सभी गए, मैं अकेला रह गया !

कमला सुन रही थी और मौन थी। वह सिर झुकाये बैठी थी। उसका जूड़ा खुला था। बाल कमर पर फैले थे। आँखें चढ़ी थीं। निश्चय ही, वह बिस्तर पर पड़ी हुई रोयी भी थी। उसी समय आत्मा-

राम ने फिर कहा—'इस संन्ध्या की डाक से मुझे एक पत्र भी मिला। वह मेरे एक मित्र ने दूसरे मित्र की मृत्यु का समाचार लिखकर भेजा। मैं अभी विपिन की बात के साथ, जब उस मित्र की स्मृति पर पहुँचा, तो सचमुच ही, इस जीवन की असारता और व्यापकता दोनों ही की तुलना करने में लीन हो गया। तुम्हारी भाभी को पता है, कि इस जीवन की,—इसकी व्यापकता की खोज में—मैं अनेक रातो में जागकर बैठा हूँ। मैं निरन्तर सोचता रहा कि क्या हमारा कृत्य सत्य नहीं है ? वह भगवान् की प्रेरणा नहीं ? किसी को ठगना या मारना उसकी इच्छा नहीं ? परन्तु, मैंने तो देखा कि मनुष्य बहुत-से काम स्वयं अपने मन की प्रेरणा पर करता है। इसलिए, मानव सदा ही बँधा है। परतन्त्र है। जहाँ बुद्धि अपना काम छोड़ती है, वहीं पर आदमी असुर बनता है···आसुरी वृत्ति का दास होता है ! सत्युग में भी यह मानव पशुओं के समान बाजारों में बिका। इसका क्रय-विक्रय हुआ !' इतना कहते ही, आत्माराम तीक्ष्ण दृष्टि से माथे मे बल डालकर अन्धकार की ओर देखने लगा। उसी समय कमला ने अपना मुँह उठाया।

किन्तु आत्माराम ने कहा—'यह पूँजी का निर्माण ही समाज पर कुठार है। यह कलंक है। इसने संसार सजाया, मनुष्य विकसित किया, परन्तु दोनों की शान्ति का भी अपहरण कर लिया !'

कमला ने कहा—'तो मैं क्या करूँ, भाई ! सचमुच, अब मैं अकेली हूँ। असहाय हूँ !'

'हाँ, बहिन ! मैं अनुभव करता हूँ। मैं तुम्हारी अवस्था की विषमता समझता हूँ।' आत्माराम ने कहा—'रजनी तुम्हारी मदद करेगी। वह तुम्हें शान्ति भी प्रदान कर सकेगी ! अब सो जाओ !'

कमला उठ खड़ी हुई। वह उदास, खिन्न और आहत बनी हुई, आत्माराम के कमरे से बाहर निकल गयी।

: ४५ :

प्रातःकाल के समय जब आत्माराम जंगल से घूम कर लौटा, तो द्वार पर देखा कि घर का तांगा जुता खड़ा है। उसमें सामान रखा है। आत्माराम को देखते ही, रजनी ने कहा—'कमला जा रही है। इसी ट्रेन से शहर पहुँचना चाहती है।'

'तो—?' एकाएक अपनी बात पर रुककर आत्माराम ने रजनी की ओर देखा। उसने कमला को भी लक्ष्य किया। वह बोला—'तो तुम जा रही हो? अभी जा रही हो?'

कमला ने कहा—'हाँ, भाई जी! मैं जाऊँगी! अब अपना नया रास्ता देखूँगी!'

उसी समय बात सुनने के साथ, आत्माराम ने देखा कि कमला की आँखें भरी थीं। यह देखकर, आत्माराम ने उसके सिर पर हाथ रखा और कहा—'कमला तुम दुर्बल हो। चाहो तो, रजनी के साथ रहो। हम तुम्हारी चिन्ता करेंगे! कोई अन्य रास्ता खोजेंगे!'

कमला ने ऊपर आसमान की ओर देखकर कहा—'भाई जी, रास्ता तो बना था, मिट गया। अब मैं अन्धी नहीं बनूँगी! मैं किसी छोटी पगडण्डी पर चलूँगी।'

आत्माराम ने कहा—'जीवन को फैलाना, विस्तृत करना, केवल चिन्ता प्रदान करता है। तुम समझदार हो, अपनी दिशा बना सकती हो। भगवान् तुम्हारी मदद करेंगे!' यह कहते हुए आत्माराम गम्भीर बन गया। वह फिर बोला—'तुम विपिन के प्रति समर्पित हुईं। अपने इस सुवास भरे जीवन में उसको साथी बनाया। दुर्भाग्य दोनों का रहा। मैं तुम दोनों में से एक की भी मदद नहीं कर सका। काश, विपिन बच जाये! उसको ईश्वर उस दलदल से खींच लाये!'

कमला ने साँस भरकर कहा—'अब वह नहीं बचेंगे! उन्होंने अपने जीवन में जो एक भूल की, तो वह अपराध गुरुतर बन गया। वह भोगना पड़ गया। विपिन बाबू ने स्वयं ही अपने को प्रायश्चित की

आग में झोंक दिया ।'

आत्माराम ने सदय भाव में कमला के सिर पर हाथ रखा । वह बोला—'नहीं कमला ! विपिन पापी नहीं ! उसने कोई भूल भी नहीं की । उसकी आत्मा भ्रष्ट नहीं हुई । मैं रात भर यही देखता रहा । मैं विपिन की उज्ज्वल आत्मा के दर्शन करता रहा । मैंने समझा कि विपिन निश्छल है । जेल में सोचा था, विपिन गद्दार निकला···देशद्रोही बन गया ! सरल मानव के रूप में साँप हो गया । परन्तु वह तो सरल और तेजोमय दिखाई दिया । वैसा ही अल्हड़ और चंचल । कोई छिपाव नहीं । दुराव नही । छल नहीं । वह मेरा समझा-बूझा विपिन सिद्ध हुआ !' यह कहते हुए आत्माराम रुक गया । वह कमला और रजनी की ओर देखने लगा । वे दोनों नारियाँ मौन थीं । दोनों ही, विपिन नाम के परिचित की सीमा में बंधी थी । उसीके कल्पनालोक में पहुँच गयीं । आत्माराम कहने लगा—'मैंने तुम दोनों से कहा कि विपिन ने पुलिस को जो अपना भेद बता दिया, तो वह उसकी परिस्थिति की दुर्बलता थी । पैतृक हीनता की भावना भी उसके साथ थी । वह उन संस्कारों मे फँस गया था कि जिनमें उसका जन्म हुआ । किन्तु अदालत में रजनी को देखते ही, उसे फिर अपनी वास्तविकता का आभास मिल गया । विपिन अपने को पहचान गया । वह समझ गया कि पथ छोड़ दिया···गलत दिशा को पकड़ लिया ! यही कारण था कि विपिन फिर सँभल गया । मुकद्दमा दुर्बल बन गया । उसके साथी भी छूट गये, वह भी छूट गया । किन्तु विपिन जब एक बार फिसल गया, तो वह छूटकर भी, अपने मन की दुर्बल और हीन भावना को नहीं भूल सका । वह जैसे पागल बन गया । उसके मानस में जहरीला फोड़ा पैदा हो गया । वह उसकी पीड़ा से कराहने लगा । बेचैन हो गया । उसने फिर तुरन्त ही, अपने को जेल जाने के लिये प्रस्तुत कर लिया । वह एक बार दुर्बल बना, तो फिर बलवान बन गया···वह परिस्थितियों से लड़ गया जिन्दगी के मोह से टक्कर लेने में समर्थ बन गया···!'

रजनी ने कहा—'बड़ा साहस किया !'

आत्माराम ने कहा—'मनोविज्ञान का पण्डित कहेगा कि ऐसी अवस्था में विपिन कुछ न करता। अपने घर का धन भोगता। जीवन का आनन्द लेता। देश छोड़कर विदेश चला जाता! किन्तु उसी मनोविज्ञान का यह भी दूसरा पहलू है। सत्य और वास्तविकता पर टिका है! विपिन ने जो कुछ किया, यह भी उसका सिद्धान्त था। यह भी अमर था!' जीवन का यह लक्ष्य भी विपिन से कुछ मांग रहा था!'

रजनी ने कहा—'तुम शहर पहुँचकर लिखना। मैं आऊँगी, तुम्हारे भाई आयेंगे। अब ताँगे में बैठो, समय हो गया।'

कमला ने दोनों को प्रणाम किया। वह ताँगे में बैठ गयी और बोली—'जरूर आना! मुझे न भूलना।'

रजनी ने विह्वल बनकर कहा—'नहीं, नहीं, तुझे नहीं भूलेंगे! हम आयेंगे!'

आत्माराम ने कहा—'फूआ को धीरज देना। अपने को भी। पत्र जाते ही देना। आज ही!'

कमला ने कहा—'जी, अच्छा!'

ताँगा चला गया।

कमला को गये हुए, देर हो गयी। शायद वह स्टेशन भी पहुंच गयी। किन्तु अपने कमरे में बैठा हुआ आत्माराम सचमुच ही, उस समय दुःखी था। उसके मानस में विपिन का और कमला का मानचित्र खिंच गया था। वह देख रहा था कि अब विपिन जायगा...इस कमला को अकेली कर जायगा! हाय! कितनी आकांक्षाएँ होंगी, इस कमला के साथ। सभी मर गयीं। और कुछ देर पूर्व विपिन के जिस शौर्य की वह प्रशंसा कर रहा था, उस अवस्था में बैठे हुए, उसने एकाएक कहा, 'विपिन सचमुच ही मूर्ख निकला! हल्का निकला! क्या जीवन ऐसे

मारा जाता है ! आत्मघात के अतिरिक्त यह भला और क्या है ! जो अन्याय है…प्रतिकार है ! जीवन के प्रति नृशंसता ! कम्बख्त ने इस बेचारी कमला का सहारा भी छीन लिया। इसका हृदय विदीर्ण कर दिया। विपिन असफल बन गया ! एक न भूलने वाले अविवेक का भागीदार हो गया ! और विपिन भी नारी चाहता था। जीवन का भोग पसन्द करता था। उसे सभी कुछ उपलब्ध था।

बाहर के बैठकखाने से मुख्तार ने ताजी डाक आत्माराम के पास भेजी। कई पत्र थे। उनमें स्वामीजी का और माँ का था। माँ ने रुपये मँगाये थे। कुमुद और रजनी के विषय में लिखा था।

उसी समय रजनी वहाँ आगयी। आत्माराम ने माँ का पत्र दे दिया। पत्र पढ़कर रजनी ने कहा—'माँ वहाँ भी मेरे लिये और कुमुद के लिये चिन्तित हैं। लिखा है, रजनी अपने स्वास्थ्य का ध्यान रखे।'

आत्माराम ने कहा—'ठीक तो है। तुम ध्यान नहीं रखतीं।'

'और तुम अपना बहुत ध्यान रखते हो ! मैं आज माँ को पत्र लिखूँगी। सब साफ-साफ लिख दूँगी कि जल्दी आओ और अपने बेटे-पोते को सँभाल लो !'

आत्माराम ने इतना सुना और प्रसन्न बन गया। उसी समय, उसने मन में कहा—यही संसार है ! यही माया-मोह है ! यह कहते हुए उसके मन का समुद्र लहरा उठा। वह बोला—तो इससे विराग क्यों ? यह त्याज्य क्यों ? यही तो प्रेरणा है। इन्सान के कर्मों का उद्गम है !

वह रजनी से बोला—'विपिन ने अच्छा नहीं किया ! उसने अपने और कमला के जीवन के साथ उपहास किया…उन्मादी अट्टहास ! निरा बुद्धिहीन बन गया,—मूर्ख !'

रजनी ने कहा—'इस संसार में सभी बुद्धि का उपयोग नहीं करते। बहुधा यों ही मरते हैं और जीवन उजाड़ देते हैं। वे भगवान की दया-माया का भी अस्तित्व बिगाड़ देते हैं।'

आत्माराम ने कहा—'स्वामीजी का पत्र आया है। मुझे बुलाया है। लिखा है, तुम देर से नहीं मिले, देखने और बात करने को मन करता है।'

रजनी ने स्वामीजी की याद करके कहा—'वे मुझे भी याद आते हैं। वे सचमुच ही, जीवन के एकान्त चिन्तन में लगे हैं!'

आत्माराम बोला—'स्वामीजी परमहंस हैं। वीतरागी हैं। नितान्त सरल! वे सचमुच ही देवता है।'

रजनी ने आत्माराम की बात सुनी, तो हँस पड़ी। वह बोली—'और तुम! तुम भी तो वीतरागी हो,—मेरे भोले संन्यासी!' यह कहते हुए वह फिर घर में लौट गयी। जैसे अपने-आप में ही विभोर हो गयी।

: ४६ :

आत्माराम कई दिनों से स्वामीजी के पास गया था। जब वह लौटा तो उस समय प्रातः का समय था, रजनी सो रही थी। आत्माराम उसके सिरहाने जा बैठा। जब उसने रजनी के सिर पर हाथ रखा, तो तभी, उसकी आँखें खुल गयीं। आत्माराम ने कहा—'मै लौट आया।'

रजनी ने कहा—'आ गये, तुम! बहुत आये! एक दिन की कहकर गये थे और आठ दिन लगा दिये। कमला के दो पत्र भी आ गये।'

आत्माराम ने कहा—'स्वामीजी अस्वस्थ थे। मैं वहीं से विपिन के मुकद्दमे की बात सुन रहा था। वह नहीं बचेगा। फाँसी न मिली तो काला पानी का दण्ड अवश्य पा जायगा!'

'और तुम तब भी दूर बैठे हो! तुम अभी तक विपिन से नहीं मिले हो!'

आत्माराम मैंने कहा—'ने मजिस्ट्रेट को लिखा। अस्वीकृत कर दिया। इसलिए, विपिन से भेंट नहीं कर सकता।'

रजनी बोली—'आज शहर चलो। वहाँ जाकर फूआ और कमला को भी सान्त्वना दो। कमला अब फूआ के पास रहती है। विपिन ने अपनी सम्पत्ति का एक बड़ा भाग कमला के नाम लिख दिया है। उसने जेल जाने से पूर्व वसीयत लिख दी थी। कमला को देने के अतिरिक्त शेष सम्पत्ति समाज की कई संस्थाओं को बांट दी। कुछ फूआ की इच्छा पर छोड़ दी। उसके यहाँ जो ब्राह्मणी खाना बनाती है, उसे भी रुपया देना लिख दिया। कुछ नौकर को भी दिया।' यह कहते हुए रजनी की आँखें भर आयीं। उसका स्वर अवरुद्ध बन गया। उसी अवस्था में वह फिर बोली—'कमला ने लिखा है कि इस वसीयत का ठीक-ठीक पालन हो, इसका भार तुम्हें सौंपा है। वसीयत में कुछ उलट-फेर करना हो, तो तुम्हें यह अधिकार भी दिया है।'

इतना सुनते-सुनते आत्माराम अतिशय गम्भीर बन गया। वह पलंग से उठ बैठा। वह रो पड़ने की स्थिति मे आगया। वह तुरन्त उस कमरे से बाहर निकल गया।

उसी दिन सन्ध्या समय तक आत्माराम रजनी को साथ लिये शहर पहुँच गया। स्टेशन से वह दोनों विपिन के घर गये। दोनों ने फूआ को प्रणाम किया। किन्तु फूआ ने आँखों मे आँसू भर कर अपना मुँह धोती से ढँक लिया और फूटकर रोते हुए, जैसे चीखकर कहा—'अरे, यह क्या हो गया, आत्माराम! यह घर लुट गया···आग के एक ही पतंगे में फुंक कर राख हो गया!'

रोते हुए कमला ने कहा—'आज मुकद्दमे का फैसला सुना दिया। विपिन बाबू फांसी का दण्ड पा गये!'

'प्राण-दण्ड मिला!' एकाएक चौंककर, जैसे चीखकर रजनी ने कहा।

कमला बोली—'भाभी, इसी की सम्भावना थी। आज उन्होंने तुम्हें

भी पूछा। भैया का भी नाम लिया।'

उसी समय बाहर विपिन के कुछ सम्बन्धी और मित्र भी आगए। आत्माराम बाहर चला गया।

एक निकट के सम्बन्धी ने आत्माराम की छाती से लगते हुए कहा—'इस घर का दीपक बुझ गया, आत्माबाबू !'

उस समय आत्माराम की आँखों में भी आँसू थे। वे उसके गालों पर बह आये थे।

एक सम्बन्धी ने कहा—'आत्माबाबू, विपिनचन्द्र अन्तिम बार आपसे मिलने के लिये उत्सुक हैं। उन्होंने कहा है।'

आत्माराम ने कठिनाई से कहा—'मैं मिलूँगा। कल ही जेल जाऊँगा।'

'और आपकी पत्नी भी।'

'हां, हां, वह भी जायगी। फूआ और कमला भी जायगी।'

दूसरे दिन के प्रात ही, आत्माराम ने विपिन से मिलने की आज्ञा माँगी। वह मिल गयी। दोपहर होते-होते सभी जेल पहुँच गये। विपिन की कोठरी के सामने वे जा खड़े हुए। विपिन ने देखते ही कहा—'तुम आ गये, आत्मा भाई ! भाभी तुम भी ! चलो, आनन्दित किया, इस विपिन को; जो अन्तिम बार दर्शन दिये !' उसने आत्माराम की ओर देखकर कहा—'आत्मा भाई, मैं तुमसे मिलने के लिये उत्सुक था। विश्वास भी था कि तुम आओगे। तुम मुझसे मिलो, बोलो, इसीके लिये तो यह सब किया। मैंने अपना मुँह उज्ज्वल किया !'

आत्माराम ने कहा—'तुम उत्तेजित हो गये। जीवन की वास्तविकता भूल गये। बताओ, ऐसा करके क्या तुमने अपने साथ और अपने सम्बन्धियों के साथ न्याय किया ?'

इतना सुनकर विपिन हँसा। वह बोला—'हां, भाई ! तुमने ठीक कहा। उत्तेजित तो मैं अवश्य हो गया। मुझे जीवित भी रहना था। फूआ के लिए और अपने घर के लिए कायम रहना था। परन्तु मेरी

अवस्था तो ऐसी बनी कि मैं इस खुली दुनिया में साँस नहीं ले सकता था। मैं सभी की दृष्टि में गिर गया। इस कमला ने मुझे मार देने का बीड़ा उठा लिया। पर भाभी ने कमला को हत्या करने से रोका, और मुझे गुरुतर पाप करने से! और-तो-और मैंने तो सुना कि तुमने भी मुझे अपने हृदय से निकाल दिया! तब भला मैं इस घृणित बोझ को लिए कैसे जीवित रहता! मैं कहां-कहां फिरता······!'

विपिन ने कहा—'आत्माराम, इस तरह मुझे जीवित नहीं रहना था! मेरा यही लक्ष्य शेष रह गया था। मुझे यही करना था! यहीं तक रहना था। मुझे अब जीवन का मोह नहीं। सन्तोष है। अपने पर गर्व है। मैं फिसला, तो फिर खड़ा हो गया। मैंने अपना रास्ता भी पार कर लिया।' यह कहते हुए विपिन ने फूआ की ओर देखा। वह उसके सफेद मुँह को देखकर बोला—'फूआ, तुमने मुझे पुत्र के समान पाला, बड़ा किया। अब भरोसा रखो, तुम्हारा यह विपिन कायर बनकर नहीं मरा······चारपाई पर रिस-रिसकर नहीं! मेरा इतना ही संस्कार था! तुम मुझे आशीष दो!' उसी समय विपिन ने कमला को लक्ष्य किया। उससे बोला—'कमला देवी, हम दोनों देर तक साथ रहे। जीवन की जाने कितनी गूढ़ बातें करते रहे! अब विदा दो! यह साथ तो छूटना था। कभी भी छूट सकता था। तुमने दल से त्याग-पत्र दिया, अच्छा किया! भैया आत्माराम तुम्हारे साथ हैं। यह कभी भी किसी अच्छे लड़के से तुम्हारा विवाह कर देंगे! वसीयत में मैंने तुम्हारा अधिकार भी रखा है।' इतना कहा और विपिन रजनी की ओर देखकर हँस दिया। बोला—'कुमुद को नहीं लायीं। उसे भी देख लेता। प्यार कर लेता। माँ के भी दर्शन कर लेता!' उसने कहा—'भाभी, तुम भी मेरे जीवन में एक रहस्य बनकर आयीं—निरी भावनामयी अनुभूति! तुमने सदा ही, मुझे अपना समझा! मेरा आदर किया! जा तो रहा हूँ, पर जिस संसार में तुम हो, उसे छोड़ते क्या अच्छा लग रहा है! लगता है कि मन खिंच रहा है। कोई नोंच रहा

है !' यह कहते ही, विपिन ने आत्माराम को देखा। वह कहने लगा—'आत्माराम, मैंने तुम्हीं से यह सब पाया। अब तुम्हीं को सौंप दिया ! अच्छा साथ रहा, हम दोनों का ! मैंने सदा ही अपराध किये और तुमने क्षमा दी। मेरे प्रति तुम्हारा यही स्वभाव रहा। समझता हूँ आज भी तुमने मुझे क्षमा कर दिया।' यह कहते हुए उसने आत्माराम के पैर छू लिये। फूआ और रजनी के पैरों की रज भी प्राप्त कर ली। उसने रोती हुई कमला को देखकर कहा—'हम फिर मिलेंगे······अगले जीवन में ! यह रास्ता क्या कभी खत्म हुआ है······कहीं-न-कहीं फिर टकरा जायेंगे, कमला ! धैर्य रखो !'

जेलर वहाँ आ गया था। वह आत्माराम से चलने के लिए कह चुका था। तभी आत्माराम ने विदा ली और गम्भीर स्वर में कहा—'विपिन, मैं तुम्हें सदा याद रखूँगा !' यह कहते हुए उसने आतुर भाव से रोते हुए अपना मुँह फेर लिया। सभी चल दिये।

रजनी ने कहा—'विपिन बाबू— !'

विपिन ने ऊँचे स्वर में कहा—'भाभी—!'

कमला बोली— मेरे—!'

विपिन ने कहा—'तुम भगवान् की बात सुनो, कमला रानी !'

फूआ बोली—'अरे, विपिन—!'

विपिन ने अपने स्वर पर और जोर देकर कहा—'फूआ, हम दूसरे जन्म में भी मिलेंगे। मैं तुम्हारा बेटा बनूँगा।'

और सभी की आँखों में आँसू थे ! सभी के हृदय मुँह तक उतर आये थे।

उसी समय विपिन ने फिर जोर से कहा—'आत्माराम—!'

आत्माराम उसकी ओर देख रहा था। उसकी आँखों में अश्रु-जल भरा था। किन्तु विपिन हँस रहा था।

आत्माराम ने कहा—'हँसते हुए फाँसी पर चढ़ना ! जीवन का मोह याद न करना ! हम फिर मिलेंगे, पुनर्जन्म का विश्वास न त्यागना !'

विपिन ने कहा—'मैं जल्दी आऊँगा !' और उसने हाथ उठाकर सभी को एक बार फिर प्रणाम कर लिया।।

× × ×

विपिन को फाँसी दे दी गयी। विधिवत् उसका दाह-संस्कार भी कर दिया गया। नगर-का-नगर उस अवसर पर उपस्थित था ! ऐसा करुण-दृश्य क्या कभी किसी ने देखा था ! उस समय चारों ओर चीत्कार था, चारों ओर उदासी ! कई लाख नर-नारियों ने विपिन को अपनी आँखों का अश्रु-जल समर्पित किया !

रात हो गयी थी। श्मशान में सन्नाटा था। चिता बुझ चुकी थी। उसी समय आत्माराम ने उस चिता की राख उठायी और अपने माथे पर लगा ली। उसने रजनी और कमला की ओर देखकर कहा—'आओ, चलें ! विपिन गया······वह पंच-तत्व में विलीन हो गया······ वह मरकर भी जीवित हो गया······!'